भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

वर्ष-१०
अंक-२
मार्च-अप्रैल २०१६

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 2.4620
वर्ष-१० अंक-२
मार्च-अप्रैल २०१६

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सारिका त्रिपाठी, डॉ. मुन्नी देवी भास्कर, डॉ. प्रमोद आनंद तिवारी, डॉ. प्रमोद यादव, डॉ. सुजीत कुमार सिंह, डॉ. आरती बंसल, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. आभा रानी, डॉ. विकास कुमार सिंह, डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ. शरदेंदू बाली, डॉ. डी. पी. सिंह, डॉ. गीता जोशी, डॉ. रूपाली जैन, डॉ. किरन कुमारी, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, दिनेश मीणा, गुंजन, रमेश चन्द, शंकर, पायल, डॉ. ममता अग्रवाल, सिद्धनाथ पाण्डेय, प्रो. अंजली श्रीवास्तव

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 मार्च 2016

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-10 अंक-2 मार्च-2016

शोध प्रपत्र

सांस्कृतिक कसौटी पर तुलसीदास का मूल्यांकन -डॉ. ममता चौरसिया 1-8
वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यम -झेलम झेंडे 9-11

जयशंकर प्रसाद का धार्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण -डॉ. मंजु वर्मा 12-15
हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व -डॉ. रमेश टण्डन 16-19

दृषद्वती से गंगा तक : एक संक्षिप्त अवलोकन -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 20-22
राजकीय विद्यालयों में शिक्षा की अधोमुखी प्रवृत्ति के लिये उत्तरदायी कौन ? -डॉ. हेमराज 23-28

मीरा : भक्तिकाल में नारी शक्ति का सशक्त पक्षधर पात्र -डॉ. निशा यादव 29-32
हिन्दी पत्रकारिता की विकास यात्रा में भारतेन्दुयुगीन पत्र -डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 33-42

ब्राह्मण ग्रंथों का सांस्कृतिक महत्व -डॉ. शारदा कुमारी 43-47
संस्कृत काव्यशास्त्र में रसात्मवाद -डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी 48-49

काव्येषु राजशास्त्रविषयिणी चर्चा -डॉ. अनामिका पाठक 50-54
बैंडिट क्वीन : चौराहे पर खड़ा मानवाधिकार[1] -आशुतोष वर्मा 55-59

सूचना का अधिकार एवं मीडिया : औचित्य और चुनौतियाँ -डॉ. संजीव गुप्ता एवं अरविन्द कुमार पाल 60-63
भारतीय संविधान और मानवाधिकार -यश कुमार 64-68

स्त्री का मानवाधिकार : या तो हाशिये पर या दोराहे पर -डॉ. विभा त्रिपाठी 69-73
लौह तकनीक से सम्बन्ध विचार द्वितीय नगरीकरण के संदर्भ में लोहे की भूमिका -डॉ. जेबा इस्लाम 74-77

जीवन व शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य के लिये विटामिन की उपयोगिता -प्रो. अनिता कुमारी 78-82
आधुनिक पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव -अरून कुमार गुप्त 83-87

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारों का सामाजिक और साहित्यिक अवदान -डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 88-95
बौद्ध दर्शन का "शमन" -मधुकर मिश्र 96-98

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,1-8
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 24 जनवरी 2016

सांस्कृतिक कसौटी पर तुलसीदास का मूल्यांकन

डॉ. ममता चौरसिया*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सांस्कृतिक कसौटी पर तुलसीदास का मूल्यांकन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ममता चौरसिया* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

संस्कृत के व्याकरणशास्त्र के अनुसार सम् (उत्तम) उपसर्ग के साथ क्तिन प्रत्यय लगने से संस्कृति शब्द का निर्माण हुआ है। इसका सामान्य अर्थ देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि की सम्यक चेष्टाओं से लिया जाता है, परन्तु संस्कृति की व्याख्या मात्र इतने तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि इसकी व्याख्या इससे कहीं ज्यादा गहन, विस्तृत एवं अपरिमित है। इसमें लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी प्रकार के अभ्युदय, उन्नति के अनुकूल चेष्टाएं आ जाती हैं। वैसे तो सभी अच्छी बुरी चेष्टाएं ही शामिल की जा सकती हैं, परंतु सम्यक् कृति अर्थात् उत्तम चेष्टाएं ही संस्कृति (सम्+कृति) का अभिप्रेत अर्थ होता है।

कुछ विद्वानों ने संस्कृति को मानव जीवन की नैतिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक उपलब्धियों का संस्कार माना है। जन्म से लेकर मृत्यु तक की शुद्धि के लिए आवश्यक संस्कारों की योजना ही संस्कृति मान लिया जाता है, परंतु दोनों में तात्विक भेद है, 'संस्कार शब्द में करणीयता के समयकत्व की भावना जारी है। अर्थात् संस्कार परिष्कार की प्रक्रिया है जबकि संस्कृति में परिष्कृत, परिमार्जित स्थिति का बोध है।'[1]

कुछ अन्य मनीषियों ने 'कल्चर' को संस्कृति का पर्याय माना जो लैटिन भाषा के 'कोलर' से निष्पन्न और 'कुल्टुरा' शब्द से व्युत्पन्न हैं। इसका शाब्दिक अर्थ 'पूजा करना' अथवा 'कृषि संबंधी कार्य' से हैं। इसे 'कल्चर' एवं 'कल्टीवेशन' से भी जोड़कर व्याख्यायित किया गया। कल्टीवेशन के अर्थ से कृषि का विभिन्न पद्धतियों के द्वारा परिष्करण किया जाता है इससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। ठीक इसी प्रकार संस्कृति का भी युगबोध के अनुसार परिष्करण होता रहता है। 'कोलर' से प्राप्त द्वितीय अर्थ पूजा करने से जोड़कर इसकलिया गया। तत्कालीन समय में मनुष्य का जीवन कृषि आधारित था और वह आपदाओं से बचने के लिए प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करता था। कालान्तर में व्यक्तिगत सीमा लांघकर संस्थागत रूप से नियमों के दायरे में आकर व्यक्ति और समाज को संरक्षित करता है।

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली) भारत। E-mail : mamatagyanoo@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वास्तव में संस्कृति किसी देश और समाज की आत्मा के रूप में चिन्हित किया जाता है इससे उसके सामाजिक जीवन व्यवस्था, लक्ष्यों एवं आदर्शों की उन्नतावस्था का ज्ञान होता है। किसी भी देश एवं समाज की विशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियां अन्य समाजों से भिन्न होती हैं, 'भारतीय संस्कृति भी अन्य समाजों की संस्कृति के समान होगी; क्योंकि अलग अलग परिस्थियां अलग अलग सांस्कृतिक प्रतिरूप (कल्चरल पैटर्न) को उत्पन्न करती हैं। अतः भारत की भी अपनी एक अलग संस्कृति है। भारतीय संस्कृति भारत राष्ट्र की अपनी परिस्थियों का प्रतिफलित विरासत (हेरिटेज) है।'[2]

भारतीय संस्कृति में धर्म, आध्यात्म, ललितकलाएं, ज्ञान विज्ञान, विविधविधाएं ,नीति, विधि विधान, जीवन मूल्य, प्रणालियां और वे क्रियायें एवं कार्य है जो उसे विशिष्ट बनाते हैं। भारतीय संस्कृति की कई कसौटियां निर्धारित होती है- प्राचीनता, निरतंरता, धर्म की प्रधानता, दार्शनिकता, देवपरायणता, सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, सर्वांगीणता, विभिन्नताओं की मौलिक एकता आदि के साथ साथ मानवीय दृष्टिकोण, सौंदर्यबोध एवं नैतिक उत्कर्ष भी है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति रही हैं जिस समय पूरे विश्व में अंधकारयुग का घना कोहरा छाया हुआ था उस समय भारतीय संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष रूप में विद्यमान थी। इसका प्रमाण हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से प्राप्त अवशेषों के प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति की कसौटी निरंतरता भी निर्धारित होती है। भारतीय संस्कृति अपने जीवंत रूप में आज भी गतिशील है, यद्यपि हजारों वर्षों के सुदीर्घयात्रा में बहुत अधिक बाध्यता आई, परिवर्तन हुआ है लेकिन इसकी निरंतरता समय सापेक्ष स्वरूप बदलकर आज भी प्रवाहमान, विद्यमान है। आज भी भारत की सांस्कृतिक ज्योति झिलमिला रही है, आज भी परंपरागत संस्थाएं धर्म, महाकाव्य, साहित्य, दर्शन, संस्कार, रीति रिवाज, आचार विचार के रूप में जीवित हैं।

संस्कृति में धर्म एवं आध्यात्म को विशिष्ट स्थान दिया गया हैं मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जो धर्म की पहुँच से दूर हो। चाहे वह वर्णों की उत्पत्ति के संबंध में हो या कुल, काल, वंश, गोत्र के संबध में हो। भारतीय संस्कृति धर्म की प्रधानता की ओर संकेत करती है। दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ही भारतीय संस्कृति उर्जस्वित एवं पल्लवित हुई हैं। दर्शन हमारे सम्मुख बह्मतत्वों का रहस्योदघाटन करता है। इतिहासकार, लेखक, कवि, स्मृतिकार, कलाकार, मूर्तिकार, चित्रकार आदि सभी के कार्यों एंव कृतियों में उच्च दार्शनिक तत्वों को लोकस्तर पर प्रतिष्ठित किया गया है।

इतिहास गवाह है विश्व के अन्य धर्मों में सहिष्णुता का अभाव रहा है, धर्म के नाम पर भीषण रक्तपात एवं संग्राम हुआ है, जबकि भारतीय संस्कृति इसकी अपवाद रही है। सर्वशक्तिमान ईश्वर अव्यक्त, अचिन्त्य और मानव बुद्धि से परे है। विभिन्न धर्मों, उपासना पद्धतियों से उस ईश्वर तक पहुँचने के भिन्न भिन्न मार्ग बताए गए, परन्तु लक्ष्य एक ही है ईश्वर का साक्षात्कार। इसी विचारधारा से प्रेरित होकर मुस्लिम संस्कृति से लेकर अंग्रेजी संस्कृति को प्रश्रय दिया जाता रहा है जो कभी कभी घातक भी सिद्ध हुई। सबको सम्मान देना, प्रेम करना, भारतीय जीवन विधि व दर्शन की प्रमुख विलक्षणता है। हमारी संस्कृति समय समय पर विदेशों से आए हुए सांस्कृतिक तत्वों को अपने में आत्मसात करती रही है जो किसी भी राष्ट्र की संपन्नता की पहचान हैं। इसकी अनुकूलता की विशेषता ने सभी परिस्थितियों में इसे जीवित रखा। ग्रहणशीलता के कारण ही भारतीय संस्कृति में इतनी विशालता, व्यापकता एवं विविधता परिलक्षित होती है। इसकी अंतर्निहितशक्ति बहिष्कार तथा विध्वंश की नहीं, बल्कि ग्रहण, संरक्षण एवं सृजन है।

मानवजीवन का सर्वांगीण विकास करना इसका लक्ष्य रहा है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए वर्ण, आश्रम, पुरुषार्थ, विवाह, परिवार आदि की व्यवस्था विशेष ढंग से की गई और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को जीवन का संतुलित आधार माना गया जिससे शारीरिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक तीनों प्रकार को विकास हो सके। आधुनिक भारत में इन व्यवस्थाओं के स्थान पर प्रजातांत्रिक समाजवाद, भू-दान यज्ञ, सर्वोदय आदि सिद्धान्त एवं कार्यक्रम सर्वसाधारण के कल्याण हेतु आज भी कार्यान्वित किए जा रहे हैं। सभी धर्मों का सार यही है कि किसी को कष्ट न हो दूसरों के दुख को दूर करने के लिए स्वयं को न्यौछावर कर दो, दूसरों की उन्नति के लिए सदैव प्रस्तुत रहो। भारत का विश्वास 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' में रहा है, जो सभी सुखी हों जो कुछ भी शिव और सुंदर हो वह सबके लिए हो। यह विभिन्नताओं में भी मौलिक एकता को समाहित किए हुए हैं।

साररूप में यही कहा जा सकता है संस्कृति मनुष्य जीवन का दर्शन, आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक, आत्मिक, राजनीतिक चिंतन का समग्र रूप है। जीवन को रसमय तथा सुखमय बनाने का सशक्त माध्यम सौन्दर्यबोध मात्र मांसल ही नहीं, बल्कि अनेक स्तरों पर है। जीवन दर्शन में जीवन पर गंभीर चिंतन मनन तथा अन्वेषण से प्राप्त मूल्य है। मूल्यों को व्यक्तिगत स्तर पर उच्चता प्रदान करने का कार्य नीतिबोध कहलाता है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाएं उन्नति की दिशाएं निर्धारित कर सांस्कृतिक उपलब्धियों को प्राप्त कराती हैं। सृजनात्मक क्षमता मनुष्य में सकारात्मक क्रियाओं का नाम है, जिससे जीवन में सौन्दर्यवृद्धि होती है।

वैदिक युगीन भारतीय संस्कृति बहुत ही समृद्ध रही है जिसमें एक ओर वेद, वेदांग, उपनिषद, स्मृति, श्रुति, धर्मग्रंथ तथा आध्यात्मवाद रहा है तो दूसरी ओर कालिदास का सौन्दर्य बोध, भारवि का गहन नीतिबोध, वररूचि जैसे साहित्यकार राजनीतिज्ञ का कूटनीति विवेचन भी है। भर्तृहरि के शतकों ने इसे संपन्न बनाया। मध्ययुग में इसका ह्रास हुआ जिससे सर्वांगींणता नष्ट हुईं, एकांगी दृष्टि लोक छोड़ परलोक में समाई। श्रृंगारिकता का बहिष्कार कर वैराग्य, संन्यास एवं निवृति का मार्ग अपनाने पर बल दिया गया और बहिर्मुखी धर्म केन्द्रित होता हुआ संकीर्ण हो चुका था। ज्ञानान्वेषण की क्षमता से शून्य भारतीय जन-मानस अंधविश्वास और रूढ़ियों के दास के रूप में अपनी पहचान बना बैठा।

यह प्रवृति विष का कार्य कर समाज को नुकसान पहुँचा रहा था। आत्मविश्वास स्वावलंबन, स्वाभिमान के स्थान पर हीनता, आत्मपराजय, कुंठा तथा निराशा को स्थान मिला जिसके परिणामस्वरूप मुट्ठीभर मुसलमान हिन्दुओं के विशाल जनसंख्या पर शासन कर सके। मुसलमान आक्रांताओं के बाद अंग्रेज शासक आए उससे भी जनमानस विश्रृखंलित हुई। इन्हीं परिस्थियों से प्रेरित होकर 'तुलसीदास' का सृजन हुआ। तुलसीदास के जीवन का गहन अध्ययन चिंतन करके और तत्कालीन समाज के सोये रूप को पण्डित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने रेखांकित किया।

सौ छंदों में आबद्ध तुलसीदास के दो तिहाई भाग में मध्ययुग की इसी प्रसुप्तावस्था का अंकन है और शेष भाग में सांस्कृतिक चेतना की जागृति का आवाहन है, 'महाकवि निराला हमारी सांस्कृतिक चेतना के आधारभूतज्योति स्तम्भ हैं। उनके समूचे साहित्य में हमें भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों का बोध एक साथ होता है।'[3]

तत्कालीन समय में भारतीय कर्णधार मुगल आकाओं के सेवक बन जी हूजूरी में संलिप्त थे। उनमें स्वदेश भावना, आत्म-सम्मान लुप्त हो चुका था। निराला द्वारा सृजित तुलसीदास के समय ब्रिटिश शासन के रखवाले यही 'सुपुत्र' थे। तुलसीदास रत्ना के बिछोह से विरक्त थे और निराला पत्नी एवं पुत्री के दोहरे वियोग से संतप्त थे। निराला को तुलसीदास का स्थानापन्न माना जा सकता है।

आधुनिक काल में ब्रिटिश शासन का दौर भी ऐसा ही था। मध्यकालीन भारत में जो स्थितियाँ तुलसीदास के सामने थीं ठीक वहीं स्थितियाँ निराला के सामने थी। तुलसीदास ने भारतीय 'जन' को 'मानस' के सोते में स्नान कराया तो निराला ने 'तुलसीदास' को केंद्र में रखकर 'तुलसीदास' का सृजन किया। उन्होंने सांस्कृतिक वैभव को आधार बना इतिहास, धर्म, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र के अथाह ज्ञान से भारतीय सांस्कृतिक वैभव का पुनरुत्थान कराने का सार्थक प्रयास किया। निराला जी के तेजस्वी चिंतन तथा ओजस्वी वाणी का संस्पर्श पाकर तुलसीदास जहाँ मध्ययुग की स्थितियों को प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर समसामयिक जीवन के विघटन को सूक्ष्म, परंतु सटीक रूप से अभिव्यक्ति है।

आद्यान्त भारतीय संस्कृति को आधार बनाकर चलने वाले तुलसीदास में यदि इस्लाम के स्थान पर ब्रिटिश सत्ता रख दिया जाय तो तत्कालीन समाज में व्याप्त दुर्दशा और गरीबी के चित्रण में कोई अन्तर नहीं है। मुगलकाल में राजा, मनसबदार, चाटुकार सुखी तथा संपन्न थे तो ब्रिटिश काल में अंग्रेज शासक, गर्वनर, जनरल, जमींदार, धनीवर्ग सुखी संपन्न था, लेकिन शेष प्रजा भूखी, दरिद्र तथा बेसहारा थी। 1938 में प्रकाशित तुलसीदास में पराधीन भारत की स्थिति का यथार्थ अंकन निराला ने विस्तृत रूप से किया। अपनी कुंठा, निराशा तथा अवसाद को त्यागकर वे तुलसी के सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक बनते हैं। उनके गीत भारतीय जागरण के गीत हैं जिसमें एक अपराजेय राष्ट्र के स्वर गुंथे हुए हैं। इसमें नवजागरण के अंश कुशलता से सजाए तथा संवारे गये हैं। भारतीय संस्कृति के विकास में त्रिकादर्शी निराला की क्रांतिकारी भूमिका है। जैसा कि नागानंदन मुक्तिकंठ ने कहा है, 'महाकवि निराला हमारे युग के महान विभूति हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। वह ऐसे समय में जन्में

जब हमारे साहित्य में एक महान क्रांति की आवश्यकता थी। हमें उन सभी परंपरागत रूढ़ियों से मुक्त होना था जो हमारे पथ में रोड़े बन कर बिछी थी। ऐसे ही संकान्ति काल में हमें यह महान युगद्रष्टा मिला।'[4]

इस महाप्राण क्रातिकारी ने परिवार, समाज; राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक स्तरों पर होने वाले संघर्ष की संग्रामभूमि का चयन किया। सन 1918 से प्रारभ होकर लगातार सन् 1961 तक पूरी क्षमता, सामर्थ्य और उत्तदायित्व से ललकारते रहें। भारतवासियों के पराधीन मानसिकता, उनकी सोई हुई सौन्दर्य चेतना और सांस्कृतिक बोध को कवि बार-बार जगाता रहा है।

तुलसीदास भारतीयों के किंकर्तव्यविमूढ़ दशा का चित्रण करने के साथ ही शूरवीरों के जागरण का भी प्रतीक हैं। भारतीयों के शौर्यरूपी सूर्य के अस्त होने पर शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य भी शीतल पड़ गया था। इससे जनता ने इस्लामिक सभ्यता को स्वीकार कर स्वयं को भोगविलास की सरिता में डुबो लिया। भारत के सांस्कृतिक क्षरण की विषद पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर वे प्रकृति के द्वारा संस्कृति के उत्थान की प्रेरणा को चित्रित करते हैं। निराला ने तुलसी को हिन्दू संस्कृति के जीर्णोद्धारक के रूप में उपस्थित किया है। इस महाकाव्य में संक्षिप्त कथा को वर्णन बहुत ही कुशलता के साथ किया गया है।

कई पक्षों को ध्यान में रखते हुए इस महाकाव्य का सृजन हुआ। एक पक्ष मानव के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से संबंधित हैं, तो दूसरा पक्ष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अपने में सामाहित किऐ हुए है। प्रकृति के अतिसूक्ष्म, किन्तु व्यापक सौन्दर्य में आध्यात्मिकता का दर्शन कराना केवल निराला जैसे मनीषी से संभव हो सकता था और उन्होंने इसे सांस्कृतिक उत्थान की जननी बना दिया, 'आज के युग में निराला की सृष्टि नवीन मानवतावादी दर्शन की ओर झुकी थी। यह कबीर की परंपरा के विकास का अगला सोपान है। प्रकृति की रहस्य सत्ता का सहज एकत्व इसके ध्यान में था।'[5]

रत्नावली ने तुलसीदास के ज्ञानचक्षु खोलकर उन्हें वास्तविकता से परिचय कराया। 'रत्ना' के प्रकाश ने 'तुलसी' को जगाया। वह अपनी क्षुद्र सीमाओं से ऊपर उठने को प्रयास भी करते हैं, परन्तु नारी मोहासक्ति के कारण उनकी ऊर्ध्वोन्मुखी गति अधोमुखी गति में परिवर्तित होने लगती है। वे अपने मानसिक संघर्ष के द्वारा आसक्ति पर विजय प्राप्त कर मुक्त होते हैं। नारी के अंतिम रूप सरस्वती का दर्शन कर और काव्य में उन बिंदुओं को उठाते हैं जहाँ भारतीय संस्कृति की आत्मा निवास करती है।

इस्लामिक संस्कृति के वाहक मुसलमान पंजाब, बुदेलखण्ड, अवध, बिहार समेत संपूर्ण भारत को अपने पैरों तले रौंदकर शासक बन बैठे 'आया पहले पंजाब प्रान्त/ कोशल बिहार तदन्तर क्रान्त/ क्रमशः प्रदेश सब हूए भ्रान्त, घिर-घिरकर।'[6] मुसलमानों ने यहां के जनजीवन को नष्ट किया और इस्लामिक संस्कृति को जबरदस्ती हमपर थोपकर अपने ही रंग में रंगने का प्रयास करते हैं। मुगल साम्राज्य का शासनकाल भारतीय संस्कृति का निशाकाल रहा है।

भारत के विशाल ललाट को भयंकर काले बादलों ने घेर रखा है जो एक के बाद दूसरे प्रांत को आच्छादित करते हुए संपूर्ण उत्तरी भारत को ढक लेते हैं। घनघोर अंधियारी रात्रि को वर्षाकालीन नदीप्रवाह, वज्रपात, बाढ़ आदि और भी भयावह बना देते है। निराला जी ने इन सभी घटनाओं को प्रतीकरूप में प्रयोग किया है। यहां मुगलों की सेना बादल है, उन्मत्त पठान सैनिक जल से भरे नद हैं जो अपने विजय के साथ भारतीयों के वैश्विक ज्ञान को बहाते चले जा रहे है। घनघोर अंधियारे में ऊपर दुर्निवार वज्रपात है और नीचे प्लावनकी प्रलयधारा है 'हर हर' अर्थात हरण-हरण की ध्वनि कर रही है। मुसलमानों के आक्रमण से भारतीय संस्कृति के ह्रास को कवि प्रारंभ में ही प्रस्तुत कर देता है, 'भारत के नभ का प्रभापूर्ण-/शीतलछाया सांस्कृतिक सूर्य/ अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिङ्मण्डल/ उर के शासन पर शिरस्त्राण शासन करते हैं मुसलमान;।'[7]

तत्कालीन परिदृश्य में भारतीय जनपराजय के कारण हीन अवस्था में पहुँच चुके थे। उनमें क्षोभ तथा पश्चाताप की शक्ति भी न रह गई थी। कुछ निकृष्ट लोगों ने विधर्मियों के हाथ स्वाधीनता बेचकर सुख वैभव को अपने जीवन का परम लक्ष्य मान लिया। सांस्कृतिक गरिमा के बदले तुच्छ भोग विलास की प्राप्ति को ही अधिक वरीयता दिया जाने लगा। भारतीय संस्कृति को प्रचण्ड आभा प्रदान करने वाले सूर्य के अस्त होने पर इस्लामिक सभ्यता के चन्द्र का उदय हुआ जिसके काल्पनिक शीतलता को आभास कराके भारतीय 'पृथ्वी' को अपने ढक लिया था। नदी को समाज का प्रतीक मानकर उसमें उत्पन्न छल छल ध्वनि से कवि देश के लोगों को जागृत करने को प्रयास करता है, लेकिन वे लोग शिला की तरह चेतनाशून्य रहें। उन्हें अपने सांस्कृतिक गौरव का स्मरण नहीं रहा जिससे देश की सभ्यता, संस्कृति पानी में बहते फूल की तरह श्रीहीन तथा दिशाहीन

होकर बहने लगी। दिग्भ्रमित पुष्प अपनी दिशाहीन गति के लिए जल रूपी समाज को दोषी ठहरा रहे है परंतु समाज में इसका कोई विरोध नहीं था।

सांस्कृतिक पराभव को चित्र उपस्थित करने के साथ ही निराला जी ने उन कारकों तथा तथ्यों को भी खोज निकाला जो समाज के विघटन के जिम्मेदार थे। अपने अतीत इतिहास पर नजर डालते हुए उन्होंने पाया कि विदेशियों के द्वारा पराजय मिलने पर एकजुट होकर हमने जब विरोध किया तब विदेशी आक्रांता हमारे चरणों पर झुके और हमने अपनी संस्कृति के अनुसार उन्हें जीवन दिया। समाज का एक दूसरा वर्ग जो गुप्तरूप से पनपता रहा तथा स्वार्थ और भोगविलास के भ्रम में पड़कर अनाचार, ईर्ष्या, द्वेष तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने में संलिप्त रहा। वे यह नहीं सोच पाये कि जब देश ही नहीं रहेगा तो हम कहाँ जाएंगे? हम आपस में अपनी घरेलू समस्याएं सुलझा सकते थे लेकिन ऐसा नहीं हुआ। परिस्थियों के अनुसार कोई भी विदेशी हमें गुलाम बना सकता है और हमें उसका दया का पात्र बनना पड़ेगा। यहां तक की अपनी मातृ-भूमि भी गिरवी रखना पड़ जाएगा और स्वार्थपूर्ति होते ही नेस्तनाबूद कर दिए जाएंगे।

कवि वर्णाश्रम व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि इस व्यवस्था का आधार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के विचारों में कटुता एवं प्रलोभन आया जिससे वे अपने कर्म-धर्म से विमुख हो पतनोन्मुख हुए। आपसी वैमनस्य ने उन्हें एक दूसरे से दूर कर दिया। चारों वर्ग मुस्लिम सभ्यता की छाया में शरण की आस खोजने लगें, लेकिन उन्हें कुछ भी न मिला और स्पर्द्धा नहीं छोड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि शौर्य के लिए प्रसिद्ध बुंदेलखण्ड, रणथम्भोर, चित्तौड़, कालिंजर आदि पर इस्लामिक झण्डा फहराने लगा। मर्यादा, संस्कृति, आन, बान, शान सब कुछ छिन्न भिन्न हो गया। इन ऐतिहासिक क्षेत्रों में गूजर, राठौर, चौहान, सिंहवंशीय योद्धाओं के शौर्यगाथाओं को सुनकर शत्रुओं के हृदय दहल जाते थे लेकिन कुछ स्वार्थी प्रकृति के लोगों के निजी लाभ ने उन्हे चिरनिद्रा में सुला दिया। शेष बचनेवाले नृप वेश में प्रत्यक्ष दास मात्र थे, मुगल साम्राज्य के चाटुकार बनने में ही उन्होंने अपनी भलाई समझी, 'लड़ जो रणबाँकुरे समर/ हो शापित देश की पृथ्वी पर,/ अक्षर, निजर दुर्धर्ष, अमर, जगतारण/ भारत के उर के राजपूत/ उड़ गए आज वे देवदूत/ जो रहे शेष नृपवेश सूत बन्दीगण।'[8]

वर्णाश्रम व्यवस्था के सुदृढ़ आधारस्तंभ ब्राह्मण सत्यभाषण धर्मानुकूल आचरण तथा सत्कर्म का निडर होकर प्रचार-प्रसार करता था वे असत्य प्रचारक एवं भोगविलास सुखभोग के लिए गौरवपूर्ण मर्यादा को कलंकित कर बैठा। चट्टान जैसा मजबूत क्षत्रिय वर्ग का दायित्व राष्ट्रीयता, धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करना था। वह सिर कटा सकता था, लेकिन झुका नहीं सकता था, उसेभी सुख भोग की आंधी उड़ा ले गई। कोई देशभक्त यदि मुगल साम्राज्य के विरोध में खड़ा भी हुआ तो उसे मिटा दिया गया। स्वयं को मुगल साम्राज्य का हितैशी बनने की होड़ में अपने आत्मसम्मान को भी बेच दिया। वैश्यवर्ण भी इसका अपवाद न रहा।

सबसे अंत में गाधी जी द्वारा नामित हरिजन अर्थात हरि के जनों का उल्लेख किया गया है। परमात्मा के सेवक जो सबकी सेवा करना अपना धर्म समझता था, परंतु उसे चौथे पायदान से भी नीचे का मानव समझा जाने लगा। ऐसे में वे धर्मपरिवर्तन कर मुसलमान सैनिक बना दिया गया, समूह का समूह तथा गांव का गांव मुसलमान बने। परिणामस्वरूप देश गया, राज्य गया, धर्म गया शाँति गई और संस्कृति का तेजी से क्षरण हुआ। शूद्रों पर किए जाने वाले असहनीय अत्याचारों ने राजा की अपराजेय शक्ति तथा भारतीय संस्कृति को पराजित किया। सामाजिक रुग्णता मुस्लिमों को विजित करती रही है, 'इसने ही जैसे बार बार/ दूसरी शक्ति की थी पुकार-/ साकार हुआ ज्यों निराकार जीवन में;/ यह उसी शक्ति से है वलयित/ चित देश काल का सम्यक जित,'।[9]

मानस के उत्तरकाण्ड में कलियुगी समाज का जो चित्रण किया गया है वह अपने अंदर गंभीर चेतना लिए हुए है, यही चेतना निराला के तुलसीदास में भी है, 'सोचा कवि ने, मानस-तंरग/ यह भारत संस्कति पर सभंग/ फैली जो लेती संग-संग, जन-गण को;/ इस अनिल वाह के पार प्रखर/ किरणों का वह ज्योतिर्मय घर,/ रविकुल-जीवन-चुम्बनकर मानस-धन जो।'[10] तुलसीदास ने मानस में भीषण दुर्भिक्ष के प्रभाव का अंकन किया है। निराला ने इसे प्राकृतिक रूपक के रूप में उपस्थित किया है। वर्षा के बाद शरद ऋतु का आगमन होता है। शरदकाल में नदी के प्रवाह को कीचड़ प्रभावित कर उसकी गति को अवरूद्ध कर देते हैं। इसी प्रकार नदी की गति को हिम की चट्टानें भी बाधित करती हैं। यहाँ पर हिम की शिला

स्वार्थी दरबारियों, योद्धाओं और सामन्तों के रूप में है। इनको जनता के अपार कष्टों का कारण माना गया, 'पाषण-खण्ड ये, करो हार/ बन्धुर पथ, पंकिल सरि, कगार/ झरने, झाड़ी, कंटक; विहार पशु-खग का।'[11]

मानस में तुलसीदास ने वर्णाश्रम व्यवस्था के ध्वंस को काल का प्रभाव माना। निराला युग में भी बहुसंख्यक दीन, भिक्षुक, विधवा की दयनीय दशा थी। धन, ऐश्वर्य, भोग, विलास वाले दृष्टिकोण से स्वदेश, स्वसमाज, स्वत्व की आशा नहीं की जा सकती। ऐसी विषम परिस्थितियों में उद्धार के लिए एक ऐसे दिव्य ज्ञान की आवश्यकता थी जो दासता के गहन अंधकार को भेदकर 'यह हमारा समाज है' की ज्योति फैला सके। निराला के तुलसी ने रवि कुल जीवन मानस धनश्री की अपेक्षा समाज से किया। चारों ओर प्रवाहित होने वाली सुसंस्कृत हवा का संस्पर्श भारतीय जनमानस को करवाया।

विपुल जलराशि वाली यमुना किनारे जन्म लेने वाले राजापुर ग्राम में जन्म लेने वाले काव्य शास्त्र ज्ञाता सर्वगुण संपन्न ब्राह्मण कुमार तुलसीदास को जन्म इसी ग्राम में होता है। कालान्तर में वे अपने विशिष्ट गुणों के साथ चित्रकूट जाते हैं। निराला इस प्रसंग को अपनी प्रतिभा से व्यवस्थित, नियोजित करके तुलसी के मानस के क्रमिक घात प्रतिघात, संकल्प विकल्प के रूप में चित्रित करते हैं। चित्रकूट की आनंदमय प्रकृति के बीच उन्हें दिव्य शक्ति की अनुभूति होती है जिससे वे काव्य सृजन में संलग्न होते हैं। निराला ने अपनी प्रतिभा से तुलसीदास के मानस पर पड़ने वाले प्राकृतिमक दृश्यों के प्रभाव के उतार चढ़ाव को उसी क्रम में उकेरा है। इन दृश्यों से उनका मन मस्तिष्क उर्जस्वित हो जाता है, लेकिन कुण्डलिनी नाड़ी की जागृतावस्था कुहरे के समान लगता है। संपूर्ण दृश्य कभी स्फुट तो कभी अस्फुट परंतु मनोहारी लगे जिसकी अनुभूति प्रकृति में अद्‌भुत थी।

इन भावभूमियों से उर्जस्वित होकर उनमें पुराने संस्कार जागृत हो जाते हैं उन्हें प्रकृति में सौन्दर्यपूर्ण आनंद आभासित होने लगता है। हरी भरी कोमल घासें, लताएं पुष्प सभी कुछ वे अपनी सुकोमल बाहुओं में समटने को इच्छुक होते हैं। अपने सांस्कृतिक वैभव से तुलसीदास परिचित होने लगते हैं लेकिन हिम अरि ताप से झुलसी प्रकृति अपने हत-वास से कवि को अवगत कराती है। प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में निहित आध्यात्मिकता का दर्शन होता है। वे अपने पूर्वजों तथा वैदिक ऋषियों के समान सत्यरूप का ज्ञान उन्हें धरती के विस्तार, सूर्य चंद्र एवं ऋतुओं से होता है उन्हें प्रकृति में ब्रह्म का बोध होता है, 'लो चढ़ा तार-लो चढ़ा तार,/ पाषाण-खण्ड ये, करो हार,/ दे स्पर्श अहल्योद्धार-सार उस जग का'।[12]

योगी मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी नाड़ी को जागृतकर शटचक्रों को भेद निम्न धरातलों को छोड़ता हुआ अंतिम सहस्रार चक्र पर जाकर अनहद नाद सुनता रहा है। उसी प्रकार से तुलसी का मन संस्कारों की तरंगो को संध्या समय आकाश के ऊपर उठती सूर्य की आभा के समान छोड रही हैं। वे ऊर्ध्व देश में जाकर भारत भूमि को ढकती छाया के दर्शन करते हैं। यह छाया मुस्लिम संस्कृति की है जो समस्त भारत भूमि को छू कर उठ रही थी, 'उस मानस ऊर्ध्व देश में भी/ ज्यों राहु-ग्रस्त आभा रवि की/ देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरती-सी-/ भारत का सम्यक देशकाल;/ खिंचता जैसे तम-शेष जाल,/ खींचती वृहत से अन्तराल करती-सी।'[13]

तत्कालीन समय में पूरा भारतीय समाज सभी प्रकार से मुगल साम्राज्य के ऊपर आश्रित था और उनका हर प्रकार से शोषण किया जाता था। उनके आतंक से बचने का मात्र एक ही उपाय था भारतीयों में यह भावना पैदा कर दी जाए कि राष्ट्र उस पर निर्भर है, वह राष्ट्र पर निर्भर नहीं है राष्ट्र की नींव के वे सुदृढ़ आधार हैं। जब यह भाव उनमें जागेगा तभी राष्ट्र का उत्कर्ष हो सकता है और इसी आत्मज्ञान के बोध से पराधीनता की बेड़ी कट सकती है। यह ज्ञान तुलसीदास को हुआ। सिद्धी प्राप्त होने ही वाली थी कि रत्नावली की छवि इसमें बाधक बनने लगती है। वे हाथ जोड़कर कहती हैं, 'नाथ अब मुझे छोड़कर मत जाओ।' स्त्री मोह पाश में बंध तुलसीदास लक्ष्यच्युत हो जाते हैं और उनकी ऊर्ध्वोन्मुखी गति बाधित हो जाती है। पंचतीर्थ, कोटतीर्थ, हनुमान द्वार, कामदगिरि, जानकीकुंज समेत सभी तुलसी को रत्नावलीमय लगे।

निराला में आत्मज्ञान था, उन्होंने रत्नावली को श्रद्धा की समष्टि संबोधित किया। वे माया रूपी नारी को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं। वह अंधकार को दूर कर सत्य के प्रकाश से साक्षात्कार कराती हैं और अपने मोहपाश से मुक्त करके तुलसीदास के ज्ञान चक्षुओं का खोलती हैं। जिस प्रकार से कैकेयी ने राम को वनवास देकर वास्तव में उन्हें राम बनाया वही कार्य रत्नावली ने किया। तुलसीदास को तुलसीदास बनाने के पीछे रत्नावली का हाथ था जिससे पूरे विश्व को वे राममय कर पाए। रत्नावली को उन्होंने बल की महिमा माना। तुलसीदास में ब्राह्मणत्व आत्मज्ञान के दिव्य प्रकाशपुंज से प्रज्जवलित होता है।

उन्हें रत्ना में ही सरस्वती लक्ष्मी का दर्शन होता है, 'देखा, शारदा नील-वसना/ है सम्मुख स्वयं सृष्टि -रशना,/ जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना, वरदात्री।'[14]

तुलसीज्ञान की दिव्यज्योति से प्रकाशित हो शून्य चक्र पर पहुँचकर देखते हैं कि चारों ओर धुंआ ही धुंआ है जिसमें सूर्य चंद्र अस्त हो रहे हैं। इस आध्यात्मिक चेतना की अनुभूति केवल योगी में ही होती है, निराला जी कवि से ज्यादा योगी माने जा सकते हैं। उन्होंने तुलसीदास के माध्यम से कल्पना लोक के दृश्यों का सभी को सहभागी बनाया। चित्रकूट के मनोहारी वनस्थली में तुलसीदास के ऊर्ध्वगामी मन को बाधित करने वाली स्त्री रूप का मोहपाश कट चुका था। उनके सभी बंध एवं जीवन के द्वंद्व ज्ञान सरिता में बह गए। नारीरूप ने ही उन्हें भक्ति के सागर मे स्नान कराकर रचनात्मक ऊर्जा से भर दिया।

भारत के असीम सौंदर्य का दर्शन तुलसीदास में कवित्व संचरित होने से होती है। इस महाकाव्य के अनुशीलन से सामाजिक क्षुद्रताएं बहुत पीछे छूट जायेंगी। मानस में राम रावण का युद्ध सात्विक और आसुरी शक्तियों का युद्ध थाजिसमें एक ओर सात्विकता के प्रतीक राम हैं तो दूसरी ओर आसुरी प्रवृतियों का प्रतीक रावण है, किन्तु यहाँ पर एक ओर हिन्दू हैं तो दूसरी ओर मुसलमान। एक ओर भारतीय हैं तो दूसरी आरे ब्रिटिश शासक, 'होगा फिर से दुर्द्धर्ष समर/ जड़ से चेतन का निशीवासर।'[15]

तुलसीदास के जगोद्धार के संकल्प में रत्ना के अश्रुपूरित नेत्र साधक बनते हैं बाधक नहीं। निराला को रत्ना से प्रेरित कराकर उस गौरवमयी नारी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। जहाँ तुलसीदास ने कहा, 'कत् विधि सृजी नारी जग माही/ पराधीन सपनेहु सुख नाही।' वहीं निराला के तुलसीदास में नारी को त्याग और जगत की समस्त सुख सृजनकर्ती गौरवमयी नारी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

मध्यकालीन भारत में इस्लाम धर्म के समर्थकों ने जिस भारतीय संस्कृति को लहूलुहान किया उसी के उद्धार का महत्वपूर्ण कार्य निराला ब्रिटिश कालीन भारत में करते है वे काव्य सर्जना की मौलिक परिकल्पना से इसका सार्थक समाधान करते हैं। रामचरित मानस का गंभीर अध्ययन, मनन और विश्लेषण करके उन्होंने युग के रंगमंच पर समूची सांस्कृतिक प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया। इसकी तुलना उन्होंने द्वितीयविश्वयुद्ध और सांप्रदायिक समर से उत्पन्न समस्या के किया। इससे राष्ट्रीय चेतना तथा उसकी भावना को क्षति पहुँचाई गई थी। पराधीन भारतीय परिवेश में रचित तुलसीदास के माध्यम से वे भारतीय संस्कृति एवं शौर्य की विजयगाथा गाते है, जागो, जागो, आया प्रभात,/ बीती वह बीती अंधरात।'[16] निराला जी के बारे उदघोषित किया गया हैं, 'निराला ने तुलसीदास में मध्यकालीन जीवन मूल्यों और अपने आधुनिक चिंतन के रचनात्मक द्वंद्व के द्वारा प्राप्त परंपरा को परिमार्जित कर नई अर्थवत्ता प्रदान की।'[17]

स्वतंत्रता की पूर्व संध्या में गाए गए इस तराने में वे स्वर्य को उज्जवल भारतीय संस्कति के उद्धारक के रूप में स्थापित करते हैं। इस गीत की ताल पर जनमानस भारतीय संस्कृति के उत्थान में तनमन धन से संलग्न हो जाती है। निराला जी ने भारतीयों के उत्कर्ष की जिम्मेदारी इस गीत को सौंपकर और पूरे विश्व में प्रसारित कर भारत के सांस्कृतिक वैभव को प्रसारित किया है, 'जग वीणा के स्वर के बहार जागो;/ कर लो सक्षम देदीप्यमान-/ दे गीत विश्व को रूको, दान फिर मांगों।'[18]

संदर्भ

[1]*भारतीय संस्कृति* -विजय विजन, पृष्ठ संख्या 22, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2005

[2]*भारतीय संस्कृति के मूल तत्व* -डॉ0 शिवदास, पृष्ठ संख्या 12, राष्ट्रीय हिन्दी साहित्य परिषद, नई दिल्ली, सं0 2013

[3]*सम्मेलन पत्रिका,* भाग-46, संख्या-1, पौष फाल्गुन 1881, पृष्ठ संख्या 108, श्री नागानंदन मुक्तिकंठ के लेख 'निराला का काव्य दर्शन' से उद्धृत

[4]वही

[5]*सहृदय पत्रिका,* निराला विशेषांक, जन0 मार्च, 2009, पृष्ठ संख्या 92, डॉ0 विद्यारानी के लेख 'निराला के रहस्य चिंतन' लेख से उद्धृत

[6]*निराला रचनावली भाग-1* -नंद किशोर नवल, पृ0 281, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

[7]वही : वही

[8]*निराला संचयिता* -रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या 63-64, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली

[9]*निराला रचनावली भाग-1* -नंद किशोर नवल, पृष्ठ संख्या 287

[10]वही, 289

[11]*निराला संचयिता* -रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या 68

[12]वही, पृष्ठ संख्या 285

[13]वही, पृष्ठ संख्या 286

[14]वही, पृष्ठ संख्या 84

[15]वही, पृष्ठ संख्या 85

[16]निराला रचनावली भाग 1 -नंद किशोर नवल, पृष्ठ संख्या 305

[17]*सहृदय पत्रिका,* निराला विशेषांक, जन0 मार्च, 2009, पृष्ठ संख्या 73, 'निराला काव्य में परपंरा और आधुनिकता का द्वंद'-(लेखिका) प्रीतिप्रकाश प्रजापति के लेख से

[18]*निराला रचनावली भाग 1* -नंद किशोर नवल, पृष्ठ संख्या 306

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,9-11
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 जनवरी 2016

वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यम

झेलम झेंडे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यम* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *झेलम झेंडे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

'वैश्वीकरण' इस शब्द को शाब्दिक अर्थ पर लिया जाता है- स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया। इसके द्वारा पूरे विश्वभर के लोग एक साथ मिलकर एक कार्य कर विश्वबंधुत्व की भावना का निर्माण भी किया जा सकता है। वैश्वीकरण की प्रक्रीया आर्थिक, सामाजिक, तकनीकि तथा राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण को निम्न रूप मे परिभाषित किया जाता है :

1. *अर्थशास्त्रियों के द्वारा दी गयी परिभाषा;* ''सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधो का ह्रास या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकत्त और जटिल विश्व स्तरीय तंत्र।''
2. *तोअम चोमस्की;* ''सैद्धांतिक रूप में वैश्वीकरण शब्द का उपयोग, आर्थिक वैश्वीकरण (economic globalization) के नव उदार रूप का वर्णन करने में किया जाता है।''
3. *हर्मन ईडेली;* कभी कभी अन्तर्राष्ट्रीयकरण और वैश्वीकरण शब्दों का उपयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है लेकिन औपचारिक रूप से इनमें मामूली अंतर है।

"अन्तर्राष्ट्रीयकरण शब्द का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, संबंध और संधियों आदि के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है अन्तर्राष्ट्रीय का अर्थ है- राष्ट्रों के बीच।

वैश्वीकरण का अर्थ है आर्थिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का विलोपन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतरक्षेत्रीय व्यापार बन जाता है।

दिन-ब-दिन वैश्वीकरण का प्रभाव बढता जा रहा है। प्रारंभ में वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग केवल अर्थ के स्तर पर लिया जाता था। आज सूक्ष्मता से देखने पर पता चलता है कि समाज का ऐसा कोई भी पक्ष वैश्वीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। आज भारत जैसे महा देश के सम्मुख भी वैश्वीकरण की समस्या खड़ी हुअी देखी जाती है। समाज संस्कृति हर

* सहायक प्राध्यापिका, रयत शिक्षण संस्था [वीर वाजेकर ए. एस. सी. कॉलेज, फुंडे, ता. उरण] रायगढ़ (महाराष्ट्र) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जगह वैश्वीकरण ने अपना प्रभाव डाल दिया है। वैश्वीकरण के इस प्रभाव को बनाए रखने में जनसंचार माध्यमों का महत्वपूर्ण योगदान देखा जाता है।

भाषा की दृष्टि से विचार किया जाए तो भारतीय भाषाओं के सम्मुख वैश्वीकरण की सबसे बड़ी समस्या देखी जाती है। भारतीय भाषाओं के सम्मुख केवल बोलचाल तक ही अस्तित्व की शंका उपस्थित हो जाती है। हिंदी का विचार किया जाए तो हिंदी और अंग्रेजी का मिला विकसित रूप देखा जाता है। हिंग्लीश संचार माध्यमों में फिर चाहे वह टेलीविजन हो या विज्ञापन हिंदी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त की जाती है पर लिखी जाती है अंग्रेजी में। जैसे- Tazgi ka Tufan.

सूचना प्रणाली ने पूरे विश्व में आधुनिक काल में आकर अपना प्रभाव डाला है। इससे साहित्य भी अछूता नहीं रहा है। साहित्य और संचार माध्यमों का एक दूसरे के साथ बहोत ही गहरा संबंध है। साहित्य के द्वारा ही संचार माध्यमों की सूचना का व्यापक प्रसार किया जाता है; किंतु साहित्य का प्रभाव पाठकों पर पड़ने से पहले ही संचार माध्यम पाठकों, दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनके द्वारा कम समय में दर्शकों पर अधिक प्रभार छोड़ते है। वैश्वीकरण की वजह से ही आज इन संचार माध्यमों ने प्रगती कर चैनल, इंटरनेट, वेबसाइट के द्वारा नए माध्यम का आत्मसात किया है। जिससे साहित्य में नए शब्दो रूपों, अर्थो, वाक्यों, संयोजन की विधियों का समावेश हुआ है।

भारत जैसे बहुभाषिक देश में हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ है। हिंदी भारत ही नहीं पूरे विश्वस्तर पर अपना प्रभाव छोड़ रही है। भले ही संचार माध्यम अपना प्रभाव पाठक, दर्शक वर्गपर अधिक सहजता के साथ बना रहे है। किंतु यह भाषा के बिना संभव नहीं। हिंदी अदालत, ज्ञान-विज्ञान, उपभोक्ता, शिक्षा को क्षेत्र में अपने-आपका अधिक सहजता के साथ प्रकट करती है। साहित्यिक हिंदी और जनसंचार माध्यमों की हिंदी मे तूलना की जाए तो, साहित्यिक हिंदी पर संस्कृत, उर्दू शब्दों का प्रभाव दिखायी देता है, जिसे समाज का हर वर्ग अच्छे से समझ सकता है, यह कहा नहीं जा सकता। किंतु संचार माध्यम बहोत ही सहजता के साथ जनभाषा का रूप धारण कर अपना अमीर प्रभाव समाज के हर वर्ग पर छोड़ रही है। आज टी.वी पर केवल सामाजिक समस्याओं से परिपूर्ण ही नहीं बल्कि पौराणिक, ऐतिहासिक, हास्य-व्यंग्य, बौद्धिक, पारिवारिक अनेक प्रकार की मालिकायें प्रसारित की जाती है, जो समाज के संपन्न वर्ग से लेकर सामान्य वर्ग तक को प्रभावित आकर्षित कर रही है, जिससे हिंदी को वैश्विक स्तर प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। इन्ही संचार माध्यमों की वजह से हिंदी बड़ी सहज, सुलभ और तेजी के साथ सरलीकरण की ओर बढ़ रही है।

संचार माध्यमों के द्वारा ही हिन्दी ने अपना अस्तित्व बनाते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात दुनिया में दूसरा स्थान प्राप्त किया है। वैश्वीकरण संचार माध्यमों के जरिए ही यह संभव हो पाया है। आज जो संचार माध्यमों मे हिंग्लीश, जनमानस की भाषा, बोलचाल, ग्रामीण रूप का प्रयोग किया जाता है उसने बुद्धीजीवी ही नहीं, कम पढ़े-लिखे, अनपढ़, छोटे-बडे सभी को प्रभावित कर रखा है। हिंदी मिश्रित अंग्रेजी के इस नए रूप ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर अपना प्रभाव डाल भारत के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए अपना प्रयोग प्राप्त किया हुआ देखा जाता है।

विज्ञापनों मे भी हिंदी ने अपना प्रभाव छोड़ा है। पिछले पॉच-सात वर्षों में हिंदी विज्ञाापन अधिक सफलता प्राप्त किए हुए देखे जाते हैं। भारत मे जो निम्न, मध्यमवर्गीय उपभोक्ता वर्ग हो वह अँग्रेजी की अपेक्षा हिंदी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा से अधिक प्रभावित होता है। हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप भी आज पत्रिकाएँ नऐ रूप आकार में सम्मुख आ रही हैं। जिसने पाठक वर्ग को आकर्षित कर हिंदी, हिंदीत्तर राज्यों के बीच की दूरी को मिटाया हुआ देखा जा सकता है।

हिंदी जनसंचार माध्यमों में विभिन्न आयु, के पाठकों के लिए प्रचुर मात्रा में साहित्य प्रकाशित, प्रसारित किया जाता है। ज्ञान-विज्ञान, मनोरंजन के विभिन्न क्षेत्रों में उसका विस्तार होता हुआ देखा जाता है। हिंदी का सर्वेक्षण किया जाए तो, विभिन्न जनसंचार माध्यमों मे हिंदी का आधिक्य देखा जाता है। हिंदी में प्रसारित होनेवाले कार्यक्रम फिर चाहे वे मनोरंजन के हो, चाहे बौद्धिक, चाहे सामाजिक इन्हें देखने वालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। अंग्रेजी के कार्यक्रम फिल्म, जानकारी हिंदी में अनुदित कर प्रसारित की जाती है।

सिनेमा की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी फिल्म ने फिल्म जगत का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार ऑस्कर तक पहुँच ही नहीं तो प्राप्त किया हुआ देखा जाता है। जिससे हिंदी जानने और समझने वालों की संख्या का अनुमान लगाया जाता है। इसके साथ ही विश्व संस्कृति को निकट ला कर उन्हें समझने का कार्य भी इसके द्वारा स्थापित किया जाता है।

मोबाईल, वेब, कंम्प्यूटर में भी हिंदी ने अपना अलग आस्तित्व निर्माण किया है। आज ऑनलाइन हिंदी की पत्र पत्रिकायें, ई-पेपर, साहिस्य के लिए नए दरवाजे खोल रखे हैं। हिंदी पहले कंम्प्यूटर के इंटरनेट में केवल अँग्रेजी का प्रभाव था, किंतु आज हिंदी में भी महत्तवपूर्ण जानकारी इंटरनेट के जरिए प्राप्त की जा सकती है। जिससे विश्व की दूरी और भी नजदीक आती हुयी दिखायी देती है।

वैश्वीकरण के इस स्पर्धा में आज हिंदी अपना अस्तित्व बना ही नहीं रही तो अपने आप को विकसित कर पूरे विश्व में अपना स्थान बना रही है। विश्वबंधुत्व की भावना निर्माण करने में अपना योगदान दे रही है।

संदर्भ ग्रंथ

आधुनिक जनसंचार माध्यम में हिंदी -जयप्रकाश पाण्डे
शरत विभाजन और हिंदी पत्रकारिता -राधाकृष्ण शर्मा
शरतीय स्वतंत्रता और हिंदी पत्रकारिता -वंशीधर लाल
शरतीय स्वतंत्रता लोक प्रसारण और नैतिकता -चिरंजन माल्वे
दूरदर्शन माध्यम और विविध तकनिक -दर्वेश काथरिया
जनसंचार और विविध माध्यम -शंभूनाथ द्विवेदी
जनसंचार माध्यम में हिंदी की स्थिती और दिशा -कीर्ति कुमार जाधव

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,12-15
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 जनवरी 2016

जयशंकर प्रसाद का धार्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण

डॉ. मंजु वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जयशंकर प्रसाद का धार्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मंजु वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

आज सृजन प्रक्रिया की गति अत्यन्त तीव्र है। आज हम अतीत के इतिहास से स्वयं को पृथक कर अहंमन्यता की भूमिका को प्रस्तुत कर रहे हैं। सांस्कृतिक मूल्यों को अस्वीकृत कर हेय दृष्टि से देख रहे हैं। नैतिकता व धर्म को दूर करने की प्रक्रिया में लगे हैं। आज विश्वजनीन मानवता में असंतोष, कुंठा, संत्रास आदि की जो विसंगतियॉ उभर कर आ रही हैं उनका मुख्य कारण सांस्कृतिक मूल्यों को ठुकराकर उच्छृंखल जीवन जीना है।

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रसाद-साहित्य का मूल वैशिष्ट्य भारतीय संस्कृति, धर्म एवं नैतिकता है। अपनी इसी गम्भीरता के कारण प्रसाद-वाङ्मय साहित्य में सर्वोपरि स्थान रखता है। वे मानवता के हितों के संरक्षक रहे हैं, साथ ही संत्रस्त मानवता को अभिनव दिशा देने में भी सक्षम हैं। प्राचीन और नवीन परिवेश के साथ प्रसाद जी ने मानव जगत को बहुत कुछ दिया भी है। उनके साहित्य के आदर्शनिष्ठ पात्र समाज को समुचित दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

धर्म शब्द अनेक अर्थों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह 'धृ' धातु से बना है। जिसका अर्थ है बनाए रखना, धारण करना, पुष्ट करना। यही वह मानदण्ड है जो विश्व को धारण करता है, किसी भी वस्तु का वह मूल तत्व है जिसके कारण वह वस्तु वह होती है। (-डॉ0राधाकृष्णन)

धर्म का उद्देश्य मानव सेवा है, करूणा का प्रवाह है, क्षमा का संचार है, स्वयं को अन्य के लिए समर्पित कर देना है। जिस ढंग से अनुशासित लोग आचरण करते हैं, वह भी धर्म का एक स्रोत है। यह आशा की जाती है कि भले मनुष्यों का व्यवहार आदर्शों के अनुकूल ही होगा और इसीलिए उसे आचरण के लिए पथ-प्रदर्शक माना जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि भले अर्थात् सज्जन मनुष्य हिन्दू ही हों, वह किसी भी जाति विशेष का हो सकता है। आज धर्म शब्द रूढ़ हो गया है और हिंसा, विद्वेष एवं प्रतिशोध का आचरण मात्र बन गया है। आज पुनः धर्म शब्द विचारणीय है। यह धर्म अच्छा है यह

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. आर. डी. ए. के. पी. जी. कॉलेज हाथरस (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

धर्म बुरा है यह असत्य है क्योंकि धर्म तो शाश्वत सत्य है- उसके नियम विश्रृंखल हो सकते हैं किन्तु उसका उद्देश्य एक ही है- कल्याण का अभ्युदय। मानवीय स्वभाव पर जो अनुशासन कर सकता है- वह धर्म है। कोई भी धर्म अन्तिम या पूर्ण नहीं है। धर्म एक गति है, एक विकास है। सत्य किसी भी धर्म की अपेक्षा कही अधिक ऊँचा है। किसी भी धर्म को परम या सर्वोच्च बताना कठिन है।

संसार की एकता के लिए कोई नया आधार होना चाहिए। किसी भी धर्म का स्वरूप उसकी रूढ़ियों, कट्टरता से पता नहीं चलता अपितु उसके आत्मिक मूल्यों और मन की सज्जा से पता चलता है। धर्म सभ्यता का आंतरिक पक्ष है। मानव-व्यक्ति शरीर मन और आत्मा से बना है। इनमे से प्रत्येक को अपने लिए समुचित पोषक तत्व चाहिए। शरीर भोजन और व्यायाम द्वारा चुस्त रहता है, मन-विज्ञान और आलोचना द्वारा तथा आत्मा कला और साहित्य द्वारा, दर्शन और धर्म द्वारा प्रबुद्ध रहती है। यदि मानवता की आत्मा का विकास करना है तो उसकी सुन्दरतम ऊर्जाओं द्वारा ही हो सकता है।

नैतिकता और धर्म साहित्य का परम लक्ष्य है। धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण है। उसमें नैतिकता और आस्तिकता का सच्चा स्वरूप दृष्टिगत होता है। मानव हृदय को पावन और मृदुल बनाने की क्षमता धर्म में ही होती है। धार्मिक प्रवृति साहित्य को विश्व कल्याणकारी बनाती है। साहित्य जब धर्म से पोषित होता है तब उसमे आदर्श सुरक्षित रहते हैं।

धर्म एक विशेष प्रकार का तत्व है जो मानव को मानवता की शिक्षा देने के लिए उसके साथ शाश्वत बना रहता है। (-धर्मशास्त्र)

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं। मनु के अनुसार- 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशक धर्म लक्षणम।।' अर्थात् धैर्य, क्षमा, विषयभोगों का दमन, चोरी न करना, आंतरिक एवं वाह्य स्वच्छता, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं क्रोध न करना ये धर्म के दस लक्षण हैं। इन धर्म के दस लक्षणों को अपनाने वाले मानव की अवश्य ही मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। मानव का पूर्ण विकास होता है। धार्यते इति धर्मः जो धारण किया जाये वही धर्म है। यदि ध्यान पूर्वक विचार किया जाए तो इन गुणों से युक्त व्यक्ति अपने इस जीवन में भी सुखों को प्राप्त करता है और उसे परलोक के सुखों की भी प्राप्ति होती है। धर्म जीवन के सत्यों, मूल्यों और कर्तव्यों के लिए एक संज्ञा मात्र है जिसका पालन करके हम इस लोक और परलोक दोनों को सुधारते हैं। महात्मा गांधी ने धर्म को एक महान शक्ति के रूप में स्वीकार किया- धर्म वह शक्ति है जो व्याक्ति को बड़े से बड़े संकट में भी ईमानदार बनाए रखती है, यह इस संसार में और दूसरे में भी व्यक्ति की आशा का अन्तिम सहारा है।

धर्म मानव में मानवीय गुणों का विकास कर मानवीय प्रव्रति की ओर प्रवृत्त कर उसे यथार्थता का परिचय कराता है। धर्म के माध्यम से अनेक प्रकार के विवादों का भी अन्त हो जाता है। यह मानव में एक अलौकिक शक्ति का भी संचार करता है। धर्म का स्वरूप अति व्यापक एवं विस्तृत है। धर्म ही मानव के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, व्यवहारिक जीवन को एक यथार्थ मार्ग दिखाता है। सामाजिक जीवन की व्यवस्था के लिए कुछ नियम बनाए जाते हैं। जब ये नियम धर्म से सम्बन्धित हो जाते हैं तो उन्हें नैतिक नियम कहते हैं और उनके पालन करने के भाव अथवा शक्ति को नैतिकता कहते हैं। अपने वास्तविक अर्थ में धर्म और नैतिकता में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता है।

तुलसीदास ने मानव जीवन के शाश्वत धर्म को समझकर ही मानस की रचना की तथा नैतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की। भारतीय संस्कृति के नीतिपरक तथा धार्मिक तत्वों के अभाव में सृजित साहित्य अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है और न ही वह युग को दिशाबोध देने में ही समर्थ हो सकता है। प्रसाद जी का कहना है- ''धर्म मानवीय स्वभाव पर शासन करता है, न कर सके तो मनुष्य और पशु में भेद क्या रह जाए।'' (-कंकाल)

धर्म में संस्कार और सह-विचारों की प्रमुखता रहती है। जयशंकर प्रसाद ने धर्म को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर का अस्तित्व, ईश्वर की एकता, ईश्वर-भक्ति, उपासना, यज्ञ-कर्म, देव स्वरूप तथा धार्मिक विश्वास। धर्म के इन रूपों पर ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। जनमेजय का नागयज्ञ तथा चन्द्रगुप्त में ब्राह्मण धर्म की प्रधानता है। प्रसाद बौद्ध धर्म से अधिक प्रभावित हैं। वे संसार के प्रत्येक प्राणी को सुखी जीवन-यापन करते देखना चाहते हैं लेकिन वह कहते हैं- प्रकृति से विद्रोह करके नये साधनों के लिए कितना प्रयास होता है.....इतनी छीना झपटी, इतना स्वार्थ-साधन कि सहज प्राप्त अंतर्रात्मा की सुख शांति को भी लोग खो बैठते हैं। भाई-भाई से लड़ रहा है,

पुत्र-पिता से विद्रोह कर रहा है, स्त्रियॉ-पतियों पर प्रेम नहीं शासन करना चाहती हैं। मनुष्य, मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्र-कला को प्रधान गुण समझने लगा है। स्कंदगुप्त में भी विजया ने नर्क की ओर संकेत करते हुए कहा है- संसार में छल, प्रवंचना और हत्याओं को देखकर कभी-कभी मान ही लेना पड़ता है कि यह जगत ही नरक है, कृतघ्नता और पाखंड का साम्राज्य यहीं है। छीना-झपटी, नोचखसोट, मुँह में से आधी रोटी छीनकर भागने वाले विकट जीव यहीं तो हैं। श्मशान के कुत्तों से भी बढ़कर मनुष्यों की पतित दशा है।

प्रसाद इन सब का अंत करूणा में मानते हैं- विश्वभर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करूणा है, जो प्राणी मात्र में समदृष्टि रखती है।

उचित व्यवहारों की संज्ञा नीति है। मानव समाज में दो प्रकार के प्राणी होते हैं- सज्जन और दुर्जन। सज्जन पुरूष सदा यह चाहते हैं कि संसार के सभी व्यक्ति सदाचारी, परोपकारी और सत्यभाषी हों परन्तु दुर्जन व्यक्ति दूसरों के हितों की उपेक्षा करते हुए स्वयंसिद्धि करना ही अपना ध्येय समझते हैं। मनुष्य के गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते ही उसे कर्तव्य आ घेरते हैं जो जीवनपर्यन्त तक नहीं छोड़ते हैं। प्रसाद जी अनैतिक कृत्यों को त्यागते हुए यह कामना करते हैं- दूर हों दुर्बलता के जाल, दीर्घ निःश्वासों का हो अन्त। (--कानन कुसुम)

धार्मिक पृष्ठभूमि में प्रसाद जी ने सत्य को उच्च स्थान प्रदान किया है, उसे धर्म की कोटि में रखा है। उनका मत है कि सत्य महान धर्म है.....वह तप से भी उच्च है क्योंकि वह दम्भविहीन है। वह शुद्ध-बुद्धि की आकाशवाणी, वह अंतराल की सत्ता है। (--जनमेजय का नागयज्ञ)

जो बात कही जाए, सुनी जाए और सोची जाए उसे उसी रूप में व्यक्त करना ही सत्य कहलाता है। सत्य बोलने से हमारी आत्मा निष्कलुष रहती है। शास्त्रों में सत्य की महत्ता का गुणगान किया गया है- ''सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः/ सत्येन वाति वायुश्च सर्वे सत्यं प्रतिष्ठितं।।' (-चाणक्य नीति)

सत्य का स्थान उच्च होने से ही मनुष्य ने सदा सत्य को ही ग्रहण किया है। ऑधी कहानी में प्रज्ञासारथि के शब्दों में-सुख और दुःख, आकाश और पृथ्वी, स्वर्ग और नरक के बीच में ही वह सत्य है जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है। (--ऑधी)

परन्तु मनुष्य सत्य को पहचानने में अपूर्ण है। आज सभी धर्म समय और देश की स्थिति के अनुसार विकृत हो रहे हैं, उसमें कट्टरता और हठधर्मता आ रही है। विविध ज्ञानों से हमें मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। (---स्कंदगुप्त)

सत्य एक महान धर्म होने से प्राचीन ऋषियों ने उसका अन्वेषण करते हुए जीवन के लिए आवश्यक बताया है। सत्य गहनतम है उसे पकड़ना अत्यन्त कठिन कार्य है। सत्य को पहचानने में बुद्धि का सहयोग आवश्यक है। बुद्धि की तर्कशक्ति के द्वारा ही सत्य को पहचाना जा सकता है। तर्क एक ऐसा बुद्धि वैभव है जो सत्य का पता लगा लेता है--प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि। (--डा0 प्रेमदत्त शर्मा)

सत्य के संबंध में प्रसाद जी ने कामायनी में व्याख्या इस प्रकार की है- ''और सत्य.। यह एक शब्द तू/ कितना गहन हुआ है,/ मेघा के क्रीड़ा पंजर का/ पाला हुआ सुआ है। सब बातों में खोज तुम्हारी/ रट सी लगी हुई है। किन्तु स्पर्श से तर्क करो के/ बनता छुईमुई है।।'' (--कामायनी, कर्मसर्ग)

प्रसाद जी का मानना है कि मनुष्य को सत्य का सहारा लेकर सत्कर्म करने चाहिए। सत्कर्म से हृदय विमल बनता है और हृदय में उच्च वृत्तियॉ स्थान पाने लगती हैं। (--विशाख)

सत्कर्म करने में बुद्धि सहायक होती है इसलिए प्रसाद जी का कहना है कि- ''जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो, तब तक स्वार्थ-प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है।'' (--विशाख)

प्रसाद जी विश्वबन्धुत्व की भावना में विश्वास रखते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को आत्ममय माना है। विश्व के सुख दुखों को आत्मसात करता हुआ कवि बन्धनहीन जग की कल्पना जीता हुआ कहता है- ''तोड़कर बाधा-बन्धन भेद/ भूल जा अहमिति का यह स्वार्थ।''

इसी प्रकार कामायनी के कर्म सर्ग में श्रृद्धा मनु से कहती है- ''औरों को हॅसते देखो मनु/ हॅसों और सुख पाओ,/ अपने सुख को विस्तृत कर लो/ सबको सुखी बनाओ।।''

''जनमेजय के नागयज्ञ'' का आस्तिक विश्वबन्धुत्व के संदर्भ में कहता है- ''कॉटों में फूल खिले विकास हो, प्रकाश हो, सौरभ खेल खेले। विश्व मात्र एक कुसुम स्तवक सदृश किसी निष्काम के करों में अर्पित हो। आनन्द का रसीला राग गूँज उठे। विश्व भर का क्रंदन कोकिल की काकली में परिणत हो जाए।।'' जनमेजय का नागयज्ञ (नेपथ्य गान)

प्रसाद जी का मानवतावादी दृष्टिकोण उनके सम्पूर्ण साहित्य में ही दिखाई देता है। उनके सद्पात्र मानवतावादी है, सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना करते हैं। प्रसाद जी ने उसी को मानव माना है जो मानव के हित हो- ''दुःखी जनों के दुःख को निवारि के/ सुखी कर धर्म महा प्रचारि के/ अतिथ्य सेवारत मोद को भरे/ मनुष्य सत्कर्म यज्ञ को करे।।''

प्रसाद जी समस्त मानवता को सुखी एवं व्याधि-विहीन देखना चाहते हैं।

स्कंदगुप्त नाटक के पात्र धातुसेन के द्वारा यही कहलाया गया है- ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।''

वैदिक दर्शन और गीता के अनुसार ही प्रसाद के कवि ने विश्वबन्धुत्व और मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए मानव-पीड़ा को आत्मपीड़ा के रूप में अनुभूत किया है। कामायनी महाकाव्य मानवतावाद एवं अहिंसा का संदेश प्रसारित करने वाला काव्य है। प्रसाद जी ने सम्पूर्ण मानवता को विजयिनी बनाने का आह्वान किया है- ''समन्वय उसका करे समस्त। विजयिनी मानवता हो जाये।'' (----कामायनी श्रद्धा सर्ग)

स्रोत

कामायनी -जयशंकर प्रसाद
कंकाल -जयशंकर प्रसाद
जनमेजय का नागयज्ञ -जयशंकर प्रसाद
विशाख -जयशंकर प्रसाद
स्कंदगुप्त -जयशंकर प्रसाद
धर्म और समाज -डा0 राधाकृष्णन
प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि -डा0 प्रेमदत्त शर्मा

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,16-19
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 फरवरी 2016

हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व

डॉ. रमेश टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश टण्डन* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

गरीबी को अतिनजदीक से अनुभव करने वाले, सामान्य जीवन शैली, औघड़ व्यक्तित्व, तेज स्मरण शक्ति से सम्पन्न, अविवाहित परसाई जी ने व्यंग्य को एक नया आयाम दिया। इन्हीं से पाठकों ने जाना कि व्यंग्य ही सच्चाई से साक्षात्कार कराता है, मिथ्याचारों व बाह्याडम्बरों को उजागर करता है। आप व्यंग्य की दुनिया के सर्वप्रथम लेखक हैं और व्यंग्य के चारों स्तम्भों हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल व रविन्द्रनाथ त्यागी में से शीर्षस्थ व्यंग्यकार के रूप में सदैव स्मरण रहेंगे।

कूट शब्द- ''व्यंग्य के महानायक श्री हरिशंकर परसाई''

आपका जन्म 22 अगस्त 1924 ई. को ग्राम- जमानी जिला- होशंगावाद (मध्यप्रदेश) में हुआ। सन् 1936 या 1937 की बात है- आप आठवीं के छात्र थे। कस्बे में प्लेग फैल गयी थी। आबादी घर छोड़ जंगल में टपरे बनाकर रहने चली गयी थी। आप लोग नहीं गये थे। माँ बहुत बीमार थी, उन्हें लेकर जंगल नहीं जाया जा सकता था। भाँय-भाँय करते पूरे आस-पास में आपके ही घर चहल-पहल थी। काली रातें। इनमें आपके घर जलने वाले कंदील। आपको इन कंदीलों से डर लगता था। कुत्ते तक बस्ती छोड़ गए थे। रात के सन्नाटे में स्वयं की आवाजें भी डरावनी लगती थी। रात को मरणासन्न माँ के सामने आप लोग आरती गाते- जय जगदीश हरे, भक्त जनों के संकट पल में दूर करे। गाते-गाते पिताजी सिसकने लगते, माँ बिलखकर आप बच्चों को हृदय से चिपटा लेती और साथ में आप सभी रोने लगते। रोज का यही नियम था। फिर रात को पिताजी, चाचा और दो-एक रिश्तेदार लाठी बल्लम लेकर घर के चारों तरफ घूम-घूमकर पहरा देते। ऐसे भयकारी त्रासदायक वातावरण में एक रात तीसरे पहर माँ की मृत्यु हो गई। कोलाहल और विलाप शुरू हो गया। कुछ कुत्ते भी सिमटकर आ गए और योग देने लगे।

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शा. महावि. खरसिया (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

माँ की मृत्यु के बाद पिताजी टूट-से गए। लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरने लगे। धंधा ठप्प। जमा पूंजी खाने लगे। बीमारी की हालत में पिताजी ने आपकी एक बहन की शादी भी कर दी थी। इसके बावजूद आपके छोटे दो छोटी बहनें और एक भाई था।

आपका मैट्रिक हुआ। 18 वर्ष की आयु में जंगल विभाग, नाकू (इटारसी) में नौकरी मिली। जंगल में सरकारी टपरे में रहना हुआ। जमीन पर ईंटें रखते थे, फिर उन पर पटिए जमाकर बिस्तर लगाते थे। नीचे जमीन को चूहों ने पोला कर रखा था। चूहे रात भर नीचे धमाचौकड़ी करते और आप ऊपर सोये रहते। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो आपकी नींद टूट जाती पर फिर सो जाते। छह महीने धमाचौकड़ी करते चूहों पर आप सोये।

फिर नौकरी की तलाश। इस दौरान आपने तीन विद्या सीखी। पहली विद्या- बिना टिकट यात्रा करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खंडवा, इन्दौर, देवास बार-बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसे थे नहीं। आप बिना टिकट बेखटके गाड़ी में बैठ जाते। तरकीबें बचने की बहुत आ गयी थीं। पकड़े जाते तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत का बखान करते। अंग्रेजी के माध्यम से मुसीबत, बाबुओं को प्रभावित करती और वे कहते- लेट्स हेल्प दी पूअर बॉय। दूसरी विद्या- उधार माँगने की। तीसरी विद्या- बेफिक्री, जो होना होगा, होगा, क्या होगा ? ठीक ही होगा।

एक बार शिक्षाधिकारी होशंगावाद से नौकरी मांगने गये। निराश हुए। स्टेशन पर इटारसी के लिए गाड़ी के इंतजार में बैठे थे। पास में एक रूपया था, जो कहीं गिर गया था। इटारसी तो बिना टिकट चले जाते, पर खाते क्या? दूसरे महायुद्ध का जमाना। गाड़ियाँ बहुत लेट होती थीं। पेट खाली। पानी से बार - बार भरते। अंत में बेंच पर लेट गए। चौदह घंटे हो गए। एक किसान आपके किनारे आकर बैठ गया। उसके पास टोकरी में स्वयं के खेत के खरबूजे थे। आप उस समय चोरी कर सकते थे लेकिन नहीं किए। किसान खरबूजा काटने लगा। आपने कहा - तुम्हारे ही खेत के होंगे। बड़े अच्छे हैं। किसान ने कहा - सब नर्मदा मैया की किरपा है भैया! शक्कर की तरह है। लो खाके देखो। उसने दो बड़ी फाँकें दी। आपने कम-से-कम छिलका छोड़कर सब खा लिया।

आपको जबलपुर के सरकारी स्कूल में नौकरी मिल गयी। आपके पास किराये तक के पैसे नहीं थे। दरी में कपड़े बांधकर गाड़ी में चढ़ गये। बिना टिकट। सामान के कारण इस बार थोड़ा खटके। पास में कलेक्टर का खानसामा बैठा था। बातचीत के दौरान आदमी आपको अच्छा लगा। आपने अपनी समस्या बतायी। उसने कहा - चिन्ता मत करो। सामान मुझे दो। मैं बाहर राह देखूंगा। तुम कहीं पानी पीने के बहाने सीखचों के पास पहुँच जाना। नल सीखचों के पास ही है। वहाँ सीखचों को उखाड़कर निकलने की जगह बनी हुई है। खिसक लेना। आपने वैसा ही किया। आपको इस नौकरी की पहली तनख्वाह मिली ही थी कि पिताजी की मृत्यु की खबर आ गयी। माँ के बचे जेवर बेचकर पिताजी का श्राद्ध किया।

आपने तय किया कि किसी से नहीं डरना है, जिम्मेदारी को गैर जिम्मेदारी के साथ निभाना है। आप इतने गैर जिम्मेदार हो गये कि बहन की शादी करने जा रहे थे और रेल में जेब कट गई और अगले स्टेशन पर पूड़ी-साग खाकर निश्चिंत मजे से बैठे रहे यह सोचकर कि कुछ हो ही जाएगा। मगर मदद आ गयी और शादी भी हो गई।

आपको एक दिन भोपाल में फोन पर खबर दी गई कि चौबीस तारीख को आपको पं. द्वारका प्रसाद मिश्र से मिलना है। मिश्र जी तब प्रधानमंत्री इंदिरागांधी के बहुत निकट थे। उन्होंने कहा कि आपको राष्ट्रपति से राज्यसभा की सदस्यता के लिए नामजद करायेंगे, आपको नये अनुभव होंगे, आर्थिक निश्चिंतता होगी और आप बहुत लिखेंगे। बात आपको अच्छी लगी। आप कुछ दिन बाद दिल्ली गये। सुभद्रा जोशी ने कहा कि आपका नाम चल रहा है और ऊपर है। केशवदेव मालवीय ने भी कहा। अब आपकी कल्पना में वेस्टर्न कोर्ट घूमने लगा। आप जबलपुर लौट आये। एक दिन श्रीकांत वर्मा का तार मिला कि फौरन दिल्ली आइये। आप पहुँचे। श्रीकांत से मिले। उन्होंने कहा- आपको पहले आ जाना था। कल शायद चार सदस्यों की नामजदगी हो चुकी। आप सुभद्रा जोशी के पास गये। उन्होंने फोन पर मिश्र जी से बात की। नामजदगी हो चुकी थी।

बनिया अलसी के घाटे को मूंगफली के मुनाफे से पूरा कर लेता है। 1985 में आपको दौड़ में मेडल पाने वाली लड़की पी. टी. उषा के साथ पद्मश्री मिल गया।

प्राइवेट स्कूल में आपने अध्यापकों की हड़ताल कराई थी और आपको नौकरी छोड़नी पड़ी थी। दूसरे स्कूल के प्रबंधकों ने आपको नौकरी दी। उसी स्कूल के ट्रस्ट का एक कॉलेज भी एक इमारत में चलता था। कालेज में हिन्दी के अध्यापक की

जगह खाली थी। वहाँ के प्राचार्य खम्भे की आड़ में या इमारत के एकान्त कोने में ले जाकर आपको धीरे-धीरे कहते- 'तो फिर आप कालेज में आ ही रहे हैं न। आप तय कर लीजिए। आप बुद्धिमान हैं, आपका व्यक्तित्व है, मैं तो आपको कालेज में लेकर ही रहूंगा।' आपकी इच्छा सचमुच में अध्यापक हो जाने की थी। विज्ञापन निकला। आवेदन-पत्र देने की तारीख के तीन दिन पहले आप प्राचार्य से मिले और पूछे- क्या मैं आवेदन कर दूँ? उन्होंने सीधे आपकी तरफ नहीं देखा, अगल-बगल देखते हुए उन्होंने कहा- 'हां, आवेदन करने में क्या हर्ज है।' आपने आवेदन नहीं किया। बाद में मालूम हुआ कि उन्हें एक-दो लोगों ने सलाह दी थी कि 'परसाई को यदि आपने कालेज में लिया तो वह लड़कों को भड़कायेगा, उपद्रव करायेगा, अध्यापकों को आपसे लड़वायेगा।' इसके बाद आपने स्कूल की नौकरी भी छोड़ दी।

घर में बहन, भांजे - भांजी और बहू हैं। विवाह नहीं किया। सभी मित्रों के बेटे-बेटियों की शादी की चिंता भी आप करते थे। आपकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत थी। आपने किससे क्या कहा है, कभी नहीं भूलते। मिलने वालों की चालाकी तुरन्त भांप जाते थे।

20 वर्ष बिस्तर पर रहे। इससे पहले दिनचर्या बिल्कुल अलग थी। घूमते रहते। बस स्टैण्ड में घूमते, पान की दूकान में बैठते, चाय टपरियों में पीते, पल्लेदारों से बातें करते। ट्रेन में तीसरे दर्जे - दूसरे दर्जे में सफर करते और चुपचाप आम आदमी की बातें सुनते। आपने विवाह नहीं किया, पर कोई कहता.....'भोपाल में रहिए, सागर में रहिए' तो बोलते..... .'परिवार को नहीं छोड़ सकता। जबलपुर नहीं छोड़ सकता।' परिवार माने क्या - बहन सीता, भांजे.....राजकुमार, प्रकाश, विद्याभूषण, भांजी- मुन्नी और राजकुमार के पुत्र सोनू और छोटू, छोटे भाई गौरीशंकर, उसकी पत्नी और दो बेटियाँ।.. ..आदि के साथ गाँव में रहते रहे।

जंगल विभाग में नौकरी के बाद आपने 06 महीने खण्डवा में अध्यापन किया। दो वर्ष (1941-43) जबलपुर के स्पेन्स ट्रेनिंग कालेज में शिक्षण कार्य का अध्ययन किया। 1943 से वहीं के मॉडल हाई स्कूल में अध्यापन कार्य किया। अध्यापक एवं छात्रों के बीच परम लोकप्रियता अर्जित करने के बावजूद 1952 में इस्तीफा दिया। 1953 से 1957 तक प्राइवेट स्कूलों में पढ़ाया। फिर नौकरी को सदा के लिए अलविदा किया। तब से लगातार स्वतंत्र लेखन करते रहे।

आपने नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. किया। महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान के लिए रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर ने आपको डी. लिट्. की मानद उपाधि से सम्मानित किया। 1982 में साहित्य अकादमी से विभूषित। 1984 में मध्यप्रदेश शासन का शिखर सम्मान। 1986 में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सर्वोच्च सम्मान 'भवभूति अलंकरण' से अलंकृत। 1989 में पद्‌मश्री से अलंकृत। विश्व शांति सम्मेलन सोवियत रूस में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य की हैसियत से सम्मिलित।

घटना 10 अगस्त 1995 की। कमला प्रसाद के शब्दों में, ''सुना था, कम बातें करते हैं। तबियत ठीक नहीं है। बोलने से थक जाते हैं। मैं उनके साथ रहा तो बोलते-पूछते रहे।

मैंने कहा, 'बाहर बैठता हूँ।'

बोले, 'थोड़ी देर आँख बंद कर लूंगा, ठीक हो जायेगा बैठो।'

मैंने कहा - 'मित्रों से मिलकर आता हूँ।'

बोले....'बाद में जाना।'

चलने लगा तो यह नहीं पूछा.....'कब आओगे।'

दीदी सीता ने कहा.....'भइया ठीक आ गए। तुमसे बातें खूब की। हल्के हुए।'

सोचता हूँ कि क्या उन्हें पता था कि यह आखिरी मुलाकात है?

10 अगस्त को सायं 7 बजे सेवाराम के साथ ग्वारीघाट पहुंचा तो चिता धू-धू जल रही थी। लोग वापस चले गए थे। केश कांस फूल की तरह जल गए। चिता का चक्कर लगाया। आँसू नहीं रूके तो नहीं रूके।''[1]

क्यों लिखा ?

आपने 'गर्दिश के दिन' में लिखा है- ''मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे, अपने को अवशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया। यह तब की बात है, मेरा ख्याल है, तब ऐसी ही बात होगी।

पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुःख के इस सम्मोहन-जाल से निकल गया। मैंने अपने को विस्तार दे दिया। दुःखी और भी हैं। अन्याय-पीड़ित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना सम्पन्न हूँ।

यहीं कहीं व्यंग्य-लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा-रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढ़ंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया। और बहुत गम्भीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।''[2]

क्या लिखा ?

1. भूत के पाँव पीछे, 1961
2. बेईमानी की परत, 1965
3. सुनो भाई साधो, 1965
4. पगडंडियों का जमाना, 1966
5. सदाचार का ताबीज, 1967
6. निठल्ले की डायरी, 1968
7. और अंत में, 1968
8. शिकायत मुझे भी है, 1970
9. ठिठुरता हुआ गणतंत्र, 1970
10. तिरछी रेखाएँ, 1972
11. अपनी-अपनी बीमारी, 1972
12. वैष्णव की फिसलन, 1976
13. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, 1977
14. विकलांग श्रद्धा का दौर, 1980
15. मेरी प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएँ
16. तट की खोज
17. तुलसीदास चंदन घिसै
18. जैसे उनके दिन फिरे
19. तब की बात और थी।

संदर्भ

[1]अग्रवाल, महावीर- *व्यंग्य सप्तक - एक,* पृष्ठ संख्या 37
2अग्रवाल, महावीर- *व्यंग्य सप्तक - एक,* पृष्ठ संख्या 24

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,20-22
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 13 फरवरी 2016

दृषद्वती से गंगा तक : एक संक्षिप्त अवलोकन

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दृषद्वती से गंगा तक : एक संक्षिप्त अवलोकन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र *दृषद्वती से गंगा तक* नामक पुस्तक का संक्षिप्त अवलोकन है। इस पुस्तक के लेखक/ सम्पादक डॉ0 त्रिभुवन राय हैं। उन्होंने इस पुस्तक में मूलतः आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम' की यादों में एक स्मृति ग्रंथ का सम्पादन किया है। पुस्तक के अनुक्रम से ज्ञात होता है कि इसके अन्तर्गत कुल तीन खण्ड हैं :

प्रथम खण्ड; प्रथम खण्ड के आरम्भ में अभिराज राजेन्द्र मिश्र एवं डॉ0 महेन्द्र शुक्ल 'शास्त्री' द्वारा प्रशस्ति श्लोकों को प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में अनेक संस्कृत एवं हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा श्री सोम के प्रशंसा में विभिन्न काव्य रचनायें प्रस्तुत की गयी हैं।

संस्मरण; डॉ0 राजेन्द्र मिश्रा, डॉ0 आनंद प्रकाश दीक्षित सरीखे विद्वानों ने 'संस्मरण खण्ड' में सोम जी से जुड़ी अपनी स्मृतियों को प्रस्तुत किया है।

खण्ड-2 एवं खण्ड-3 के अन्तर्गत बोध दृष्टि एवं भक्ति आधारित भारतीय साहित्य की समीक्षायें की गयी है। डॉ0 विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'भक्ति' नामक शीर्षक अत्यन्त दिव्य प्रतीत होता है।

परिशिष्ट; पुस्तक के परिशिष्ट के अन्तर्गत पत्रों के दर्पण में श्री सोम के व्यक्तित्व का आंकलन किया गया है साथ ही आचार्य सोम के संक्षिप्त जीवन परिचय पर भी प्रकाश डाला गया है।

श्री आचार्य पण्डित मुंशी शर्मा 'सोम' की जन्मशती के उपलक्ष्य में सम्पादित इस पुस्तक में पूर्व-प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत की है।

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन महिला महाविद्यालय [सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय] इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पण्डित मुंशीराम शर्मा 'सोम' का संक्षिप्त परिचय

देहात के सादगी भरे वातावरण में जन्मे, पले और बढ़े पण्डित 'सोम' की वेशभूषा-धोती कुर्ता/ कोट और साफा-उनके खाँटी देशी व्यक्तित्व की पहचान थी। वह खाँटी देशीपन उनके भीतर भी पूरी तरह समाया हुआ था। उनका यह देशीपन आधुनिकतावादियों के लिये चुनौती सदृश था। नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने उनके व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुये कहा है, ''आत्मबुद्धि से जीने वाले मुंशीराम जी उन देह बुद्धि से जीने वालों को खटकते होंगे जो आधुनिकता के बहाने भारतीय कविकर्म के कालजयीरूप को स्वीकार नहीं करते, आधुनिकता के अवलेप में जिनका विदेशी मन और विदेशी मूल छिपा है।[1]

आचार्य 'सोम' में जहाँ एक निष्ठावान आदर्श अध्यापक के गुण थे वहीं उनके भीतर ऐसा समर्पित लेखक भी था जो तथ्यों की सूक्ष्म पड़ताल करते हुये सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। अध्यापन उनके लिये आजीविका का साधन मात्र नहीं था, वह तो उनके लिये अपने आदर्शों को रूपायित करने का माध्यम था। तभी तो कानपुर छोड़कर वह कभी बाहर नहीं गये। अध्ययन, चिन्तन, मनन और लेखन उनके अन्तः के रचनाशील साधक की उस भूख को शान्त करने के जरिया थे, जिसका एक सिरा सीधे समाज से जुड़ता है। इस प्रकार उनकी रचनात्मक सक्रियता समर्थ सुयोग्य अध्यापन के साथ विद्वत्तापूर्ण लेखन के स्तर भी दीख पड़ती है। वह यह मानते थे कि ''अध्ययन अध्यापन का अनिवार्य अंग है। एक का अभ्यास दूसरे की निरन्तर सहायता करता है।'' (भक्ति का विकास) विनम्रतापूर्वक वह यह भी स्वीकार करते हैं कि शिक्षा के इन दोनों अंगों से प्रकाश की जो किरणें प्राप्त हुईं 'उन्हीं की सहायता से सूरदास, जायसी और कबीर प्रभृति हिन्दी के कवियों की भावनाओं को हृदयंगम करने में' कुछ-कुछ समर्थ हो सके।[2]

ज्ञान साधना और कर्मनिष्ठा के साथ भक्ति भावना भी पण्डित 'सोम' को पारिवारिक विरासत अथवा 'जन्मजन्मांतर' के संस्कार के रूप में प्राप्त हुई थी। उनकी आत्म स्वीकृति है कि ''ज्ञान कर्म के साथ भक्ति ने विशेष रूप से मेरे अस्तित्व का संवर्द्धन किया है।'' भक्ति भाव उनके सभी कार्यों में प्रेरक रहा है। उसके बीज का संकेत करते हुये उन्होंने लिखा है, ''छोटा था तब भी याद है, स्नान करके ग्राम देवता तथा पथवारी देवी पर जल चढ़ाया करता था। महर्षि दयानंद के जीवन तथा ग्रंथों से सच्चे शिव की ओर चला और 'भक्ति तरंगिणी' तथा 'भागवती आभा' द्वारा प्रभु का गुण-कीर्तन करके भी आश्वस्त हुआ।'' (मेरा जीवन प्रवाह) प्रभु भक्ति को अपनी जीवन यात्रा का पाथेय स्वीकार करते हुये उन्होंने कहा है, ''पाठशाला में जननी भेज, हुई स्वर्गगत ले अपना तेज। तुम्हारी गोद बनी सुख सेज, बढ़ा मैं तुम्हें स्वरूप सहेज। तुम्हारी भक्ति रही पाथेय, मिला ज्ञानामृत सुरूचि सुपेय।।'' (भागवती आभा)

प्रकट है, महनीय परम सत्ता की ओर वह बाल्यावस्था से ही आकृष्ट रहे हैं। अतः सरस्वती की साधना के साथ उसके सौंदर्य एवं विभूति का आख्यान एवं अंकन उनकी साहित्य साधना का अंग रहा है। 'भगवती आभा' तो एक प्रकार से उनके विह्वल भक्त हृदय की 'विनय पत्रिका' है। उसमें कवि की अन्तर्वेदना मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है; साथ ही उसके प्रकाश के लिये आकुल भक्त की आस्था भी यहाँ मिलती है। विपत्ती और वेदना की जिन स्थितियों में इसके छन्दों ने आकार ग्रहण किया है, उसे 'सोम' प्रभु की कृपा का ही प्रसाद मानते हैं। इसलिये विपत्ति को भी वह वरदान के रूप में स्वीकार करते हैं। ''प्रभु की कृपा कब सबको कैसे कुछ दे जाती है, विपत्ति सम्पत्ति बन जाती है।....इसे प्रभु ही जानते हैं। भक्त तो उनका वरदान पाकर अपनी तन्निष्ठता को दृढ़ कर लेता है। वे इस बात को भलीभांति जानते हैं कि भक्ति का अंकुर जब भक्त के भीतर फूटता है, तब वह कुछ का कुछ हो जाता है। ''काष्ठ में निहित अग्नि जैसे प्रज्ज्वलित हो उठती है, तालाब में जैसे कमल विकसित हो जाता है, उसी प्रकार साधक के हृदय के अन्दर आत्म ज्योति जगमगाने लगती है।'' (भक्ति का विकास) वे यह भी मानते हैं कि ''सुख, प्रसन्नता, आनंद तो भगवान की शरण ग्रहण करने में है।'' अतः 'श्रुति संगीत का' में वह पाठकों को उसी दिशा में ले जाने का उपक्रम करते हैं।[3]

आचार्य सोम वेद को अपनी आत्मा के अधिक निकट पाते हैं; इसलिये उनका जीवन और कृतित्व यदि वैदिक भावधारा में रचा-बसा हो तो आश्चर्य नहीं करना चाहिये। उन्होंने अपने साहित्य ग्रंथों पर वेद की छाप को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। 'सुर-सागर' की कृष्ण लीलाओं के विवेचन में वेद के अध्ययन ने उनकी अनुपम सहायता की है, इस बात को

उन्होंने माना है। उनकी यह भी मान्यता है कि वेद के आलोक में सूर का हृदय प्रसूत काव्य कमनीय और दीप्त हो उठता है।[4]

आचार्य सोम ने वेदों का गम्भीर अध्ययन ही नहीं किया, उनका तर्क सम्मत, सार्थक और प्रासंगिक विवेचन भी प्रस्तुत किया। वैदिकी, प्रथमजा, वैदिक विकास पद्धति, वैदिक निबन्धावली, वेदार्थ-चन्द्रिका, चतुर्वेद मीमांसा, वैदिक चिन्तामणि और वैदिक मंत्रों का तुलनात्मक अध्ययन आदि ग्रंथों में वह वेदों के प्रामाणिक व्याख्याकार के रूप में सामने आते हैं। अपनी सारग्रहिणी सूक्ष्म दृष्टि के सहारे वर्तमान संकुल जीवन में वैदिक मंत्र राशि की अर्थवत्ता को प्रतिष्ठित करने में वह सर्वत्र संलग्न दिखाई देते हैं। इस प्रकार आधुनिक युग में वैदिक अध्ययन की परम्परा को अगे बढ़ाने वाले विद्वानों के बीच उनके कृतित्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता।[5]

पण्डित 'सोम', वर्ण को वृत्तियों से जोड़कर देखते हैं और उनकी सार्थकता मानवता के उन्नयन में मान्य करते हैं। उनकी दृष्टि में हम सभी जन्म से शूद्र होते हैं। ''यह अवस्था बिना कमाई अपरिमार्जित मिट्टी ही सी है।'' ब्राह्मणत्व को वह निःसंदेह, सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, इसलिये कि वह मानवता का पर्याय है। वैश्यत्व, क्षत्रियत्व की तरह ब्राह्मणत्व भी उनके विचार में अर्जन की वस्तु है। उनका अभिमत है, ''वेद संस्कृति के विशुद्ध रूप ब्राह्मण का मन, वाणी और कर्म एक होते हैं। वह अपने कल्याणकारी चिन्तन के साथ मंगलमयी वाणी का उच्चारण करता है और उसी के साथ अपना दिव्य आचरण प्रकट करता है। उसका हृदय मानवता से ओत-प्रोत रहता है।'' सात्विकता उनकी दृष्टि में विकास की उच्च स्थिति है। ''यही परम पवित्रता और सच्चा ब्राह्मणत्व है।''[6]

हिन्दी में आचार्य बहुत हुये हैं, पर राष्ट्रीयता, आध्यात्म, दर्शन, काव्य-साहित्य और चिन्तन, हर क्षेत्र में अपना पृथक् व्यक्तित्व रखते हुये सबको अधिकार पूर्वक समान भाव से साधने वाले विरल ही होंगे। आचार्य 'सोम' ऐसे ही एक विशिष्ट विरले साधक हैं। तब भी यदि निकट के अध्येताओं की पीढ़ियाँ उन्हें वह नहीं दे पायीं, जो उनका प्राप्य था तो इसका यह अर्थ नहीं कि भविष्य भी उनकी साधना की अनदेखी करता रहेगा। वस्तुतः व्यक्ति और उसके कार्यों का असली मूल्यांकन करने वाला तो काल होता है। महाकवि भवभूति ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है, ''ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञां/ जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः। उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा/ कालो ह्यं निरवधिर्विपुला च पृथिवी।।'' (मालती माधव)[7]

स्रोत

[1]*दृषद्वती से गंगा तक*- (सम्पादक) डॉ0 त्रिभुवन राय, आशीष प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 8
[2]वही, पृष्ठ संख्या 8-9
[3]वही, पृष्ठ संख्या 9-10
[4]*दृषद्वती से गंगा तक*- (सम्पादक) डॉ0 त्रिभुवन राय, आशीष प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 11
[5]*दृषद्वती से गंगा तक*- (सम्पादक) डॉ0 त्रिभुवन राय, आशीष प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 11
[6]वही, पृष्ठ संख्या 12-1
[7]वही, पृष्ठ संख्या 14

सस्रों

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,23-28
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 फरवरी 2016

राजकीय विद्यालयों में शिक्षा की अधोमुखी प्रवृत्ति के लिये उत्तरदायी कौन ?

डॉ. हेमराज*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *राजकीय विद्यालयों में शिक्षा की अधोमुखी प्रवृत्ति के लिये उत्तरदायी कौन ?* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हेमराज* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

छात्र, माता-पिता एवं समाज शिक्षक और सरकार को आपस में मिल बैठकर शिक्षा के गिर रहे स्तर पर गहन चिंतन करने के उपरांत सबके के लिए एक ऐसी व्यावहारिक शिक्षा नीति बनानी होगी जो कि श्रेष्ठ नागरिक बनाने में स्वतः सक्षम हो। सबके लिए शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। शिक्षा के लिए सरकार अधिक बजट उपलब्ध कराए। अध्यापकों की नियुक्तियां तुरंत हों। सभी अध्यापक अध्यापन का कार्य सच्चे मन से करें और अपने व्यक्तिगत सहायक कार्यों के लाभ का त्याग करें। अपना सारा ध्यान और ऊर्जा बच्चों की पढ़ाई और भलाई में लगाएं। समाज अपने कर्तव्यों को पहचानता हुआ छात्रों, अध्यापकों और सरकार को अपना अमूल्य सहयोग दे एवं स्वच्छ वातावरण बनाए रखे। छात्रों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर केंद्रित करें ताकि उनको भविष्य में पछताना न पड़े। भूतकाल कभी लौटकर नहीं आता। जो समय की कार्य करके कदर करते हैं; समय भी उनको अच्छे दिनों की स्वीकृति देता है। सभी अपना-अपना सुधार करें तो एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है, जिससे शिक्षा की गिरावट को दृढ़ता के इरादे से अवश्य रोका जा सकता है।

राजकीय विद्यालयों में शिक्षा की गिरावट और सुधार संबंधी चार घटकों का सीधा संबंध है। प्रत्येक दृष्टि से यह चारों घटक ही शिक्षा में पतन और विकास के लिए उतरदायी हैं। यह चार घटक है- विद्यार्थी, माता-पिता व समाज, शिक्षक और सरकार। इसमें कोई दो राय नहीं की आज के बच्चे भविष्य में नेता बनेंगे, परंतु वह कैसे नेता बनेंगे, यह देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली समाज पर निर्भर करता है कि वह कहां तक बच्चों को श्रेष्ठ नागरिक बनाने में सफल होते हैं। इसलिए बच्चों की पढ़ाई पर धन का निवेश करना एक बड़ा समझदारी का काम है। बच्चा जब विद्यालय में जाने योग्य होता है तो उसे विद्यार्थी की संज्ञा दी जाती है, जिसे विद्यालय में जाकर विद्या ग्रहण करनी होती है। उसकी विद्या की कई अवस्थाएं हैं, जैसे- प्राइमरी, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा आदि।

* [सेवा निवृत्त] प्रधानाचार्य, श्रीमती ज्वाला देवी बी.एड्. कॉलेज [संघोल-ऊँचा पिण्ड] फतेहगढ़ साहिब (पंजाब) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

विद्यार्थी: विद्यार्थी प्राइमरी कक्षा तक बड़ा आज्ञाकारी और सहयोगी होता है पर अपने शिक्षकों के कहने को प्रत्येक स्थिति में सिर माथे पर रखता हुआ पालन करता है। परंतु ज्यों-ज्यों वह बड़ी कक्षाओं में प्रवेश पाता जाता है त्यों-त्यों उसमें आयु की दृष्टि से गुणों के विकास के साथ-साथ कुछ अवगुण भी पनपने लगते हैं, जिन्हें वह अपने वरिष्ठ सहपाठियों से सीख जाता है। कई बार वह स्वतः ही बुरी संगत के कारण कुमार्ग पर बढ़ जाता है जिससे उसका भविष्य खतरे में पड़ जाता है। उसकी सोच को घर, परिवार और विद्यालय में उचित निर्देशन नहीं मिल पाता। कहीं तो विद्यार्थी को विद्या ग्रहण करने के लिए जिज्ञासु होना था, परंतु वह इसकी अपेक्षा अनुशासनहीनता, अनुपस्थिति, गुटबाजी, पढ़ाई में अरुचि, झूठ बोलना और आनंदपरस्ती की ओर बढ़ जाता है। कई बार छोटी-छोटी बातों पर माता-पिता, भाई-बहनों और मित्रों से अपने गलत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए झगड़ना, जिद करना, अपने आप और दूसरों को धोखे में रखना उसके स्वभाव की आदत बन जाती है। उसमें नकारात्मक भाव घर कर जाते हैं और वह द्वन्द का शिकार हो जाता है। वह अपनी संस्कृति सभ्यता और कर्त्तव्य को भूलते हुए अपने माता-पिता के खून-पसीने की कमाई की डींगें मारता हुआ बेकार में नष्ट करने में बड़ा आनंद महसूस करता है। वह चाहता है कि मैं बिना परिश्रम किए ही इतना बड़ा धनी बन जाऊं की सब जगह मेरी ही जय-जयकार हो। वह किसी भी शिक्षा की अच्छी प्रणाली में समायोजन होने के लिए तैयार नहीं होता। वह अपने लिए एक नया लाभदायक प्रबंध चाहता है। उसे किसी की लाभ-हानि से कोई सबंध नहीं। वह व्यक्तिवादी और अंह से भरपूर आचरण करता हुआ अपनी बहुत हानि कर बैठता है। आजकल विद्यार्थी पढ़ाई में रुचि लेने की अपेक्षा जुगाड़-बाजी की कला की ओर अधिक ध्यान देते हैं और उचित ढंग से परीक्षा देने से घबराता है। एक समय था जब शिष्य ने गुरु को दक्षिणा में अंगूठा दान किया था परंतु आज का शिष्य गुरु को अंगूठा दिखाकर रफ्फूचक्कर हो जाता है। आज का छात्र शिक्षकों के साथ कई बार बहुत दुर्व्यवहार करता है। महिला शिक्षकों की दशा इससे और भी सोचनीय और गंभीर है। आज के छात्रों में ब्रह्मचर्य का अभाव बहुत खटकता है। ''एक ब्रह्मचर्य का ठीक-ठाक पालन कर सकने पर सभी विधायें बहुत ही कम समय में हस्तगत हो जाती हैं। मनुष्य श्रुतिधर, स्मृतिधर बन जाता है। ब्रह्मचर्य के अभाव से हमारे देश का सबकुछ नष्ट हो गया।''[1] अब प्रश्न पैदा होता है की आज का विद्यार्थी ऐसा क्यों बन गया? क्या इसमें सारा विद्यार्थी का दोष है? नहीं, इसमें सारा दोष विद्यार्थी का नहीं है। इसमें दोष है समाज, माता-पिता और सदाचारी अध्यापक, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, गंदी राजनीति, फिरकापरस्ती, धक्केशाही, भाई-भतीजावाद, राजनैतिक पार्टियों द्वारा नशा प्रदान करना, सरकार द्वारा कोई भी काम समय पर न करना आदि। सभी ऐसी परिस्थितियां छात्र को दबंग बनने पर विवश करती हैं। परंतु ऐसा भी नहीं की सभी छात्र दबंग और अनुशासनहीन होते हैं। कुछ छात्र बहुत अच्छे, और कुछ अच्छे भी होते हैं जो प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बड़ी-बड़ी प्राप्तियां करते हुए अपने माता-पिता और देश का नाम रोशन करते हैं। अतः दबंग अनुशासनहीन छात्रों को सही रास्ते पर लाने के लिए माता-पिता और समाज को मिलकर अपने उतरदायित्व को समझते हुए प्रेम-प्यार और साहस से बच्चों को सुधरने का प्रयास करना होगा, जिससे छात्र अपने माता-पिता और समाज द्वारा प्रदान किए गए निर्देशन पर गर्व महसूस करते हुए सही रास्ते पर आ जाएंगे।

माता-पिता और समाज : मेरा व्यक्तिगत विचार है कि जिस तरह हम घर में अथवा किसी बड़े श्रेष्ठ अस्पताल में रोगी के उपचार हेतु बड़े नियमित होकर उसकी तंदरुस्ती के लिए देखभाल करते हैं, यदि उसी तरह से विद्यार्थी की भिन्न-भिन्न स्तरों पर देखभाल, जांच-पड़ताल, अनुवती कार्यवाही न; प्रतिदिन आवश्यकता के अनुसार प्रेरणा और हार्दिक प्यार से करें तो और कोई ऐसा कारण ही नहीं की विद्यार्थी जीवन में सफल न हो सकें। वस्तुतः ''माता-पिता अपने स्नेह और प्रेम के द्वारा बच्चों में भावात्मक विकास की आधारशिला रखते हैं। बाद में यहीं प्रेम और स्नेह बच्चे दूसरों के प्रति प्रकट करते हैं।''[2] यदि माता-पिता प्रतिदिन बच्चे की पढ़ाई की ओर व्यक्तिगत ध्यान दें और साथ-साथ अध्यापकों का सहयोग भी लें तो छात्र का भविष्य स्वतः ही सफल बनेगा। हम अपने दिमाग का प्रयोग सही दिशा की अपेक्षा गलत दिशा की ओर अधिक प्रयोग करते हैं। यदि माता-पिता अपने बच्चों पर आदेश और अनुशासन थोपने की अपेक्षा उन्हें विचार नियंत्रण की विधि सिखलाने में अपनी सारी शक्ति लगा दें तो नई पीढ़ी को सन्मार्ग पर चलाने का काम बहुत सरल हो जाएगा।''[3] छात्र के व्यक्तित्व और चरित्र के निर्माण में अच्छे संस्कारों का बहुत बड़ा योगदान रहता है। ''प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों की समष्टि द्वारा नियमित होता है। यदि भले संस्कारों का प्रावल्य रहे तो मनुष्य का चरित्र अच्छा

होता है और बुरे संस्कारों का प्रावल्य हो तो बुरा।''[4] परंतु वर्तमान में पश्चिमी सभ्यता, दूरदर्शन के विज्ञपनों व अन्य कार्यक्रमों और स्वतंत्रता के दूरपयोग ने छात्रों में संस्कारों के अनुस्यूतिकरण का सर्वनाश कर दिया है। यदि पति-पत्नि दोनों कार्यरत हैं और घर में बच्चों को देखने वाला कोई नहीं तो ऐसी स्थिति में बच्चे बहुत जल्दी कुपथ पर बढ़ जाते हैं और माता-पिता से चोरी-छुपे कुछ ऐसा कर बैठते हैं जिससे उनका भविष्य दाव पर लग जाता है। छात्र अपना अमूल्य समय दूरदर्शन देखने में नष्ट करते है जिससे कम आयु में उनकी आंखों पर बड़े-बड़े नंबरों के चश्में चढ़ जाते हैं।

समाज अच्छा भी है और बुरा भी। ''समाज शिक्षा का निर्माता होता है शिक्षा समाज की निर्माता।''[5] इस कथन में अटल सच्चाई है कि दोनों एक-दूसरे से अपने विकास के लिए निर्देशन लेते हैं। मैं यहाँ एक महाराष्ट्र के गांव का उदाहरण देना उचित समझूँगा कि जिसने निर्णय लिया की सारे गांव में शाम के 6 बजे से लेकर 9 बजे तक अपने घर में कोई भी टेलीविजन नहीं लगाएगा चाहे उस घर का बच्चा स्कूल में न भी पढ़ता हो। उन्होंने ऐसा इसलिए किया ताकि उनके गांव के बच्चे अच्छी तरह से पढ़ाई कर सकें। परंतु बाकी सब जगह मंदिरों, गुरुद्वारों और समारोहों में लाउडस्पीकरों व डी.जे. का जमकर ऊंची आवाज में प्रयोग किया जाता है, चाहे और किसी को कितनी भी परेशानी क्यों न हो। कानून को ठेंगा दिखाना लोगों की स्थाई आदत बन चुकी है। यदि समाज में एन.जी.ओ. के फैले हुए जाल धर्मार्थ न्यासों की बात की जाए तो हमें बहुत से हैरानी जनक तथ्यों का पता चलेगा कि ऐसी संस्थाएं भले की अपेक्षा लूट-पाट अधिक कर रही हैं। यहां तक की कानून भी इन्हें रोकने में असमर्थ है। इन धमार्थ न्यासों के दुरुपयोग से आधुनिक युग के भ्रष्टाचारी दिमाग में सभी प्रबंधों और नियमों का धड़ल्ले से उल्लंघन करते हुए गैर सरकारी संस्थाओं का गठन किया और परोपकार के नाम अंधा-धुंध धन को एकत्रित करने का धंधा बना दिया। हम प्रतिदिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि दिन प्रतिदिन समाज में जुर्मों की संख्या कैसे बढ़ रही है। नारी की सुरक्षा कहीं भी सुनिश्चित नहीं है। विश्वासघात से रिश्ते तार-तार हो रहे हैं। जिस किसी पर भी विश्वास करो वह दूसरे पल ही ढोंगी निकलता है। कत्लों में अधिकता बढ़ रही है। अमीर लोग होटलों, क्लबों और भांति-भांति के मनोरंजन के अन्य साधनों में व्यस्त हैं। लूटपाट जोरों पर है। नशे और तलाकों की वृत्ति ने अच्छे घरों को उजाड़ दिया है। क्या ऐसे समाज को सभ्य समाज कहा जा सकता है? समाज अच्छे पहरावे से नहीं बल्कि अच्छे आचरण से सभ्य समाज बनता है। परंतु अच्छे समाज की स्थापना के लिए बहुत अच्छे व्यक्तियों द्वारा दृढ़ शक्ति से सार्थक परिवर्तन व कानूनी कार्यवाही करने की अति आवश्यकता है। सभी के सहयोग से कठिन से कठिन कार्य भी संभव हो सकता है। हमारा प्रथम कर्त्तव्य है कि बेकार की आलोचना और बातों को छोड़कर सबसे पहले अपना-अपना वांछित सुधार करें। समस्याओं को पहचानकर उनको हल करें। विकसित देशों के समाज में जो भावना राष्ट्र के प्रति है उसकी अपेक्षा हमारे देश में राष्ट्रीय भावना की बहुत कमी है। अच्छे समाज से ही विद्यार्थी उचित अगवाई ले सकता है। विद्यार्थी को विवके से हंस की तरह मोती चुनने हैं। समाज में सत्यवादी, आदर्शवाद, परिश्रमी, ईमानदार और त्यागी महानुभव भी हैं, उनके आचरण का अनुसरण करते हुए आदर्श समाज की संरचना करें। जिससे विद्यार्थियों के चरित्र का सशक्त निर्माण हो सके। अधिकतर लोग समय के साथ बदलते चले जाते हैं, परंतु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपनी शक्ति से समय को अपने कर्मों द्वारा बदलकर अपने अनुकूल बना लेते हैं।

शिक्षक: शिक्षक पहले आप पढ़ें, फिर पढ़ायें तो शिक्षक कहलायें। ''शिक्षकों को नित्य निरंतर अध्ययनशील और रोज-रोज नया-नया अध्ययन जारी रखना चाहिए जिससे ज्ञान की वृद्धि लगातार होती रहे। जितना भी समय मिले उसमें लाभदायक अध्ययन अवश्य करना चाहिए।''[6] मनुष्य की यह प्रकृति है कि वह अपने को हमेशा अपनी योग्यता से अधिक ही आंकता है। यही वृत्ति शिक्षक में भी पाई जाती है। नालायक शिक्षक कभी भी नियुक्त नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे छात्रों के भविष्य के साथ खिलवाड़ हो जाता है जिसकी भरपाई कभी भी नहीं हो पाती। ''शिक्षा को सबसे बड़ा खतरा शिक्षा के क्षेत्र में अनुभवहीन तथा विषय शून्य व्यस्थापकों और अध्यापकों से है।''[7] वास्तव में सच्चाई यह है कि सभी अध्यापक बुरे तो नहीं होते। सब में कुछ ही बुरे होते हैं जो अपने काम पर ध्यान की अपेक्षा अन्य कार्य पर ध्यान लगाते हैं अर्थात जो अध्यापक अपने अध्यापन पेशे के साथ-साथ कोई अन्य सहायक धंधा अधिक धन कमाने के लालच में करते

हैं। ऐसे लोगों ने इस पवित्र अध्यापन के व्यवसाय को बदनाम कर रखा है। शिक्षक का कर्त्तव्यभार 6 या 7 घंटे का होता है। अध्यापक यदि पांच घंटे भी पूरा मन लगाकर काम करें तो शिक्षा के स्तर में अधिकतम सुधार हो सकता है; परंतु शिक्षक अपनी ओर उंगली करता ही नहीं और न ही करने देता है, न ही अपनी गलती मानने को तैयार होता है। कई बार शिक्षक देरी से आता है, फिर उसका हेलो सेशन शुरु होता है, उसके उपरांत गप्पे हांकने लगता है फिर उसके चाय पानी का समय हो जाता है। इसके साथ ही मध्यावकाश का समय हो जाता है। उसके बाद उसे घर के कामों की याद आने लगती है। अचानक कभी बिना चाहे कक्षा में चला जाता है तो वहां तू पढ़ विधि का प्रयोग करता है। पढ़ाने में सहायक सामग्री का प्रयोग भूलकर भी नहीं करता। हां अपने वेतन के लिए सदैव सचेत रहता है। परीक्षा में अपने अच्छे परिणाम दिखाने के लिए नकल करवाता है। वास्तव में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अपने जो सहायक धंधे अपना रखे हैं अपनी वास्तविक ऊर्जा उन कार्यों में लगाते हैं और वेतन सरकार से पाते हैं। कई राज्यों में अध्यापक निलंबित होने के लिए परस्पर लड़ते हैं कि अब निलंबित होने की मेरी बारी है। अध्यापक पढ़ाने के लिए अच्छी योजना तो बनाते ही नहीं तो फिर अच्छे परिणाम आते नहीं। कई राज्यों में कई विषयों के परिणाम 0 प्रतिशत है। ऐसे अध्यापक को विभाग फिर से विषयों में प्रशिक्षण देता है। यह अटल सच्चाई है कि अध्यापक पढ़ाने में सफल हो या न हो पर वह सारी श्रेणी को अपने जैसा बनाने में सफल हो जाता है। जिनमें स्वयं कुछ सीखने की सामर्थ्य नहीं होती वह दूसरों को पढ़ाने लग जाते हैं, जो खुद को समझ नहीं आया वह दूसरों को समझाने लग जाते हैं। सरकार ने अध्यापकों की उपस्थिति के विषय में कई बार सर्वे करवाए हैं। 40 प्रतिशत अध्यापक तो विद्यालय में जाते ही नहीं और जो जाते हैं उनमें आधे पढ़ाने में रुचि रखते नहीं। इसका प्रमाण ग्रामीण विद्यालयों के नतीजे हैं। अब अध्यापक का चरित्र भी इतना सशक्त नहीं रहा अर्थात पहले से गिर गया है। वह अब गुरु शिष्य के संबंध का निर्वाह करने की अपेक्षा कलंकित कर रहा है। अर्थात कहना न होगा कि वर्तमान अध्यापक गुरु की छवि को सब तरह से धुंधला कर रहा है। सरकार की निरीक्षण शक्ति बहुत कमजोर एवं नाममात्र ही है। शिक्षा प्रणाली एवं प्रबंध राजनीति की दखलंदाजी के कारण निश्चित नहीं हैं। अध्यापक को एक सैनिक की तरह छात्रों के भविष्य को बनाना चाहिए क्योंकि वह बहुत सी शक्तियों का मिश्रण होता है। ''एक शिक्षक कुछ समाजशास्त्री, कुछ मनोबैज्ञानिक, कुछ आदर्शवादी, कुछ दार्शनिक ना जाने किन-किन तत्वों का मिश्रण है।''[8] यदि शिक्षक इस वाक्य का आदर बनाए रखना चाहते हैं कि उसे कौम, देश का निर्माता कहा जाए तो उन्हें तन-मन और कभी-कभी धन से भी विद्यालय में पढ़ने आए हुए छात्रों को अपने बच्चों के समान समझकर पढ़ाए तो एक दिन अवश्य उनका लुप्त हुआ आदर-सत्कार पुनः स्थापित हो जाएगा। शिक्षक को छात्रों को तब तक बार-बार पढ़ाना है जब तक उन्हें समझ न आ जाए। जैसे शंकराचार्य जी से किसी ने पूछा कि आप जिनको ज्ञान देते हैं तो यदि वह आपका उपदेश नहीं समझेंगे तो आप क्या करोगे? तो उन्होनें कहा दोबारा समझाउंगा, तीसरी बार समझाउंगा, बार-बार समझाउंगा, मेरा शास्त्र ही समझाना है जब तक वह नहीं समझता मैं समझाता रहूंगा, मैं कभी हारने वाला नहीं हूं। वर्तमान अध्यापक को उक्त कथन का पालन करते हुए अपने व्यवसाय के स्तर को दृढ़ संकल्पित होकर सुधारना होगा। उसे अपने पर किसी को उंगली उठाने का अवसर नहीं देना होगा, क्योंकि मंदिर में कभी भी खंडित मूर्ति की पूजा नहीं होती।

सरकारः सरकार तो सरकार है, चुनाव के बाद लोगों की पहुंच से दरकिनार है, सरकार जो चाहे कर सकती है पर पहले अपना खजाना भरती है। सरकार का अपना पेट भरता नहीं, अधीनस्थ कर्मचारी और अधिकारी डरता नहीं। संविधान द्वारा सभी को अधिकार समान हैं। परंतु व्यवहार में असमान हैं। नागरिकों को मौलिक अधिकारों में सबकी शिक्षा का प्रबंध और स्वास्थ्य का सरकार द्वारा प्रबंध करना सम्मिलित है परंतु इन दोनों क्षेत्रों में प्राइवेट क्षेत्रों को आम नागरिकों का शोषण व लूटपाट करने की खुली छुट दे रखी है। विद्यालय में छात्रों से मनमानी फीस, हस्पतालों में भिन्न- भिन्न टेस्टों के नाम पर रोगियों से मोटी-मोटी रकमें वसूल करने का लाइसेंस दे रखा है। सरकार डूबते हुए जहाज को तो बचा लेती है, परंतु शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों को प्राइवेट हाथों में बेचकर शिक्षा को स्वयं डुबो रही है। आज कौन परिचित नहीं है कि प्राइवेट विश्वविद्यालयों और महाविद्यायलयों द्वारा नकली डिग्रियों का प्रबंध किया जाता है। मोटी-मोटी रकमें लेकर अनुपस्थित रहने वाले विद्यार्थियों को रोल नम्बर एवं डिग्रियां दी जाती हैं। इनकी जांच-पड़ताल करने के लिए

सरकार द्वारा कोई विशेष प्रबंध नहीं है। सरकार अपना प्रमुख ध्यान उन साधनों पर जुटाती है जहां से बहुत आमदनी होना सुनिश्चित हो, जैसे एक राज्य की सरकार ने पिछले वर्ष 29 करोड़ की शराब बेचने का लक्ष्य निर्धारित किया परंतु 31 करोड़ से अधिक शराब की बोतलें बेचकर 34 अरब से अधिक रुपए कमाए और अगले वर्ष शराब से 40 अरब से अधिक रुपए कमाने का लक्ष्य निर्धरित किया। सबको विदित है कि सरकार द्वारा शराब का उपकर 2 प्रतिशत लगाया गया है जो शायद ही कभी शिक्षा के क्षेत्र पर खर्च किया हो अर्थात ''शिक्षा के बाजारीकरण के साथ-साथ सियासीकरण भी किया जा रहा है।''[9] केन्द्र सरकार से जो शिक्षा के लिए अनुदान प्राप्त होता है, उसे दूसरे कार्यों में उपयोग कर लिया जाता है। राज्य सरकार केन्द्र सरकार से अनुदान प्राप्त करने में इसलिए असफल रहती है की वह अपना हिस्सा नहीं दे पाती अथवा पहले प्राप्त अनुदान का उपयोग प्रमाण पत्र नहीं जुटा पाती। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रति सरकार की वफ़ादारी ठीक नहीं है। ''शिक्षा के व्यापारीकरण से शिक्षा अपने मूल उद्देश्य से भटक गई है।''[10] सरकारें और लक्ष्य प्राप्त करने के लिए तो ऐड़ी-चोटी का जोर लगाती हैं, परंतु शिक्षा और स्वास्थ्य का प्रबंध करना अपना कर्त्तव्य ही नहीं मानतीं। एक राज्य के मंत्री का व्यक्तव्य था कि शराब कोई नशा नहीं है, जिसका भाव है कि शराब पीना कोई बुरी बात भी नहीं है। सरकार शिक्षकों की रिक्त स्थान क्यों नहीं भर सकती है। लोगों को भिखारियों की तरह अपने पीछे लगाए रखती है क्योंकि लोगों के पास और कोई विकल्प नहीं होता। सरकार तो असामियों को भरने की अपेक्षा समाप्त कर रही है, जिसका भाव है कि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। सरकार तो अंगहीनों और अंधों की नहीं सुनती, उनको डराया, धमकाया और पीटा भी जाता है। उचित मांगें सुनने की अपेक्षा उन्हें धरने से जबरदस्ती उठा दिया जाता है। क्या ऐसी सरकार को कल्याणकारी सरकार कहा जा सकता है? सरकार तो शिक्षा के लिए बजट का प्रबंध नहीं कर सकती, ऐसी सरकार से सुधारों की क्या आशा की जा सकती है। कबड्डी कपों पर तो करोड़ों रुपए खर्चे जा सकते हैं परंतु शिक्षा सुधार के लिए खजानों में पैसे नहीं हैं। सरकार कर्मचारियों की उचित मांगें मानने के लिए भी उनकी शक्ति का दुरुपयोग करती है। उचित मांगों को भी हमेशा लटकाए रखती है और अगले चुनाव से साल से पहले कुछ मांगें स्वीकार कर लेती है और बाकी मांगों के लिए विश्वास दिया जाता है कि अगली बार जब हमारी सरकार बनेंगी तो आपकी सारी मांगें पूरी कर दी जाएंगी। सरकार कई बार शिक्षा का अर्थ रट्टे या नंबरों को ही मानती है। अनैतिक ढंग से डिग्रियाँ प्राप्त दुराचारी लोग देश के भविष्य के लिए भारी चुनौती पैदा कर रहे हैं। सरकार विभागों में पदोन्नति नहीं दे पाती और तो और वरिष्ठता सूचियां तैयार नहीं कर पाती। कर्मचारियों को अपना अधिकार प्राप्त करने हेतु कोर्ट में जाने के लिए प्रेरित और स्थिति पैदा करती है। सरकार की ढुल-मुल नीति और राजनैतिक पहुंच वाले लोग ही शिक्षा के स्तर को गिराने में सहायक हो रहे हैं। उच्च पदों की नियुक्तियों पर राजनीति हस्तक्षेप करती है। इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है कि ''विश्वविद्यालयों में उपकुलपति की नियुक्ति के लिए कोई स्थाई नियम नहीं हैं, जो हैं उनका पालन नहीं होता। राजनीति द्वारा नियुक्तियों में हस्तक्षेप होता है।''[11] पांचवी और आठवी की परीक्षा बंद करने से न तो शिक्षक को पढ़ाने की जरुरत है और न ही बच्चों को पढ़ने की आवश्यकता है। ऊपर से सरकार का आदेश है कि बच्चे को कुछ नहीं कहना, नाम भी नहीं काटना, डराना भी नहीं, मारना भी नहीं, नहीं तो शिक्षक की नौकरी खतरें में पड़ सकती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का स्तर कहां कैसे बच पाएगा? कौन नहीं जानता की हमारे देश में कानून का सबसे अधिक दूरुपयोग होता है। कानून बनाने वाले ही कानून को तोड़ते हैं, सरकार रिश्वत लेती है और घपले करके एक-दूसरे को बदनाम करने का बड़ी बहादुरी से काम करते हैं। राजनैतिक लोगों को जिन लोगों से अपने रहस्यों के खुलने का डर होता है, उनको स्वर्ग भेजने का प्रबंध कर दिया जाता है। सरकार अपने स्वार्थ हेतु बाबा लोगों को शरण देकर अंधविश्वासों को बढ़ावा देती है। शिक्षा का विषय समवर्ती सूची में होने के कारण केन्द्र और राज्य सरकार एक-दूसरे पर दोषारोपण करते रहते हैं। अतः सरकार को अपने कर्तव्य से भागना नहीं होगा। सरकार जब अपनी जिम्मेदारी लोगों के हाथों में सौंपती है तो कार्यान्वयन में बड़ी गड़बड़ी और घपला हो जाता है। शिक्षा और स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण विषयों को सरकारों को स्वयं कार्यान्वित करना होगा। ताकि निर्धन से निर्धन को भी शोषण की अपेक्षा उपलब्ध सुविधाएं मिल सकें। चतुर व दुराचारी लोग गलत तथ्य पेश करके मिलीभगत से सरकारों से अनुदान प्राप्त करके आपस में बांट लेते हैं सरकार को उन पर न्यायिक क्रिया करते हुए सजा देनी चाहिए। ताकि आगे से सरकारी कर्मचारी व अधिकारी गलत कार्य करने का

साहस ही न कर सकें। सरकार के बड़े-बड़े नजदीकी लोगों जिनका सरकार का निर्माण करने में पूरा-पूरा हाथ होता है वह अपना टैक्स अदा न करके सरकार को चूना लगा रहे हैं। सरकार मजबूर नहीं मजबूत होनी चाहिए और लोकहित से कभी भी पीछे नहीं हटना चाहिए चाहे सरकार को जितना भी खतरा क्यों न हो। इस प्रकार से उपरोक्त चर्चा के अनुसार यदि चारों घटक छात्र, माता-पिता एवं समाज, शिक्षक और सरकार मिलकर नेक नीयत से शिक्षा नीतियों का क्रियान्वयन करें तो शिक्षा के स्तर में सुधार होने की पूरी-पूरी गुंजाइश है।

संदर्भ ग्रंथ

[1]विवेकानंद- *राष्ट्र के अहवान,* रामकृष्ण मठ नागपुर बीसवां संस्करण, पृष्ठ संख्या 41
[2]डी.सू.जा.ए.ए.- *दि हजुमन फैक्टर इन एजुकेशन,* पृष्ठ संख्या 38
[3]स्वेटमार्डन- *सफलता का रहस्य,* आनंद पेपर बाक्स दिल्ली, पृष्ठ संख्या 18
[4]स्वामी विवेकानंद- *व्यक्तित्व विकास,* रामकृष्ण म. नागपुर संस्था, पृष्ठ संख्या 10
[5]शर्मा वालिया- *शिक्षा की बुनियाद,* पेपर बुक डिपो पटियाला, पृष्ठ संख्या 201
[6]विनोवा- *शिक्षण विचार,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ संख्या 189
[7]*टैगोर*
[8]सर्वजीत कौर बराड़- *हिन्दी अध्यापन,* कल्याणी पब्लिशर लुधियाना, पृष्ठ संख्या 264
[9]यशपाल- *वर्गचेतना,* एकता फोरम चंडीगढ़ 2005, पृष्ठ संख्या 28
[10]यशपाल- *वर्गचेतना,* एकता फोरम चंडीगढ़ 2005, पृष्ठ संख्या 25
[11]*देखें: हिन्द स्तान टाईमः इंगलिश संस्करण 01.07.2016,* पृष्ठ संख्या 15

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,29-32
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 फरवरी 2016

मीरा : भक्तिकाल में नारी शक्ति का सशक्त पक्षधर पात्र

डॉ. निशा यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मीरा : भक्तिकाल में नारी शक्ति का सशक्त पक्षधर पात्र* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अनामिका पाठक* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भक्तिकाल के निर्गुण काव्य का चक्र ''संत काव्य'' तथा ''सूफी काव्य'' से पूर्ण होता है। ये दोनों काव्य नारी की भूमिका प्रस्तुत करते है। वहाँ नारी मात्र नायिका है, खलनायिका नहीं है। प्राचीन काल में जब हम झांककर देखते हैं तो पाते हैं कि हर काल में स्त्री की स्थिति बदलती रही है। वैदिक काल में हम नारी को पुरूष के बराबर पाते हैं तो उत्तर वैदिक काल जैन काल तक उसकी स्थिति में काफी परिवर्तन आये। और फिर राजपूत राजाओं से लेकर मुगलों तक आपस में जो फूट और वैमनस्य के कारणों में नारी भी एक महत्वपूर्ण कारण बनी। लेकिन इस सबके बीच भी कुछ हिन्दू नारियाँ अपवाद स्परूप अपनी हिम्मत एवं असाधारण व्यक्तित्व के कारण आज भी याद की जाती हैं। इनमें शिवाजी की माँ जीजाबाई, अहिल्याबाई, दुर्गावती, तारावती और मीराबाई का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

मध्यकाल में जब नारी आर्थिक और सामाजिक रूप से पूर्ण रूप से पुरूष के अधीन थी उस समय इन नारी पात्रों ने पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा तथा वेश्यावृत्ति जैसी कु-प्रथाओं का कड़ा विरोध किया। इस काल में मीरा एक ऐसा किरदार रही जिसने अपने दौर की कु-प्रथाओं पर न केवल अपने काव्य के माध्यम से प्रहार किया बल्कि अपने व्यक्तित्व और आचरण से भी नारी जाति के सशक्तिकरण का संदेश देती नजर आती है।

भारतीय नारी पंत परम्परा में मीरा का नाम जग प्रसिद्ध है, 1504 ई0 में मेंडता में जन्मी मीरा का विवाह मेवाड़ के राज घराने से हुआ था 'मीरा शब्द' संस्कृत के मीर शब्द का स्त्रीलिंङ्ग रूप है, जो पृथ्वी, सरिता, सरस्वती आदि अर्थों का बोधक है। मीरा का मीरा रूप में उच्चारण पश्चिमोत्तर भारतीयों की प्रकृति के अनुसार है। यहाँ आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का उच्चारण अनुस्वारांत होने का प्रचलन है। 'बाई' शब्द का प्रयोग गुजरात में स्त्रियों के लिये सम्मानार्थक होता है। अतः मीराबाई नाम माता-पिता द्वारा ही दिया गया, मूल नाम मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

* असिस्टेंट प्रोफेसर (आमंत्रित), कन्या गुरुकुल कॉलेज देहरादून कैम्पस [गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मीरा के पदों की प्रासंगिकता वर्तमान युग में इसलिये नहीं है कि वह एक प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त थीं बल्कि इसलिये भी है किम आज से 500 वर्ष पूर्व उनके सामाजिक मान-मर्यादा को ताक पर रखते हुये स्त्री-पुरूष के बीच की खाईं को दूर करने की शंखनाद कर नारी-मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया। सामाजिक परम्परा से हटकर किसी कार्य को अंजाम देना अपने आप में बहुत कठिन कार्य होता है और इन सब कठिनाइयों का सामना मीरा को भी करना पड़ा था जिसके लिये मीरा के पदों में आयी लोकोकित को ध्यान में रखा जा सके। ''हस्ती की असवारी पीछे, लाख कुतिया भूसी''

कृष्ण भक्तिकाव्य में मीरा का अहम स्थान है। मीरा के विद्रोही व्यक्तित्व और स्वातंत्र्य प्रेमी अस्तित्व के प्रभाव से भी उनकी काव्य ने नये कीर्तिमान स्थापित किये। आज से कई वर्षों पूर्व उन्होंने भाव-विचार और कर्म के स्तर पर निर्भीकता-पूर्वक स्वविवेकानुसार व्यवहार किया। कोई परम्परा, कोई वर्जना उन पर रोक नहीं लगा पायी। श्री प्रभाकर क्षौत्रिय के शब्दों में, ''घर द्वार कुल समाज के बन्धन तोड़कर सड़क पर उतरी, जात-पात को ठेंगा दिखाती मीरा क्या 500 साल की बुढ़िया लगती है या आज कल की जवान छोरी? उसने खुद तो बन्धन की शृंखला तोड़ दी, ऊँच-नीच का जग धंधा चौपट कर दिया एक साथ स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की बैठक से कम नजारा नहीं है यहाँ''

मीरा द्वारा रचित कृष्ण-भक्ति काव्य में उनके निजी जीवन के अनुभवों व ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति की व्यापक अभिव्यक्ति मिली है। मीरा की जीवन परिस्थितियों ने, विशेषकर ससुराल से मिली घृणा एवं उनके द्वारा थोपे गये बन्धनों ने उसमें सामाजिक मर्यादाओं के जाल को काट फेंकने की ललक पैदा की। मीरा उच्च वर्ग के खोखले जीवन आदर्शों एवं दोहरे मापदण्ड से भली-भांति परिचित थी। अतः इनके प्रति विरोध व तिरस्कार की सहज अभिव्यक्ति मिलती है मीरा का विद्रोह नारी का विद्रोह था। जो स्त्री विमर्श के युग के लिये एक अनुपम उदाहरण है। मीरा के अनेक पद ऐसे हैं जिसमें वह परिवार, समाज व लोक कुल की मर्यादा का निःसंकोच त्याग करती हुई कहती है, ''श्री गिरधर आगे नाचूंगी/ नाचि-नाचि पिय रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन को जाचूँगी। लोकलाज कुल की मर्यादा में एक न राखूंगी। पी के पलंग में जा पौढूंगी मीरा हरि संग नाचूंगी।।''

लोकलाज व कुल की मर्यादा का खुलकर विरोध करने वाली कृष्ण-भक्त मीरा अपने प्रियतम को नाच-नाचकर रिझान चाहती है। तथा साथ गृहस्थ पित्र्-सत्तात्मक विवशता के प्रति खुला विरोध जताया है। जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है, 'मीरा ऐसी स्त्री है जिसने अपना पूरा रूपान्तरण कर लिया है। पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के सज्ञथ किस तरह से जुल्म होते हैं और परिवारजनों का रवैय्या किस कदर अमानवीय होता है उसे सामाजिक तौर पर अभिव्यक्त करने वाली मीरा पहली भारतीय लेखिका हैं। स्त्री का दुख, उत्पीड़न और दमन हमेशा निजी रहा है और स्त्रियाँ इसे छिपाती हैं। इससे पुसंवादी वर्चस्व को लाभ होता है और मीरा ने जो कुछ व्यक्तिगत था उसे सामाजिक कर दिया। निजी के सामने सामाजिक करने के पीछे आधुनिकता का नजरिया झलकता है। निजी को सामाजिक रूप में व्यक्त करने का भाव-बोध आधुनिक तत्व है ये सामन्त तत्व नहीं है और न ही मध्यकालीन तत्व है।

मीरा की कविता उस करूण नारी की पुकार है जो सामाजिक बन्धनों से मुक्ति चाहती है। महिला सशक्तिकरण के इस दौर में शिक्षा आजादी के बाद घूंघट जैसी बात बेतुकी लगती है जिसका मीरा ने अपने पदों में खुलकर विरोध किया है। ''नाचण लागी तब घूंघट कैसो, लोकलाज तिनका ज्यूँ तोरयों''

पर्दा प्रथा के साथ ही मीराबाई ने सती-प्रथा का भी बेझिझक विरोध किया। चित्तौड़ के राजपरिवार ने परम्परा के अनुसार मीरा से जब अपने पति के साथ सती होने का आगृह किया तो मीरा ने यह कहकर सती होने से इन्कार कर दिया कि मेरा पति परमेश्वर है जो अविनाशी है, अतः मैं अपने आप को विधवा नहीं मानती हूँ। 'गिरधर गास्यां सती न होस्यां मन मोह्यो घन नामी'

पति को परमेश्वर मानने वाली समाज व्यवस्था में परमेश्वर को पति मानने की यह उद्घोषणा एक असाधारण घटना थी। राजकुल की रीति-परम्परा, कुल-मर्यादा आदि की मूर्ति के आगे नृत्य आदि लोक-भक्ति के उपादानों को चुना और ये सब मीरा का सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह एवं मीरा के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय देते है। जिसके लिये मीरा को पारिवारिक कष्टों के साथ-साथ समाज की हेय-दृष्टि का भी सामना करना पड़ा।

स्वतंत्र भारत में नारी-आन्दोलन तथा नारी सशक्तिकरण की जो क्रांति आयी है मीरा उसके उच्चतम शिखर पर खड़ी दिखायी देती है। यही कारण है कि नारी मुक्ति के इन सुधारवादियों को अपने आन्दोलन को धार देने के लिये ऐतिहासिक प्रसंगों व प्रतीकों की भी आवश्यकता पड़ती दिखायी दी। जिसे मीरा न राह दी। नारी मुक्ति के पक्षधरताओं को जहाँ मीरा ने नारी स्वतंत्रता को लेकर एवं संघर्षशील नारी की छवि का साक्षात्कार हुआ नहीं सामन्ती प्रथा के विरोधियों को मीरा में सामन्ती तत्वों के विद्रोही व क्रांन्तिकारी व्यक्तित्व की झलक दिखायी दी और परिणाम स्वरूप मीरा स्वतंत्र भारत के इस पुरूष प्रधान समाज में नारी मुक्ति व स्वतंत्रता के प्रतीकों के रूप में प्रतिष्ठित हुई। मीरा का विद्रोह एक नारी का विद्रोह था जो स्त्री विमर्श युग के लिये एक अनुपम उदाहरण हैं और यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है कि युद्धों और राजभवन के वैभव विलास भी इस सब के आड़े नहीं आया।

मीरा एक अतुलनीय भक्त होने के साथ-साथ समाज सुधारक व क्रांतिकारी के रूप में भी प्रसिद्ध है। मीरा का यश पूरे भारत में ही नहीं सीमापर भी अपना प्रकाश फैसला रहा है ''जर्मन पुरातत्ववेत्ता व इतिहासज्ञ हरमन गोट्ज ने अंग्रेजी में मीरा पर पुस्तक लिखी है पुस्तक का शीर्षक है- 'मीराबाई, हर लाईफ एण्ड टाइम्स'

मीरा ने अपने दर्शन में नारी व पुरूष कर समानता का पक्ष लिया है जो आज के आधुनिक समाज में जब एक स्त्री, पुरूष के साथ कदमताल कर रहा है बहुत बड़ा आगाज कई सौ वर्ष पूर्व मीरा ने कर दिया था। मीरा अपने समय से काफी आगे थी उन्होंने राजवंशों की प्रचलित परम्पराओं और प्रथाओं को धाराशायी कर ईश्वर भक्ति का प्रचार किया। मीरा ने पर्दाप्रथा का त्याग कर महिलाओं को पर्दा छोड़ने का संदेश दिया। गोट्स के अनुसार, 'मीरा एक गुण सम्पन्न राजकुमारी थीं उन्हें राजनीति की अच्छी जानकारी थी। वे एक समाज सुधारक व समर्पित विशिष्ठ धर्म प्रचारक थी वे एक आश्चर्यजनक व उत्तम कवि तथा महान संत थीं। मीरा की भक्ति केवल भावुकता नहीं थी, मीरा सम्प्रदायों व पंथों से ऊपर उठी तथा उस क्षेत्र में गयी जिसमें ईश्वर व आत्मा की वास्तविकता है। श्रीकृष्ण के प्रति दासता एक स्त्री की कमजोरी का समर्पण नहीं था अपितु कृष्ण केप्रति उनकी दासता को हृदयों की एकात्मकता थी। दोनों अभिन्न हृदय थे। श्रीकृष्ण के विचार मीरा के विचार थे। कृष्ण की इच्छा मीरा की इच्छा थी। मीरा मानव जाति की महानता व्यक्तित्व थी। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में मीरा आराधना उपासना, त्याग और समर्पण की एक प्रतिमा के रूप में उभरी।

मीरा के युग में जब समाज धर्म के नाम पर सम्प्रदायों में बंटा था तथा प्रत्येक सम्प्रदाय अपने अपने धर्मों का प्रचार करने में संल्ग्न थें उस वक्त मीरा सम्प्रदाय निरपेक्ष भक्ति की एक असीम उदारहण है, मीरा ने पंथ निरपेक्ष भक्ति की। न किसी को अपना गुरू बनाया और न ही अपन कोई पंथ चलाया। ''मध्यकालीन भक्ति साहित्य में आराधना उपासना त्याग और समर्पण की कोई अन्यतम प्रतिमा है तो वह है मीरा। वह मीरा है और नारी जीवन में अनेक वर्जनायें हैं, बाधायें हैं। वह सारी अर्गला, विषमता, विपरीतता से विद्रोह कर नाच उठती थी। माया मोह की धूल उड़ जाती है। राजशीपन तिनके के समान विलीन हो जाता है। कुल मर्यादा ओस के समान छूमन्तर हो जाती है उसकी तान संभाले नहीं संभलती है, तो वह गिरधर के सामने नाच उठती है।

''मीरा का जीवन संघर्षमय रहा। अपने साधन-पथ पर चलते हुये मीरा को अनेक कष्टों का सामने करना पड़ा और अनेक विरोधों को झेलना पड़ा।'' मध्यकाल के उस घोर सामन्ती युग में राज परिवार की कोई महिला, वह भी विधवा, रनिवारन की चारदीवारी से बाहर निकलकर साधू-सन्तों के साथ सत्संग, भजन, कीर्तन और नृत्य करे, यह बात सामन्ती वर्ग को कदापि सहन नहीं हो सकती थी। इसी कारण मीरा को अनेक प्रकार की प्रताड़नायें, अपमान और तिरस्कार झेलना पड़ा था। मीराबाई ने सती प्रथा से लेकर पर्दाप्रथा तथा स्त्री-पुरूष के भेदभाव को मिटाने के लिये जिन कष्टों को झेला है उनको अपने पदों के माध्यम से स्वीकार भी किया है।

मीराबाई सामाजिक परम्पराओं तथा सांस्कृतिक रीति-रिवाजों के माध्यम से अपने नूतन मार्ग का स्वयं निर्माण करने में सफल रहा है। तभी तो वे प्रत्येक नायक-नायिकाओं की आराध्य ही नहीं वरन प्रथम शिक्षा की देवी समान सदा स्मरण की जाती है। मीरा के जीवन का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि मीरा ने सभी सामाजिक प्रताड़नाओं को झेलते हुये अपनी आध्यात्मिक नारी चेतना को विकसित किया तथा पुरूषों के समान समानता और गरिमा का स्थान अर्जित करने के लिये मीरा को सदियों तक संघर्ष करना पड़ा। आधुनिक भारतीय समाज में नारी मुक्ति व स्वतंत्रता को लेकर जो आन्दोलन

चलाये जा रहे हैं मीरा सच्चे अर्थों में उनकी प्रेरणा-स्रोत हैं तथा त्याग, बलिदान व नारी मुक्ति की पक्षधरता के रूप में सदैव स्मरण की जायेंगी।

संदर्भ ग्रंथ

डॉ0 नगेन्द्र- *हिन्दी साहित्य का इतिहास*
जगदीश चतुर्वेदी- *स्त्री साहित्य विमर्श*
मीराबाई- *हर लाइफ एण्ड टाइम्स,* हेरमन गॉयट्ज़, मुम्बई 1966, पृष्ठ संख्या 40-42
मीरायन पत्रिका, पृष्ठ संख्या 22
बिहार विश्वविद्यालय पद्य संग्रह, पटना में डॉ0 नवलकिशोर गौड़ की भूमिका, सन् 1960
मीरा पदावली, 76
मीरा बाई एण्ड पर कण्ट्रीव्यूशन टू द भक्ति मूवमेंट, एस0एस0 पाण्डेय एण्ड नोर्मन जाइड, 1965, हिस्ट्री ऑफ रिलिजंस
मीराबाई- ऊषा निलस्सन, साहित्य अकादमी, आईएसबीएन 97, पृष्ठ संख्या 1-15
मीरायन पत्रिका, पृष्ठ संख्या 10

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,33-42
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 28 फरवरी 2016

हिन्दी पत्रकारिता की विकास यात्रा में भारतेन्दुयुगीन पत्र

डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी पत्रकारिता की विकास यात्रा में भारतेन्दुयुगीन पत्र* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

समाचारपत्र-रहित जीवन की आज कल्पना करना थोड़ा अटपटा सा लगता है, विशेषकर शहरों में समाचारपत्र दिन-प्रतिदिन के जीवन का एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग बन गये हैं। आधुनिक जीवन में पत्रों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

आज हमारा जीवन पर्याप्त जटिल और संकुल हो गया है। आये दिन कुछ न कुछ ऐसी करूण, भयावह और कँपा देने वाली घटनाएँ घटित होती रहती है कि उनको जानने के बाद मनुष्य आश्चर्यचकित हो जाता है। मानवीय संदर्भ आज जिस रूप में बदल रहे हैं, उनका कारण कुछ भी हो किन्तु इतना निश्चित है कि उन संदर्भों का सूक्ष्म निरूपण और प्रस्तुतीकरण अनेक बार हमें समाचार-पत्रों में ही मिलता है। समाज के सजग प्रहरी के रूप में एक पत्रकार समाज में घटित घटनाओं की गहराई में प्रवेश करता है और निरंतर बदलते हुए परिवेश और मानव सम्बन्धों की जटिलता के कारणों, प्रतिक्रियाओं और परिणामों को विश्लेषित करता है। ऐसा करने से जनता को समाज में चल रहे घटना चक्र की जानकारी भी होती है और वह अपने जीवन में सतर्क बने रहने के लिए मार्ग दर्शन भी प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि पत्रकारिता परिवेश के शरीर अर्थात् स्थूल घटना चक्र के साथ-साथ उसके मन अर्थात् सूक्ष्म सम्बन्धों को भी उजागर करती है।

भारत के 'स्वतंत्रता आन्दोलन' को पत्रकारिता के द्वारा ही शक्ति मिली थी। पत्रकारिता ने ही देशवासियों के सुप्त स्वाभिमान को जागृत किया था और उन्हें यह प्रेरणा दी थी कि स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता और एकता जैसे जीवन मूल्य ही मनुष्य के अस्तित्व को सुरक्षित रख सकते हैं। राष्ट्रीय भावना एवं जनमत को बनाने का महान कार्य पत्रों द्वारा ही सम्भव हो सकता था।

भारतवर्ष में हिन्दी पत्रकारिता के विकास की कहानी अनेक युगीन सन्दर्भों, पत्रकारों और साहित्यकारों से होती हुई आगे बढ़ी। प्रमुख रूप से हिन्दी पत्रकारिता में जिन चरणों का उल्लेख मिलता है, उनमें (1) भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता, (2) द्विवेदी

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

युगीन पत्रकारिता, (3) तिलवन युगीन पत्रकारिता, (4) छायावाद युगीन पत्रकारिता, (5) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता एवं (6) समसामयिक साहित्यिक पत्रकारिता मुख्य हैं।

समाचार पत्रों का उदय एवं विकास मुख्यतः 19वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय विशेषता है। उस शताब्दी के पूर्वार्द्ध की पत्रकारिता के इतिहास की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। तत्कालीन साधारण जनता राजनीति में कोई रूचि नहीं रखती थी। जमींदारवर्ग का तो ध्यान इस ओर था ही नहीं। फलतः समाचार पत्रों का वितरण बहुत ही कम था। पत्रकारों को पत्रकारिता से प्रायः कोई विशेष आय नहीं होती थी, बल्कि इसके विपरीत प्रायः इससे आर्थिक हानि ही होती थी।

परन्तु उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दुयुग की पत्रकारिता से जुड़े पत्रकारों के समक्ष आर्थिक पक्ष की अपेक्षा एक महान आदर्श था। वे नवीन सभ्यता के सम्पर्क से आगे परिवर्तन के दौर में प्रवेश कर चुके थे। देश तथा समाज में नवयुग के विचार-प्रवाह का संचार करने को वे उत्सुक थे। उनके पास संदेशों एवं सूचनाओं के प्रचार-प्रसार के लिए सीमित साधन थे। तत्कालीन सरकार द्वारा उनको कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था। समाज के जनसामान्य का भी उनको कोई विशेष सहयोग प्राप्त नहीं हो रहा था। फिर भी वे लोग अपने कार्य को एक विशेष लक्ष्य बिन्दु तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध थे। उस समय हिन्दी समाचार पत्रों की अपेक्षा अंग्रेजी पत्रों का महत्त्व अधिक था। तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में संपादक ही सब कुछ होता था। उसका अधिक से अधिक समय पत्र का कलेवर सँवारने, उसमें प्राण फूँकने और उसको अधिक से अधिक लोक-सेवा के उपयुक्त बनाने में लगता था। फलतः उसे प्रतिदिन अनेक प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। उस समय के पत्रों की निष्ठा बड़ी बलवती और आशावान थी। इसके लिए वे सब कुछ सहन करने को तत्पर रहते थे।

उन्नीसवीं सदी की चतुर्दिक-चेतना तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में मुखर मिलती है। अर्थात् उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक समस्याओं, घटनाओं और परिस्थितियों का पूर्णरूप से उल्लेख मिलता है। उनकी इच्छा शक्ति प्रबल थी, संकल्प दृढ़ था और आदर्श भी ऊँचा था। इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पत्रों का प्रकाशन होता रहा। भारतेन्दु युग की पत्रकारिता के महत्त्व के सम्बन्ध में डॉ0 कृष्ण बिहारी मिश्र का यह तर्क संगत है- 'देश-दशा का जितना यथार्थ चित्रण इन पात्रों में है और ब्रिटिश सरकार के अनौचित्य का उद्‌घाटन जिस साहस से इस समय के तेजस्वी पत्रकारों ने किया, वह वस्तुतः हर दृष्टि से असाधारण महत्व की बात है।

पत्रकारिता के विकास-पथ में रूपसज्जा का आयाम

भारतेन्दु युग के प्रायः सभी पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर कोई न कोई विशिष्ट सिद्धान्त वाक्य लिखे मिलते हैं, इनसे इन पत्रों के उद्देश्य और स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। इन पत्रिकाओं और पत्रों में कुछेक सिद्धान्त वाक्य इस प्रकार थे :

सारसुधानिधि - 'हरि दुःख तम सर्वत्र जनपथ दरसावे/ दोष व्यसन ज्वर विषय हर।'
सर्वाहित - 'ईशः! सुखयतु लोकान्।'
भारतमित्र - 'जयोस्तु सत्यनिष्ठानां।'
ब्राह्मण - 'शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि।'
पीयूष प्रवाह- 'न दैन्यं न पलायनम्।' आदि है।

तत्कालीन प्रायः सभी पत्रों में उनके प्रकाशन के हेतु विषय में समान उद्देश्य देखे जा सकते हैं। यही कारण है कि उन पत्रों ने तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने में विशेष सफलता अर्जित की क्योंकि वे समाज के प्रतिनिधि के प्रतिनिधि और जनता के मार्गदर्शक का कार्य करते थे। जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना पत्रों का मुख्य उद्देश्य होता था। इसके लिये उनमें अनेक आकर्षक शीर्षक दिए जाते थे। उदाहरणार्थ अंग्रेज स्तोत्र 'ओस एक्ट के मुँह में घूर', 'मर्जार मूषक', 'लार्ड लिटन साहिब बहादुर का कर्त्तव्य', 'सरकार हम हिन्दुस्तानियों को शक क्यों करती है? प्रेरित कलापी कलख', 'कालराज की सभा', 'एंग्लो इंडियन शक्ति गाती हैं', 'कलयुग ककहरा' आदि। इन शीर्षक से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन युग में छोटे शीर्षकों का प्रचलन उतना नहीं था, जितना लम्बे शीर्षकों का। कहीं-कहीं पूरे वाक्य में शीर्षक दिए जाते थे। ऐसे शीर्षक विचारोत्तेजक और व्यंग्यात्मक होते थे।

वर्तमान पत्रों में प्रकाशित किसी लेख या कविता के लेखक का नाम सबसे ऊपर अथवा नीचे और शीर्षक ऊपर देने की प्रथा है। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी पत्रों में ऐसी बात नहीं थी। प्रारम्भ के पत्रों को देखने से यही ज्ञात होता है कि शीर्षक के अतिरिक्तलेखक के नाम उल्लेख तक नहीं मिलता। लेखकों के नाम देने की प्रथा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रचलित हुई। सन् 1890 ई0 तक लेखकों के नाम मुद्रित करने का प्रचलन नहीं था। कहीं-कहीं छद्म नामों से लेख लिखे जाते थे। इस नामों के पीछे परिस्थिति की विवशता ही प्रमुख थी। भारतेन्दुयुग के प्रायः सभी पत्रों में स्थानीय समाचार प्रकाशित होते थे। इस प्रक्रिया से सम्पादक पाठकों के एकदम निकट पहुँचने का प्रयास करते थे क्योंकि स्थानीय समाचारों के माध्यम से पाठकों और पत्रों के बीच सम्बन्ध और भी गहरा होता था।

हिन्दी पत्रकारिता के इस प्रारंभिक काल में विज्ञापन बहुत कम प्रकाशित होते थे। ज्यो-ज्यों पत्रकारिता विकसित होती गयी, विज्ञापनों की संख्या में वृद्धि होती गयी। इस समय प्रायः विज्ञापन उन्हीं पत्रों को मिलते थे, जिनका पत्रकारिता जगत् में कुछ महत्त्व होता था। प्रारम्भ में तो नये हिन्दी पत्रों के प्रकाशन के स्वरूप के कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं-

''बिहार बन्धु' में राजाराम पाल सिंह के दैनिक 'हिन्दोस्थान' का विज्ञापन प्रकाशित होता था, वह निम्नवत् है, ''देखिए! देखिए!! अवश्य देखिए!!!/ हिन्दोस्थान/ हिन्दी भाषा का एक ही दैनिक पत्र जो प्रतिदित/ कालाकांकर (जिला प्रतापगढ़) में प्रकाशित होता है इसके सम्पादक/ राजा रामपाल सिंह बहादुर हैं,/ तथा इसमें अनेक योग्य पुरुष लेख लिखते हैं।''

समाचार-पत्रों में लेख दो प्रकार के होते है- एक 'अग्र लेख' और दूसरा 'विशेष लेख'। अग्र लेख सम्पादक द्वारा लिखा जाता है और विशेष लेख अन्य व्यक्तियों द्वारा। भारतेन्दु युग के अधिकतर पत्रों में अग्र लेख सम्पादकीय स्तम्भों में ही लिखे जाते थे। अग्र लेखों के अतिरिक्त विशेष लेख लिखने की परिपाटी भी भारतेन्दु काल के पत्रों में मिलती है। विशेष लेख अधिमानता के क्रम में लिखे जाते थे।

इन लेखों के अतिरिक्त तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में यत्र-तत्र मनोरंजक प्रश्नोत्तर भी प्रकाशित होते थे। इस उपाय से लेखक का उद्देश्य बड़े सीधे ढंग से अपनी बात जनता तक पहुँचना होता था। प्रश्नोत्तर में हास्य और व्यंग्य की सुंदर छटा परिलक्षित होती है। भारतेन्दु की 'मुकरियाँ' प्रश्नोत्तर के रूप में उस समय बड़ी लोकप्रिय थीं। इनमें से कुछ इस प्रकार थीं, ''स्वर्ग क्या है? विलायत। महापाप का फल क्या है? हिन्दुस्तान में जन्म लेना। महापापी कौन है? देश भाषा के अखबारों का एडिटर। धर्म क्या है? चौका लगाकर खाना, स्वार्थ साधन में न चूकना। कर्म का फुटहा कौन? हिन्दी। नाजनीन कौन? बीबी उर्दू। मर्द के कन्धे पर स्त्री, डोली में बहुरिया।''

ऐसे प्रश्नोत्तरों और मुकरियों द्वारा पत्रों ने प्रशासनिक जीवन में दोष ढूँढे तथा सामाजिक रूढ़ियों पर आघात किया। तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक जीवन को सुधारने का कार्य सम्पादकों ने ऐसी ही मनोरंजक उक्तियों के माध्यम से किया। विषय की विविधता को ध्यान में रखते हुए भारतेन्दु युग के पत्रकार मनोरंजक सामग्री बड़े 'लटके' के साथ पाठकों के समक्ष रखते थे, जिससे ज्ञानार्जन भी होता था और मनोरंजन भी। कहीं-कहीं सत्य के आधार पर सुन्दर कल्पना कर 'लटकों' में कोई न कोई उच्च कोटि का सामाजिक या राजनीतिक आशय प्रभावशाली रूप में व्यक्त किया जाता था।

भारतेन्दु कालीन पत्रिकाओं में 'चुटकुले' लिखने की परिपाटी भी वर्तमान थी। पत्रकार अपने पाठकों की रूचि का ध्यान अवश्य रखते थे। सामान्यतः प्रकाशित सामग्रियाँ आकार-प्रकार में लघु होती थी। इन चुटकुलों की सहायता से सम्पादक पत्रों को आकर्षक बनाते थे। गम्भीर विषयों का अध्ययन करते-करते पाठकों को ऊबने से बचाने के लिए पत्र के सम्पादक चुटकुलों का प्रयोग करते थे, जिससे पाठकों का मनोरंजन के साथ शिक्षण भी होता था।

अन्य समाचारों के साथ-साथ उस समय के पत्रों में मौसम सम्बंधी समाचारों को भी सम्मिलित किया जाता था, जिससे उक्त पत्र अपनी विविधता के लिए प्रसिद्ध हो सके। अन्यत्र से प्राप्त पत्रों का उल्लेख तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता का एक स्थायी स्तम्भ था इसमें सम्पादकगण अपने पत्र के सम्बन्ध में प्राप्त विभिन्न पाठकों की प्रतिक्रियाओं तथा अन्य समकालीन पत्र-पत्रिकाओं के मतों को प्रकाशित करते थे। इससे पत्र की लोकप्रियता में वृद्धि होती थी।

ऐसे पत्रों की भाँति उस समय के पत्रों में 'प्राप्ति स्वीकार शीर्षक' एक स्थायी स्तम्भ भी होता था, जिसके अन्तर्गत पत्रों के आदान-प्रदान और पुस्तकों अथवा पत्र की सूचनाएँ कहीं लघु तथा कहीं दीर्घ टिप्पणी के साथ प्रकाशित होती थी। 'प्राप्ति स्वीकार' के स्थान पर कहीं-कहीं 'कुशल स्वीकार' शब्द का आयोग किया जाता था।

तत्कालीन पत्रकारिता क्षेत्र के लेखक, कवि, पत्रकार और अभिनेता के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की ख्याति सर्वाधिक थी। उन्होंने हिन्दी गद्य को नया स्वरूप दिया। अभी तक हिन्दी का गद्य स्वरूप धार्मिक ग्रन्थों अथवा किस्से-कहानियों और समाचार पत्रों तक ही सीमित था। भारतेन्दु ने हिन्दी को एक नई शैली प्रदान की। उसके आयाम को उन्होंने बहुत विस्तृत किया और भारत के प्राचीन साहित्य से लेकर समकालीन वैज्ञानिक एवं आर्थिक विषयों की चर्चा तक के लिए उसे उन्नत किया। उन्होंने केवल हिन्दी भाषा एवं हिन्दी गद्य को ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीयता की, आपसी भाई-चारे से युक्त सम्प्रदायिक मेल-मिलाप की और स्वान चेतना की पुष्टि की दशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का दैनिक-पत्र परिचय

हिन्दोस्थान; 'हिन्दोस्थान समाचार-पत्र' हिन्दी का पहला समाचार पत्र था, जो सन् 1885 ई0 में प्रकाशित हुआ। हिन्दी के इस प्रथम दैनिक अखबार को प्रकाशित करने का श्रेय उत्तर प्रदेश को है। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के कालाकाँकर से पहली नवम्बर 1885 को राजा रामपाल सिंह जी के संरक्षण में तथा पं0 मदन मोहन मालवीय के संपादकत्व में यह हिन्दी दैनिक प्रकाशित हुआ।

दैनिक 'हिन्दोस्थान' 10×13 इंच के आकार में चार कालमों में छपता था। मुख्य पृष्ठ पर अंग्रेजी में तथा उसके नीचे हिन्दी में 'हिन्दोस्थान दैनिक पत्र' लिखा रहता था। उसका सिद्धान्त वाक्य संस्कृत में इस प्रकार था, ''सत्यं श्रमाभ्याससकलार्थ सिद्धिः'' तथा उसके साथ ही बायरन की एक कविता की दो पंक्तियाँ भी छपा करती थीं।''

सिद्धान्त वाक्य के नीचे, कालाकाँकर, हिन्दी माह, तिथि, संवत्, अंग्रेजी दिनांक, अंग्रेजी दिन तथा ई0 सन् छपा करता था। 'हिन्दोस्थान' के माध्यम से पं0 मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा प्रदान की। हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि का सबल समर्थन इस पत्र द्वारा निरंतर होता रहा। यह पत्र भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थक था और इसमें सरकारी अफसरों की कटु आलोचना छपा करती थी। राष्ट्रीय विचारधारा का आचार-आसार तथा कुछ समाज सुधार का कार्य इस पत्र का मुख्य लक्ष्य था।

साप्ताहिक पत्र

1. सारसुधा निधि : भारतेन्दुयुग का दूसरा तेजस्वी पत्र है 'सारसुधा निधि', कलकत्ता से 1879 ई0 में पं0 सदानन्द मिश्र जी के सक्रिय सहयोग से पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र ने उसे प्रकाशित किया था। ''इसमें चार साझीदार थे- सदानन्द जी, गोविन्द नारायण जी पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र और शम्भूनाथ जी। इसके सम्पादक पं0 गोविन्द नारायणा जी और व्यवस्थापक पं0 शम्भू नाथ जी थे। दूसरे दौर के अखबारों में यह बड़ा तेजस्वी अखबार सिद्ध हुआ परन्तु इसे बहुत ग्राहक नहीं मिले। जो मिले वे ठीक समय पर मूल्य नहीं देते थे। लाचार होकर पत्र बन्द करना पड़ा।'' बन्द होने के एक डेढ़ साल पहले से उसके बन्द होने के चिन्ह दिखाई देने लगे थे। पत्र बन्द होने के एक साल के अन्दर ही पं0 सदानन्द मिश्र का भी शरीरान्त हो गया। 'सार सुधानिधि' के प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ की पूरी सामग्री कुछ इस प्रकार है-

सारसुधा निधि; ''कुमुद रसिक मनमोदक हरि दुःख तक सरवत्र। जनपद दरसावे अचल सारसुधानिधि-पत्र।। काव्य रसायन यत्र-तत्र सुदर्शन नृप चरित कर। सार सुधानिधि-पत्र दोष व्यसनज्वर विषय हर।।''

इसमें तत्कालीन लोक जीवन और देश-दशा का बड़ा ही यथार्थ चित्र प्रकाशित होता था। साथ ही इसके अंकों में राजनीति, समाजनीति, धर्म, स्वास्थ्य और साहित्य के साथ ही देश-विदेश की प्रमुख खबरें भी रहती थीं। सम्पादकीय नीति शुद्ध राष्ट्रीय थी और सारे हिन्दी प्रदेश में इस पत्र का आदर था। दूसरी भाषा वाले भी इसके महत्त्व और स्वर से परिचित थे कुछ ऐसे पत्र और लोग थे जो 'सारसुधा निधि' के उत्कर्ष से पीड़ित और इर्ष्या-दग्ध होकर इसके विरूद्ध बोलने में औचित्य की सीमा लाँघ जाते थे। 'प्रथम अब्दपूर्ति' के अवसर पर अपनी कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए सम्पादक ने स्पष्ट निवेदन किया था कि विशेष आर्थिक सहायता के अभाव में इस पत्र का स्थायी रूप से निकलना सम्भव नहीं है। उक्त सहायता मिलने पर ही इसका प्रकाशन हो सकेगा। उक्त सहायता की प्रतीक्षा दो सप्ताह तक की जायेगी। अनुकूल

परिणाम नहीं निकलने पर बन्द कर दिया जायेगा। इस पर काफी संख्या में लोगों ने दुःख प्रकट करते हुए इसकी वैशिष्ट्य-चर्चा के साथ ही पुनः प्रकाशन की मंगलकामना की थी। इस पत्र में एक भी ऐसा लेख नहीं छपता था, जिसमें प्रखर राष्ट्रीयता का स्वर न हो। कदाचित् यही कारण है कि भारतेन्दु बाबू का यह अत्यन्त प्रिय पत्र था। इस पत्र की भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी थी, अतः कठिन होने पर भी अबोधगम्य नहीं होती थी। इसके पाठक गम्भीर तथा सुलझे हुए लोग होते थे।

2. *राजस्थान समाचार :* सन् 1889 में प्रकाशित होने वाला 'राजस्थान समाचार' पत्र सर्वप्रथम साप्ताहिक था। लगातार 6 वर्षों तक साप्ताहिक रहने के बाद अर्द्ध-साप्ताहिक और फिर दैनिक हो गया। राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता को पुष्ट करने और दैनिक पत्रों के प्रकाशन की परम्परा तथा लोकप्रियता स्थापित करने में अजमेर के तत्कालीन पत्रकार श्री समर्थदान के 'राजस्थान समाचार-पत्र' का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यद्यपि यह पत्र अजमेर से प्रकाशित होता था लेकिन इसका प्रसार-क्षेत्र केवल अजमेर तक सीमित नहीं था। 'बोअर युद्ध' के समय युद्ध के विचारों के प्रति जनता की जिज्ञासा का अनुभव करते हुए श्री समर्थदान ने अपने पत्र को दैनिक कर दिया था। रूस-जापान युद्ध के समय 'राजस्थान समाचार' ने युद्ध के समाचार देने में कीर्तिमान स्थापित किया था। कालाकाँकर में राजाराम पाल सिंह द्वारा 'दैनिक हिन्दोस्थान' की स्थापना के बाद यह दूसरा हिन्दी दैनिक था, परन्तु इसमें और हिन्दोस्थान में क्या अन्तर था, इसको पं0 चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''पत्र पहले साप्ताहिक था, फिर अर्द्ध साप्ताहिक हुआ। इन दिनों उसमें एक 'अंत कहानी' चलायी गयी थी, जो जल्दी ही शांत हो गयी। रूस-जापान के युद्ध की आग में उन्होंने अपने पत्र को दैनिक कर दिया सच पूछिए तो यह हिन्दी का पहला व्यवसायी दैनिक था। कालाकाँकर का 'हिन्दोस्थान' बड़ौदे की सोने-चाँदी की तोप की तरह, एक राजा के शौक की चीज थी। मनीषी जी ने बम्बई से तार समाचार सीधे मँगवाने शुरु किए। हिन्दी साहित्य की अखबार नवीसी में और राजपूताने के पत्र-पाठकों में उस दिन हर्ष और विस्मय का विचित्र संकट हुआ जब टशूसीमा का समाचार पहाड़ पर 'पायनियर' से आठ दस घंटे पहले राजस्थान समाचार ने पहुँचा दिया।'' परन्तु इसका दैनिक संस्करण अधिक समय तक नहीं रह पाया। आरंभ साप्ताहिक पत्र के रूप में हुआ था और अंत भी साप्ताहिक के रूप में ही हुआ। इस पत्र का साप्ताहिक मूल्य 3.50 पैसा था। यह दो रायल सीट के 16 पृष्ठों में निकलता था।

'राजस्थान समाचार' पत्र की सूची के अनुसार यह 1889 ई0 से 1895 ई0 साप्ताहिक पत्र के रूप में प्रकाशित होने के पश्चात् सन् 1889 ई0 में दैनिक हुआ था। बाबू बालमुकुन्द गुप्त के शब्दों में पत्र की रूप रेखा में कमियाँ इस प्रकार थीं, ''दैनिक होने के बाद से उसके लेखों का ढंग कुछ बदल गया है। अपेक्षाकृत कुछ स्वाधीनता उसमें आ गयी है। रजवाड़ों के मामले में किसी-किसी बात पर वह बोलने भी लगा है, पर अभी पुराना भय छूटा नहीं है और जब तक छूटेगा नहीं तब तक ठीक सफलता भी नहीं होगी। कागज छोटा है लेखों का ढंग उसमें छोटे कागजों का सा होना चाहिए। अंगरेजी दैनिक की भाँति किसी लेख पर पाँच-पाँच सात हेडिंग जड़ देना किसी छोटे आकार के दैनिक पत्र का काम नहीं है। उसे अपने एक-एक लाइन के स्थान को बहुमूल्य समझना चाहिए। अंगरेजी दैनिकों का आकार खूब बड़ा होता है और टाइप छोटे-छोटे। वह किसी लेख पर कई-कई हेडिंग बिठावे तो बिठा सकते हैं। छोटे आकार के हिन्दी कागज को उनकी नकल की क्या दरकार है?''

इन न्यूनताओं की ओर अंगुलि निर्देश करने के साथ ही इसकी विषताओं पर भी उन्होंने दृष्टि डाली है और लिखा भी है- ''जो कुछ हो राजस्थान समाचार के प्रचार से हमें बड़ी प्रसन्नता है। इसका कारण यही है कि वह रजवाड़ों का अखबार है। रजवाड़ों में अखबार की बड़ी जरूरत है और रजवाड़े भारतवर्ष में शिक्षा आदि में सब प्रान्तों से पीछे हैं। राजस्थान समाचार ने निकलकर रजवाड़ों में हिन्दी का प्रचार करने की चेष्टा की है और वहाँ लोगों में समाचार पढ़ने की रूचि बढ़ायी है। यह बहुत ही साधु उद्देश्य है। चेष्टा करने से वह बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। वहाँ के अभावों और आवश्यकताओं पर ध्यान देता हुआ उक्त पत्र अपने पक्ष को बहुत कुछ ठीक कर सकता है। इसी प्रकार विचारपूर्वक चलने से कुछ दिनों में उक्त पत्र उन गुणों का संचय कर सकता है तो एक हिन्दी दैनिक पत्र के लिए दरकार है। हमारी सदा इच्छा है, जिस प्रान्त का वह पत्र है, उसमें उसका यश बढ़े।''

3. *खिचड़ी समाचार :* मासिक पत्र 1891 में बहुत से निकले परन्तु साप्ताहिक पत्र केवल एक निकला और वह मिर्जापुर का (उ0प्र0) से प्रकाशित 'खिचड़ी समाचार' नामक पत्र था। यह अपने नाम की सार्थकता को पूरी तरह सिद्ध करता है।

इसकी भाषा हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के पुट (शब्द) से बनी थी। इसके प्रमुख सम्पादक बाबू माधव प्रसाद खत्री थे।

4. *व्यापार हितैषी और सेवक :* सन् 1892 ई0 में दो साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित हुए थे। इनमें से पहला 'व्यापारहितैषी' और दूसरा 'गोसेवक' था। 'व्यापार हितैषी' बाबू हनुमान आसाद के सम्पादकत्व में बनारस से निकला। इसका वार्षिक मूल्य एक रूपया पाँच पैसा था। 'गोसेवक' पत्र इलाहाबाद से श्री जगतनारायण के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था।
5. *नागरी नीरद :* सन् 1893 ई0 में भी दो साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित हुए (1) 'नागरीनीरद' और (2) 'व्यापार बंधु'। ''नागरी नीरद'' मिर्जापुर से निकलता था। इसके सम्पादक विख्यात कवि और पत्रकार पं0 बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जी थे। इन्हें मेघ बड़े प्रिय थे, इसीलिए इन्होंने अपना दूसरा नाम 'प्रेमघन' रखा था। बाद में 'नागरी नीरद' साप्ताहिक से मासिक हो गया।
6. *व्यापार बंधु :* पं0 काशी प्रसाद अवस्थी के संपादकत्व में यह पत्र बम्बई से प्रकाशित होता था, परन्तु इसका विस्तृत वृत्त प्राप्त नहीं है।
7. *वेंकटेश्वर समाचार :* 1996 ई0 में 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' पत्र बम्बई से प्रकाशित हुआ इसके सम्पादक बाबू रामदास वर्मा थे। पं0 अम्बिका प्रसाद बाजपेयी इस पत्र के विषय में लिखते हैं, ''श्री वेंकटेश्वर समाचार अपनी सीधी-सादी चाल से चला आ रहा है। वह न किसी की आलोचना करता है और न किसी से लड़ता है, भाषा का विचारों वा लेखन-शैली किसी बात के लिए वह प्रसिद्ध नहीं रहा है। एकबार पं0 चन्द्रधर गुलेरी ने इस पर दिल्लगी की एक कहानी 'भारत मित्र' में छपायी थी। उसमें लिखा था कि कोई महाशय यह पत्र रेल में लिये चले जा रहे थे। इस पर एक-दूसरे यात्री ने इसे देख बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और बोला कि यह बड़ा अच्छा अखबार है। पूछा गया किस बात में, उत्तर मिला कि मेरी कपड़े की दुकान है और ग्राहकों को जब मैं कपड़ा बेचता हूँ तो इसी में लपेट कर देता हूँ।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इसके समकालीन साहित्यकारों और पत्रकारों ने इसे विशेष महत्व नहीं दिया।

8. *शिक्षा :* सन् 1897 ई0 में 'खंगविलास प्रेस' बाँक पुर से 'शिक्षा' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका निकली। इसका आकार 13×10 इंच और वार्षिक मूल्य 5 रू0 था। यह पं0 सकलनारायण शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता रहा। लगभग 20 वर्षों तक सक्रिय रहा इस पत्र में सकल नारायण शर्मा ईश्वर के नामों पर लेख लिखा करते थे। संस्कृत भाषा में भगवान के जितने नाम थे, प्रत्येक की वे व्याख्या करते थे। इस पत्र में कुछ शिक्षाप्रद बातें भी छपती थी।
9. *बड़ा बाजार गजट :* सन् 1900 ई0 में यह साप्ताहिक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक बाबू रामलाल वर्मन थे। यह कई वर्षों तक चलता रहा। यह मुख्यतः व्यापारियों के हितों को ध्यान में रखकर प्रकाशित होता था।

पाक्षिक पत्र

भारत मित्र : 'भारत मित्र' 17.5.1878 को कलकत्ते से प्रकाशित हुआ, जिसके सम्पादक सर्वप्रथम पण्डित हर मुकुन्द शास्त्री जी थे। उन्हें लाहौर से बुलाया गया था। इस पत्र की आयु काफी लम्बी रही। शास्त्री जी के अतिरिक्त जिन अन्य मनीषियों ने 'भारत मित्र' के सम्पादन में योगदान किया, उनमें पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं0 छोटे लाल मिश्र, पं0 रूद्रदत्त शर्मा, पं0 बाबू राव विष्णु पराड़कर, बाल मुकुन्द गुप्त, पं0 अम्बिका प्रसाद बाजपेयी और लक्ष्मण नारायण गर्दे जैसे तत्कालीन शीर्षस्थ पत्रकारों के नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह पत्र राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों का स्वतंत्र ब्यौरा छापता था। इसके निवेदन में संपादक महोदय ने लिखा था, ''विदित हो कि यह पत्र प्रतिपक्ष में एक बार प्रकाशित होगा परन्तु बिना सर्वसाधारण की सहायता के इसके चिर स्थायी होने की आशा-निराशा मात्र है, इसलिए सर्वसाधारण को उचित है कि इसकी सहायता करें। सम्पादक के इस निवेदन का ग्राहकों पर प्रभाव पड़ा और इसके 5 सौ ग्राहक हो गये तत्पश्चात् यह साप्ताहिक हो गया। इसके मुख्य पृष्ठ पर यह आदर्श वाक्य छपा रहता था, ''सगुण खनित्र विचित्र अति खोते सब के चित्र। शोधै नर चरित्र यह 'भारत मित्र' पवित्र।।''

यह राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक आन्दोलनों में खुलकर भाग लिया करता था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेख 'भारत मित्र' में बहुत छपते थे। उन दिनों कलकत्ता जुआ का अखाड़ा था, उसके विरूद्ध उसने आन्दोलन चलाया था। उसे

भारी सफलता भी मिली थी। बैंकों में जो '2 बजे' रात तक काम होता था, उसके विरूद्ध भी इसने आन्दोलन छेड़ा था।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त के सम्पादकत्व में 'भारत मित्र' में हिन्दी भाषा के संस्कार का आन्दोलन छेड़ा गया और उन्होंने 'भारत मित्र' को नयी व्यवस्था और नया रूप प्रदान किया। उन्होंने पत्र का आकार बड़ा किया और मूल्य कम कर दिया। गुप्त जी चूँकि युग-चेतना के प्रति अधिक सचेत थे और उनकी राष्ट्रीय निष्ठा बलवती थी, इसीलिए स्वाभाविक था कि राष्ट्रीय स्वर की रचना ही पत्र का उद्देश्य हो।

मासिक पत्र-पत्रिकाएँ

1. *कविवचन सुधा :* सन् 1867 ई0 में बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने बनारस से 'कविवचन सुधा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया, जो अल्पकाल में ही पाक्षिक हो गयी और फिर यही पत्र आगे चलकर अर्थात् सातवें वर्ष में साप्ताहिक हो गई। कहने को यह केवल कविता की पत्रिका थी, परन्तु आकाशकों का जन्म भी नहीं हुआ था तब 'कविवचन सुधा' में चन्द बरदाई, जायसी, कबीर, गिरधर राम, देव तथा दीन दयाल गिरि जैसे कवियों की रचनाएँ छपीं। साथ ही इसके माध्यम से फरसी कविता संग्रह 'गुलस्ता' का भी अनुवाद प्रकाशित हुआ। 'कविवचन सुधा' ने उस समय भी, अपने आदर्श के रूप में भारत की स्वाधीनता तथा समस्त नर-नारियों की समानता की माँग की थी। 'कवि-वचन सुधा' का सिद्धान्त वाक्य इस प्रकार था, ''खल गनन सो सज्जन दुखी मत होंहि, हरिपद मत रहै। अप धर्म छुटे स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख वहै। बुध तजहिं मत्सर, नारिनर सम होंहि, जग आनन्द लहै। तजि ग्राम कविता सुकविजन की, अमृतवानी सब कहैं।''

'कविवचन सुधा' ने इस आदर्श वाक्य के लिए कार्य किया। इस पत्र के विषय अधिकांशतः भारत की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक अवनति, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के प्रति किये जा रहे सौतेला व्यवहार से ही सम्बन्धित होते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि लेफ्टिनेंट गवर्नर सर विलियम म्योर ने 'कविवचन सुधा' 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' और 'बालबोधनी' (जो स्त्रियों की विशेष पत्रिका थी) की सरकारी खरीद बन्द करा दी। स्वाधीनता संग्राम में लगे पत्रों को जो दण्ड दिए गए, उसकी पहली बानगी भारतेन्दु जी के माध्यम से ही सामने आई।

भारतेन्दु जी ने उस समय अपने तीक्ष्य विरोधी स्वर को प्रकट करने के लिए कविता और व्यंग्य का आश्रय लिया। भारतेन्दु जी की यह शैली केवल उन तक ही सीमित नहीं रही बलिक उनके युग के अन्य साहित्यकारों द्वारा भी अपनायी गयी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी शासन और अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण की कितनी तीक्ष्ण टीका की थी, इसके कुछ दृष्टान्त इस प्रकार है, ''भीतर-भीतर सब रस चूसैं। हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसैं। जाहिर बातन में अति तेज। क्यों सखि साजन नहीं अंगरेज।।''

इसी परम्परा के दर्शन हमें श्री बालमुकुन्द गुप्त जी 'शिवशंभु' के चिट्टे के रूप में मिलते हैं, जिसने 'भारत मित्र' में प्रकाशित होकर 'लार्ड कर्जन' की सरकार के कान खड़े कर दिये। हो सकता है कि 'कविवचन सुधा' जैसी कलकत्ते से दूर हिन्दी के एक जिले से प्रकाशित पत्र में लिखे उपर्युक्त स्रोत का एक वृहत्तर राजनीतिक प्रभाव न दिखाई दे, लेकिन भारतेन्दु बाबू के कविचन सुधा ने ही एक वृहत्तर क्षेत्रीय साहित्यिक पीढ़ी को दिशा-निर्देश दिया। उनकी परम्परा को जीवित और अग्रसर करने वाले प्रमुख पत्रकारों और साहित्यकारों में से कुछ प्रमुख नाम हैं- श्री बालकृष्ण भट्ट, पं0 प्रताप नारायण मिश्र, आचार्य बदरी नारायण 'प्रेमघन' और श्री राधाचरण गोस्वामी आदि। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के दिलों में ऐसी जगह कर ली कि 'कविवचन सुधा' के हर अंक के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था। हिन्दी पत्रकारिता के नये युग का आरम्भ ही 'कविवचन सुधा' से माना जाता है।

2. *हरिश्चन्द्र मैगजिन (हरिश्चन्द्र चंद्रिका) :* बनारस से 15 अक्टूबर सन् 1873 को बाबू हरिश्चन्द्र ने ही 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का भी प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्रिका मासिक थी। इसमें पुरातत्व, इतिहास, राजनीति आदि से सम्बन्धित लेखों के अतिरिक्त व्यंग्य, प्रहसन, नाटक, कविता, उपन्यास और आलोचना आदि अनेक विधाओं की सामग्री छपा करती थी। आश्चर्य की बात यह है कि इतने विविध विषयों और रचनाशैलियों की जानकारी देने का दायित्व अकेले भारतेन्दु जी पर

ही रहता था। इसी पत्रिका का नाम आगे चलकर (अर्थात् 8 अंकों) के बाद। ''हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका'' हो गया। अन्य विषयों के साथ ही भारतेन्दु जी ने इस पत्रिका के माध्यम से उद्योग की शिक्षा पर भी धारदार लेख प्रकाशित किये। सन् 1874 ई0 में दुर्भिक्ष के अवसर पर उन्होंने लिखा- ''जाने को तो यहाँ से सब खिंचकर जाता है और आने को शीशा, कलम एवं पिंसल आती है। बड़े-बड़े एम0ए0 और बी0ए0 अब इस दुर्भिक्ष में किस काम आवेंगे- ये विद्या कुछ काम न आवेगी यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा नहीं तो अन्त में यहाँ का सब धन विलायत चला जायेगा तुम मुँह बाये रह जाओगे।''

इसी आशय को उन्होंने निम्न पंक्तियों में भी व्यक्त किया है, ''अंग्रेज राज-सुख साज सजै सब भारी। पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।''

तत्कालीन ब्रिटिश सरकार भी आरम्भ में इसकी सौ प्रतियाँ लेती थी, पर जब इसमें देश-भक्ति से पूर्ण सामग्री प्रकाशित होने लगी तो इस पर अश्लीलता एवं राष्ट्रद्रोह का दोषारोहण करते हुए सरकार ने इसे लेना बन्द कर दिया।

सन् 1880 ई0 में श्री मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या के अनुरोध पर भारतेन्दु जी ने 'मोहन चन्द्रिका' में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' को मिला दिया, जिसका प्रथम सम्मिलित अंक ज्येष्ठ शुक्ल 1 सं0 1937 (सन् 1880 ई0) में प्रकाशित हुआ और इसी के साथ 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का स्वतंत्र प्रकाशन बंद हो गया। सन् 1984 ई0 तक 'चन्द्रिका' संयुक्त रूप में 'मोहन चन्द्रिका' के साथ निकलती रही। सन् 1884 ई0 में भारतेन्दु जी ने पुनः 'नवोदित हरिश्चन्द्र' शीर्षक से उसे प्रकाशित किया किन्तु 5 जनवरी सन् 1885 ई0 को भारतेन्दु बाबू के असामयिक स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् मात्र एक अंक छपने के बाद यह पत्रिका सदा के लिए बन्द हो गयी।

3. बालबोधिनी पत्रिका : 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका बाबू हरिश्चन्द्र ने जनवरी सन् 1874 से आरम्भ की थी। यह महिलाओं की मासिक पत्रिका थी। 'बालबोधिनी' पत्रिका के प्रथम अंक में प्रथम पृष्ठ पर जो निवेदन था, वह स्त्री- चेतना की दृष्टि से भी यह उल्लेखनीय है। इसके प्रथम अंक में इसके उद्देश्य का उल्लेख करने के साथ महिलाओं के लिए अपील भी प्रकाशित हुई थी।

4. हिन्दी प्रदीप : पं0 बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित 'हिन्दी प्रदीप' प्रथम से एक मार्च सन् 1877 को प्रकाशित हुआ। यह पत्र कई कठिनाइयों के बाद भी 35 वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस पत्र का उद्घाटन किया था। पत्रकारिता के क्षेत्र में 'हिन्दी प्रदीप' का जन्म हिन्दी साहित्य के इतिहास में क्रान्तिकारी घटना थी। इसने हिन्दी पत्रकारिता को एक नयी दिशा प्रदान की। इसका स्वर राष्ट्रीयता, निर्भीकता तथा तेजस्विता से युक्त था। अतः सरकार इस पर कड़ी दृष्टि रखती थी। इसमें साहित्य और पत्रकारिता की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहती थी।

यह एक मासिक-पत्रिका थी। इसमें विविध विषयों से संबंधित सामग्री तथा विद्या, नाटक, समाचारवली, इतिहास, परिहास, साहित्य, दर्शन, राजनीति आदि से संबंधित उच्चकोटि की सामग्री छपती थी। जिस समय 'हिन्दी' प्रदीप का जन्म हुआ हिन्दी में अन्य कई उच्च कोटि के पत्र निकल रहे थे, पर 'प्रदीप' अपनी कुछ विशिष्टता लिए हुए हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में उतरा, जो उसके इस 'मोटो' से स्पष्ट है, ''शुभ सरस देश सनेह पूरित, प्रकट ह्वै आनंद भरै। वचि दुसह दुरजन वायु सों मणिंदीपसम थिर नहीं टरे।। सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरै। हिन्दी प्रदीप प्रकाशित मूरखतादि भारत तम हरै।।''

उक्त 'मोटो' की रचना भारतेन्दु बाबू ने की थी। वास्तव में 'हिन्दी प्रदीप' भी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की ही प्ररेणा का प्रतिफल था।

'हिन्दी प्रदीप' के प्रकाशनारम्भ के साथ ही 'प्रेस ऐक्ट' भी असल में आ गया। फलतः उसके ऊपर भी विपत्ति आ पड़ी। इस पत्र के अधिकांश सहयोगी छिन्न-भिन्न हो गये। ऐसी स्थिति में 'प्रदीप' का सारा बोझ भट्ट जी पर ही आ पड़ा। भट्ट जी ने अनेक प्रकार की मुसीबतों का सामना करते हुए भी 'हिन्दी प्रदीप' की ज्योति को प्रज्वलित रखा। इस प्रकार 'हिन्दी प्रदीप' ने पत्रकारिता को एक नई दिशा प्रदान की।

इस पत्र की विचारधारा क्रांतिकारी थी, इसलिए बहुत से लोग 'हिन्दी प्रदीप' के विरोधी हो गये थे, पर भट्ट जी ने अपने पत्र में स्थान-स्थान पर उनकी तीव्र आलोचना की है। इस प्रकार 33 वर्षों तक अनेक कठिनाइयों को सहते हुए और लगभग

8 प्रेसों में घूम-घूम कर 'हिन्दी-प्रदीप' प्रकाशित हुआ परन्तु अन्त में सम्पादक भट्ट जी के अगाध स्नेह के होते हुए भी ब्रिटिश सरकार की कुदृष्टि में आ गया और बन्द हो गया।

5. उचित वक्ता : 'उचित वक्ता' का प्रकाशन 7 अगस्त सन् 1880 ई0 से प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक डॉ0 दुर्गा प्रसाद मिश्र जी थे। व्यंग्य मुँह चिढ़ाने और मीठी-मीठी छूरी मारने में 'उचित वक्ता' को विशेषज्ञता प्राप्त थी। चूँकि यह पत्र पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र जी का सोलहो आने अपना पत्र था इसलिए वे पूरी स्वतंत्रता से इसे प्रकाशित करते थे। 'स्वाधीनता खोकर उन्नति करने में गौरव नहीं है', यह 'उचित वक्ता' के पहले अंक की सम्पादकीय टिप्पणी का मूल स्वर है। यहाँ के पत्रकारों को दायित्व बोध कराते हुए मिश्र जी ने लिखा था कि, ''देशी संपादकों, सावधान कहीं जेल का नाम सुनकर कर्त्तव्यविमूढ़ न हो जाना, धर्म की रक्षा करते हुए यदि गवर्नमेंट को सत्य परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है? इससे मानहानि नहीं होती है। हाकिमों के जिन अन्याय आचरणों से गवर्नमेंट पर सर्वसाधारण की अश्रद्धा हो सकती है उनका यथार्थ प्रतिवाद करने में जेल तो क्या द्वीपांतरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है?''

इस प्रकार वे अपने पत्र द्वारा राष्ट्रीय प्रेरणा से ओत-प्रोत समस्याओं और विषयों पर हलचल मचाने वाले पत्रकारों में से थे। वे अपने पत्र से बड़ी ही साफ-सुथरी भाषा में देशवासियों को चेतावनी देते हुए लिखते हैं- ''भारत के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य और भारत के सौभाग्य को अपना सौभाग्य समझो। नहीं तो भारत का दुर्भाग्य दूर नहीं होगा।''

कलकत्ता से निकलने वाला यह तीसरा पत्र था। इसका आदर्श वाक्य था- ''हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।''

'उचित वक्ता' की दिलचस्पी राजनीति में भी थी। विशेष रूप से देशी रजवाड़ों तथा अंग्रेजों से विवाद उठने पर 'उचित वक्ता' अपने ढंग से बोलता था। साहित्य तो उसका अपना विषय था ही। यह पत्र अपने व्यंग्यात्मक लेखों के लिए भी प्रसिद्ध था। इसके लेखकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी भी थे। जिस राष्ट्रीय चेतना को वाणी देने के लिए 'उचित वक्ता' का जन्म हुआ था, उसे जीवित रखने के लिए पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र को अनेक भूमिकाओं में उतरना पड़ा था। 'उचित वक्ता' की सामग्री तैयार करना, छापना, ग्राहकों तक पहुँचाना और उन्हें पढ़कर सुनाना-समझाना आदि सब पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र जी को अकेले करना पड़ता था। इस कठोर साधना में जो निजी अर्थ व्यय हुआ उसके सम्बंध में पं0 अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि ''दुर्गा प्रसाद जी ने घर का धान पुआल में मिलाया।''

'उचित वक्ता' के ग्राहकों की संख्या थोड़े ही दिनों में दो हजार तक हो गयी। इसके पाठक कभी दूसरे पत्र के ग्राहक नहीं हुए। इस पत्र में विदेशी शासकों की दमन-नीति की कटुता से आलोचना की थी, जिससे देशोद्धार की चिंता-चेतना के साथ ही उन्हें अनेक प्रकार की चिंताओं से जूझना पड़ता था जो, उन्हें कभी-कभी निराश भी बना देती थी। पत्रकारिता के प्रति ईमानदार निष्ठा का निर्वाह करने में कलकत्ता के महान पत्रकार पं0 रुद्रदत्त शर्मा को अनेक विपत्तियाँ सहनी पड़ी। पं0 अमृत लाल चक्रवर्ती को कर्ज न चुका पाने के अपराध में जेल की सलाखों में जकड़ना पड़ा। यह गर्व नहीं ग्लानि का विषय है कि राष्ट्रीय दायित्व पूरा करने वाले कलकत्ता के इन पत्रकारों को बहुत अधिक कष्ट एवं अपमान झेलना पड़ा।

6. ब्राह्मण : प्रताप नारायण मिश्र वर्तमान हिन्दी गद्य के निर्माताओं में से एक माने जाते हैं। वे बड़े अच्छे कवि थे और अपने को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुयायी समझते थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' शीर्षक से एक पत्र 15 मार्च 1883 को प्रारम्भ किया। इस पत्र के पक्ष में केवल एक सुविधा थी कि लार्ड रिपन के कार्यकाल में भाषायी समाचार पत्र कानून रध कर दिया गया था, जिसका लाभ उठाकर मिश्र जी ने यह पत्र प्रारम्भ किया। वे जानते थे कि जिन लोगों को वे अपने पाठकवर्ग में लेना चाहते हैं, उनमें से अनेक लखनऊ के दो प्रसिद्ध उर्दू पत्रों (1) 'अवध अखबार' और (2) 'अवध मंच' से प्रभावित थे। ये दोनों पत्र व्यंग्य का उपयोग कर अपनी भाषा को प्रवाहमान और शक्तिशाली बनाते थे। इसी चुनौती का सामना करने के लिए और हिन्दी के पाठकों को हिन्दी पत्रकारिता की शक्ति और सामर्थ्य से परिचित कराने के लिए, उन्होंने 'ब्राह्मण' पत्र निकाला था। इन्होंने भी इसमें उसी शैली का प्रयोग किया जो उर्दू अखबारों में प्रचलित थी।

इस प्रकार भारतेन्दु की भाँति मिश्र जी ने भी हिन्दी भाषा और अभिव्यक्ति शैली को एक नया आयाम दिया। एक पत्र को निकालने के पीछे मिश्र जी का क्या उद्देश्य था? इसका उत्तर उनके पत्र के प्रथम अंक के अग्र लेख से मिल जाता है।

'ब्राह्मण' पत्र रायल साइज के बारह पृष्ठों में प्रकाशित होता था और उसका मूल्य एक रूपया था। मिश्र जी 4.7.1894 तक जीवित रहे और तब तक उनके सम्पादन में यह निकलता रहा। चाहे वे कानपुर में रहे, चाहे कुछ दिनों के लिए कालाकाँकर चले गये या फिर उन्हें पटना के महाराज कुमार रामदीन सिंह के आग्रह पर 'ब्राह्मण पत्र' को प्रकाशनार्थ पटना भेजना पड़ा। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी कुछ दिनों तक 'ब्राह्मण' चलता रहा। लेकिन फिर उसकी पुरानी तेजस्विता समाप्त हो गयी। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ता है कि इन ग्यारह-बारह वर्षों में इन्होंने न केवल हिन्दी पत्रकारिता के लिए कानपुर में अपना विशिष्ट स्थान बनाया बल्कि हिन्दी पत्रकारिता को एक ऐसी शैली प्रदान कर दी जो उन्हें लोकप्रिय बनाने में बहुत सफल रही। सन् 15 मार्च, 1883 ई0 को 'ब्राह्मण' पत्र का पहला अंक निकला था। आरम्भ में इस पत्र का मूल्यांकन इन शब्दों में किया था, ''यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा, अपने कर्त्तव्य पालन में योग्य था या अयोग्य, यह कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है। न्यायशील सहृदय लोग अपना विचार प्रकट कर चुके हैं और करेंगे, पर हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी पत्रों की गणना में संख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य को थोड़ा बहुत सहारा इससे भी मिलता रहता था।''

7. *नागरी प्रचारिणी पत्रिका : 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'* सन् 1896 ई0 में वाराणसी के 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा त्रैमासिक-पत्रिका के रूप में प्रकाशित की गयी थी। इसके सम्पादक मण्डल में बाबू श्याम सुन्दर दास, महा महोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, श्री कालीदास और राधा कृष्णदास आदि थे। 1907 ई0 में यह मासिक पत्रिका हो गयी और इसके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री रामचन्द्र वर्मा और वेणी प्रसाद चुने गये। 1920 ई0 में यह एक बार पुनः त्रैमासिक हो गयी। इसमें भाषा, साहित्य, अनुसंधान और समालोचना सम्बंधी लेख रहते थे। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषा, साहित्य आदि के विकास को प्रोत्साहित करना था।

8. *भारत जीवन :* बाबू रामकृष्ण वर्मा ने काशी से 3 मार्च, 1884 ई0 को 'भारत जीवन' नाम से इस पत्रिका को प्रकाशित किया। यह पहले 4 पृष्ठों की थी, परन्तु बाद में 8 पृष्ठों की हो गयी। यह पत्र 30 वर्षों तक प्रकाशित हुआ। 'भारत जीवन' नामक यह अपने नाम की सार्थकता के प्रतिकूल सिद्ध हुआ। यह एक दब्बू अखबार था। स्वतंत्र होकर साहसपूर्वक इसने कभी भी नहीं लिखा।

9. *सरस्वती :* 1900 ई0 का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। सन् 1900 ई0 में प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका अपने समय की युगान्तकारी पत्रिका रही है। यह मासिक पत्र था। यह अच्छी छपाई, सफाई, कागज और चित्रों के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयी। इसे बंगाल बाबू चिन्तामणि घोष ने प्रकाशित किया था तथा इसे 'नागरी प्रचारिणी सभा' का अनुमोदन प्राप्त था। इसके सम्पादक मण्डल में बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्त्तिक प्रसाद खत्री, जगन्नाथ दास रत्नाकर, किशोरी दास गोस्वामी तथा बाबूश्याम सुन्दरदास थे। 1903 ई0 में इसके सम्पादन का भार आचार्य 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' पर पड़ा। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी प्रेमियों के मनोरंजन एवं ज्ञानसंवर्द्धन के साथ-साथ भाषा को समृद्ध तथा संस्कारित बनाना भी था। इसके पद्य, गद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास, चंपू, इतिहास, जीवन चरित्र, पत्र, हास-परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान और शिल्प-कला आदि सभी सम्पादक के व्यक्तित्व की घोषण करते थे। इस पत्र में साहित्य, पुरातत्व, पुस्तक परिचय, चरित्र चर्चा विज्ञान, आलोचना, विवेचना और प्रकीर्ण ये आठ शीर्षक होते थे।

'सरस्वती' के उद्देश्य की चर्चा करते हुए डॉ0 हर प्रकाश गौड़ ने लिखा है- ''सरस्वती का उद्देश्य हिन्दी भाषी क्षेत्र में सांस्कृतिक जागरण करना था, राष्ट्रीय जागरण तो उसका अंग था ही।''

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि भारतेन्दुयुगीन पत्र न सिर्फ हिन्दी पत्रकारिता के विकास में मील के पत्थर हैं। अपितु कठिन चुनौतियों के बीच जन-जागरण कर स्वतंत्रता आन्दोलन के अग्रदूत होने के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक कुरीतियों के विरूद्ध संघर्षरत रहें।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,43-47
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 फरवरी 2016

ब्राह्मण ग्रंथों का सांस्कृतिक महत्व

डॉ. शारदा कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ब्राह्मण ग्रंथों का सांस्कृतिक महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शारदा कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

वेदों का पूरा सम्बन्ध यज्ञों से था। शनैः शनैः यज्ञ की विधियाँ निर्धारित की जाने लगी। इस प्रकार एक नवीन वाङ्मय का सृजन हुआ जिसका नाम ब्राह्मण पड़ा। जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों की रचना ब्राह्मण, पुराहित, यज्ञ आदि के कारण हुई। आर्यों का प्रधान धार्मिक कृत्य यज्ञ था। प्रत्येक वेद की याज्ञिक उपयोगिता समझाने के लिए प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण बन गये। वैदिक काल में कर्म का अर्थ यज्ञ समझा जाता था अतएव ब्राह्मण मुख्यतः कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं। किसी भी धर्म से उसका क्रियात्मक रूप (कर्मकाण्ड) निकाल देने पर वह धर्म निःसत्त्व और जड़ हो जायेगा। चूंकि तत्कालीन क्रियात्मक रूप ही किसी धर्म की विशेषता होती है। इसलिये हिन्दू धर्म का जीवित रूप ब्राह्मण-ग्रन्थ है। मन्त्रभाग या संहिता भाग का यथार्थ रहस्य ब्राह्मण भाग के बिना समझना अत्यन्त कठिन हो जाता। इसी कारण मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद कहा गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थ सामूहिक रूप से यज्ञ-विधान पर विद्वान पुरोहितों द्वारा की गई व्याख्यायें ही हैं। 'ब्रह्म' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है जिसमें एक अर्थ मन्त्र है। 'ब्रह्म वै मन्त्रः'[1] मन्त्र और ब्राह्मण का सम्बन्ध ऐसा है कि कहीं-कहीं दोनों को अलग-अलग करना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ कृष्ण यजुर्वेद की जो मैत्रायणी और काठक संहितायें उपलब्ध हैं में कुछ मन्त्र कहकर उसी प्रपाठक में ब्राह्मण भी कहा गया है। जब की तैत्तिरीय में मन्त्र और ब्राह्मण अलग-अलग तो कहे गये हैं, परन्तु अनेक मन्त्र ब्राह्मण भाग में और अनेक ब्राह्मण मन्त्र भाग में पाये जाते हैं।

ब्राह्मण साहित्य को दो रूपों में विभक्त किया गया है- एक, विधि और दूसरा, अर्थवाद। विधियाँ यज्ञों के नियम हैं और अर्थवाद उन नियमों के प्रशस्तिपूर्ण व्याख्या। अर्थवाद के अन्दर ही इतिहास, पुराण और आख्यायिकाओं के प्रसंग आते हैं, जिनमें पुराण साहित्य का मूल है। श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है, 'ब्राह्मणों में विधि ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके चारो ओर निरूति, स्तुति, आख्यान तथा हेतु वचन आदि विविध विषय अपना आवर्तन पूरा किया करते हैं,[2] इस प्रकार, ब्राह्मण ग्रन्थों का एक महत्त्व यह भी है कि वे वेद और वेदोत्तर साहित्य के बीच सांस्कृतिक सेतु का कार्य किए। ब्राह्मण युग में यास्क ने

* अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रसिद्ध निरूक्त की रचना की, जिसका उद्देश्य वेदार्थ को सुनियोजित करना था। ब्राह्मणों में यज्ञनियम धीरे-धीरे जब जटिल हो गये तब उन्हें संक्षिप्त और व्यावहारिक बनाने हेतु श्रौत-सूत्रों का विकास हुआ।

दिनकर[3] ने ब्राह्मणों पर सुन्दर समीक्षा करते हुए लिखा है 'मन्त्र-युग के बाद ब्राह्मणों का युग आता है। पुनर्जन्म और कर्मफलवाद का प्रत्यक्ष विवरण ब्राह्माण-ग्रन्थों में भी नहीं मिलता, यद्यपि ब्राह्मणों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज यह मानता था कि मरने के बाद जीव परलोक में वास करता है और लोक में उसने जैसे कर्म किये हैं परलोक में उसे वैसे ही फल मिलते हैं।' यही विचार-पद्धति उपनिषद्कालीन रहस्यवादी चिंतकों का आधार बना। चूंकि उपनिषद काल में कर्म का अभिप्राय केवल यज्ञ से नहीं रहकर उन सारे कृत्यों से हो गया, जिनके कारण मनुष्य को पुनर्जन्म लेना पड़ता है। जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद उपनिषद् युग में पूर्णरूप से स्थापित हो गये और तब से वे सिर्फ हिन्दुत्व के ही नहीं बल्कि बौद्ध मत और जैनमत के भी आधारभूत सिद्धान्त रहे हैं। पुनर्जन्मवाद और कर्मफलवाद भारतीय संस्कृति के अक्षुण्ण स्तम्भ रहे हैं जिनसे समाज में नैतिकता तथा सदाचार की अभिवृद्धि होती है।

संस्कृत साहित्य में गद्य-लेखन का सर्वप्रथम प्रयास ब्राह्मण-ग्रन्थों द्वारा ही हुआ। इस दृष्टिकोण से ब्राह्मण-ग्रन्थ न केवल भारतीय, अपितु समस्त एशियाई तथा यूरोपीय साहित्य के प्राचीनतम गद्य-ग्रन्थ हैं। गद्य-शैली में व्याप्त ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वजनोपयोगी रोचक कथाएँ मिलती हैं जिनके द्वारा अत्यन्त सुगम शैली में कर्मकाण्ड के महत्त्व को निरूपित किया गया है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ रेखागणित के तो जन्मदाता ही हैं। ब्राह्मणों में नाना प्रकार की वेदियाँ और चित्तियाँ बनाने का विधान है। यही विधान रेखागणित के जनक हैं। दो अश्र, चार अश्र, वर्ग, त्रिभुज, द्रोणकार, अनुपात और समानुपात में वेदियों की लम्बाई-चौड़ाई युक्त वेदियों और चित्तियों के निर्माण ने रेखागणित शास्त्र को ही आविष्कृत कर दिया। इसका मूल रूप कई ब्राह्मणों में प्राप्त होता है।[4] अस्तु रेखा गणित ब्राह्मणों की विशेष संस्कृति है। दर्शपूर्णमास यज्ञशाला, सोमयोग यज्ञशाला तथा उड़ती चिड़िया के आकार में बनी सुपर्णचिति अपूर्व एवं महान प्रतिभा के परिचायक हैं।

धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी ब्राह्मण ग्रन्थों का बहुत महत्त्व है। इनमें 'पंचविंश ब्राह्मण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि उसमें निहित कर्म-नियमों द्वारा सामाजिक जीवन की एक नवीन पद्धति तथा अपूर्व परम्परा का सूत्रपात हुआ। उसमें व्रात्य स्तोम यज्ञों द्वारा आर्येत्तर कबीलों को आर्य-समुदाय में सम्मिलित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न हुआ।[5] पंचविंश ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण को ही कहते हैं। सामवेदीय ब्राह्मण-ग्रन्थों में सबसे अधिक प्रसिद्ध ताण्ड्य ब्राह्मण है। चूँकि इनमें पच्चीस अध्याय हैं इसलिए इसे पंचविंश ब्राह्मण भी कहते हैं। इनमें वर्णित विषय-वस्तु का अत्यन्त संक्षेप एवं सारगर्भित विवरण हिन्दू धर्म कोश[6] में मिलता है। 'इसके प्रथम अध्याय में यजुरात्मक मन्त्रसमूह है दूसरे ओर तीसरे अध्याय में बहुस्तोम का विषय है। छठे अध्याय में अग्निष्टोम की प्रशंसा है। इस तरह अनेक प्रकार के याग-यज्ञों का वर्णन है। पूर्ण न्याय, प्रकृति-विकृति लक्षण, मूल प्रकृति विचार, भावना का कारणादि ज्ञान, षोड्श ऋत्विक् परिचय, सोमप्रकाश परिचय, सहस्र संवत्सरसाध्य तथा विश्वसृष्टसाध्य सूत्रों के सम्पादन की विधि इसमें पायी जाती हे। इनके सिवा तरह-तरह के उपाख्यान और इतिहास की जानने योग्य बातें लिखी गयी हैं। इस ग्रन्थ में सोमयाग की विधि और उस सम्बन्ध के सामगान विशेष रूप से हैं, साथ ही कौन सत्र एक दिन रहेगा, कौन सौ दिन रहेगा, और साल भर रहेगा, कौन सौ वर्ष रहेगा और कौन एक हजार वर्ष रहेगा इस बात की व्यवस्थाएँ भी हैं। सायणाचार्य इसके भाष्यकार और हरिस्वामी वृत्तिकार हैं।'

ब्राह्मण युग में वैदिक देवताओं में से प्रायः सभी की पूजा प्रचलित थी, यद्यपि, प्रजापति सबसे श्रेष्ठ एवं जगत् के रचयिता माने जाने लगे थे। विष्णु जो मन्त्र युग में सूर्य के पर्याय थे ब्राह्मण काल में वे यज्ञदेव हो गये। इस प्रकार उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही थी। ब्राह्मण काल में ही शिव आविर्भूत होते हैं एवं वेद के रूद्र के साथ एकाकार हो जाते हैं। बहुत से आर्येतर प्रभाव ब्राह्मण युग तक आर्यधर्म में प्रविष्ट हो जाते हैं एवं इस युग के उपरान्त आगे जो विकास होता है उसमें आर्य और आर्येतर पहचान या भेद अलग-अलग नहीं दिखायी देते। इस तरह भारतीय संस्कृति में ग्रहण और संरक्षण की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ी जिससे आगे वैदिक समाजवाद और मजबूत हुआ। इस यज्ञ संस्था ने समस्त वैदिक समाज को एक साथ संगठित किया और उनमें सामूहिक चेतना के भाव भरे।

समस्त मानव समाज के विकास की व्यष्टिमय एवं समष्टिमय उपलब्धियाँ ही संस्कृति है। मानवता को विशिष्ट बनाने वाले उसके आदर्श तथा उसकी परम्पराएँ और मान्यताएँ हैं। मनुष्य ने परम्परा द्वारा आचार-विचार और रहन-सहन की जिन मान्यताओं

को ग्रहण तथा प्रशस्त किया, उन्हीं मान्यताओं ने उसे सामान्य से विशिष्ट बनाया वस्तुतः वे ही संस्कृति के मूल उपादन हैं। वे उत्तम अभिव्यक्तियाँ जिनके द्वारा मानवता को आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त होती रही है, वे ही संस्कृति हैं। भारतीय संस्कृति की विशेषतायें हैं- प्राचीनता, चिरस्थायिता, निरन्तरता, आध्यात्मिका, ग्रहणशीलता, धर्मपरायणता, समन्वयवादिता, धार्मिक सहिष्णुता, सार्वभौतिकता, सर्वांगीणता, विभिन्नता में एकता, वर्णाश्रम, आदि। ब्राह्मण ग्रन्थों ने किसी न किसी रूप में उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं को आत्मसात करते हुए अपने आपको संस्कृति के संवाहिका के रूप में प्रस्तुत किया है।

वैदिक धर्म में सत्य पर अत्यधिक जोर दिया गया है। सत्य बोलना, सच्चा संकल्प करना, सही कर्म करना आदि वेदधर्म का प्रधान उद्देश्य है। आर्य सबसे अधिक घृणा असत्य से करते थे। झूठ बोलना और असत्याचरण करना महापातक समझा जाता था झूठ बोलने वाले की पवित्रता नष्ट हो जाती है।।[7] असत्य बोलना वाणी का छिद्र है जिसमें से सब कुछ गिर जाता है।[8] असत्यवादी का तेज भी कम होता जाता है। इसलिये मनुष्य को सत्य ही बोलना चाहिये।

ब्राह्मणों में यज्ञ को प्रजापति कहा गया है[9] प्रजापति प्रजा का रक्षक है और यज्ञ भी रक्षक है। अग्नि में दी गयी हवि वायु के सहारे सूर्य की ओर जाती है। पुनः समस्त अन्तरिक्ष में व्याप्त होती है। सूर्य के प्रभाव से हवि मेघ के रूप में नीचे उतरकर वर्षा करती है, जिससे अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजा की रक्षा होती है। साथ ही हवि से पार्थिव पदार्थ, आकाशस्थ वायु और सूर्य-रश्मि आदि शुद्ध होते हैं। हवि से देवता भी तृप्त होते हैं और तृप्त देवता मनुष्य का कल्याण करते हैं। इस तरह ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर पर्यावरणीय चेतना एवं संस्कृति सृजन का उद्घोष है।

मन्त्र पाठ से चित्त शान्त होता है, मन सबल होता है। साथ ही पाप नष्ट होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण[10] से यह भी विदित होता है कि यज्ञ तथा मन्त्रोचारण से समस्त वायुमण्डल में ही परिवर्तन हो जाता है। निखिल विश्व में धर्म-चक्र चलने लगता है। इस प्रकार सारी पृथिवी, आकाश एवं मनुष्य-जाति को उन्नत और पावन बनाने का साधन यज्ञ है।

ऐतरेय ब्राह्मण[11] में दृढ़ निश्चय के साथ सदा आगे बढ़ते रहने का महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया गया है। कहा गया है कि गतिशील व्यक्ति मधु पा लेता है तथा आगे बढ़ने वाला स्वादिष्ट उदुम्बर आदि फल भी प्राप्त कर लेता है। अविश्रान्त रूप से दिन रात गतिशील रहने के कारण सूर्य की विश्व भर में वन्दना होती है। इसी तरह स्वर्गलोक की दूरी गतिशील माध्यम को आधार बनाकर कहा गया है कि एक तेज घोड़ा हजार दिनों में जितना चलता है उतनी ही दूर यहाँ से स्वर्ग है। (ऐतरेय ब्राह्मण 2.17) इस स्वर्ग को यज्ञ, श्रम, तपस्या और आहुतियों द्वारा देवों ने प्राप्त किया है। (ऐतरेय 3.42)

ब्राह्मणों में व्याधियों की उत्पत्ति और उनके विनाश की बातें भी वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदीय शैली में कही गयी हैं। मौसम बदलते समय रोग उत्पन्न होता है। रोग के कीटाणुओं का विनाशक यज्ञीय अग्नि को बताया गया है। 'अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता'[12] अग्नि का सार सुवर्ण को माना गया है और सोने को कीटाणुओं का विनाशक कहा गया है।[13] इसी कारण आर्य लोग कानों में स्वर्ण कुण्डल धारण करते थे।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में शुक्रामन्थी ग्रह विचार के मन्त्र हैं (प्रथम अनुवाक)। दूसरे अनुवाक में कृत्तिकाओं का चन्द्रमा से संयोग होना विवृत्त है। कृत्तिका नक्षत्र की देवता अग्नि ही है। तृतीय काण्ड के दशम प्रपाठक के ग्यारहवें अनुवाक में भरद्वाज ऋषि एवं इन्द्र के बीच वार्तालाप का उल्लेख है। कठोपनिषद् के प्रसिद्ध नाचिकेताग्निचयन का मूल तैत्तिरीय ब्राह्मणों में मिलता है।[14] नवम अनुवाक का आरम्भ जगत् सृष्टि के निरूपण से होता है। आरम्भ में कुछ भी नहीं था, न आकाश, न पृथ्वी, न अन्तरिक्ष। असत् ने ही यह विचार किया कि मैं हो जाऊँ। उसने तय किया....[15] असत् से सत् की उत्पत्ति की चर्चा शतपथ ब्रा0 (6.1.1.1) में भी की गयी है। क्योंकि प्रजापति पुरुष जब एक से अनेक होने की इच्छा करता है तब सृष्टि की संरचना होती है।

'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' शतपथ ब्राह्मण की यह उक्ति सहस्राब्दियों से प्राचीन भारत की चली आ रही यज्ञ-संस्कृति का महत्त्व बतलाने वाली श्रुति है। वैदिक ऋषि ने सूची सृष्टि प्रक्रिया को एक महान् यज्ञ के रूपक से समझा और समझाया था। यह संस्था भारतीय संस्कृति की मेरूदण्ड है। यज्ञ अपने आप में प्रकृति और जीवन को पुष्ट करने का एक वैज्ञानिक उपाय है। ब्राह्मणों में भी आयु को प्रमुख स्थान दिया गया है। आयु केवल प्राणतत्त्व की महत्ता है। 'प्राणो' वै आयुः'[16] यो वै प्राणः स आयुः'[17]

शतपथ ब्राह्मण में याज्ञिक विधि-विधानों का पूर्ण उल्लेख मिलने के साथ-साथ आध्यात्मिक रहस्य भी विवृत्त हैं। आख्यान साहित्य की दृष्टि से इसमें मनु की कथा बहुत ही मार्मिक तथा सरस रूप में निबद्ध हैं। पुराणों में मत्स्यावतार की गाथा भी इसी ब्राह्मण से सर्वप्रथम मिलती है। जहाँ प्रलयकारी बाढ़ के आने पर इसी अपूर्व मत्स्य ने मनु की रक्षा की थी। यह कथा इसी रूप में बाइबिल में भी मिलती है। इसी ब्राह्मण में उद्दालक आरूणि (याज्ञवल्क्य के गुरू) का व्यक्तित्व एवं पांडित्य का सजीव चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में सांख्य दर्शन के आचार्य आसुरी, कुरूपति जनमेजय, पाण्डव प्रमुख अर्जुन तथा जनक उपाधिधारी राजाओं का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित विधि-विधान एवं विविध आख्यान तत्कालीन सामाजिक जीवन के नैतिक स्तर एवं चारित्रिक विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान प्रदान करने में समर्थ है। साथ ही धर्म-शास्त्र एवं धर्म विज्ञान के जिज्ञासुओं हेतु इस ब्राह्मण में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

शतपथ ब्राह्मण के भौगोलिक उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि तत्समय कुरू-पान्चाल के देश (क्षेत्र) ब्राह्मण सभ्यता के केन्द्र बन चुके थे। अतः यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक तथ्यों के उद्घाटन हेतु तथा सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की गाथा जानने के लिए यह ग्रन्थ परम उपादेय है। क्योंकि आर्यों के प्रचार-प्रसार के इतिवृत्तात्मक ज्ञान उपलब्ध कराने में इस ग्रन्थ का अपूर्व योगदान है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से वैदिक संहिता एवं परवर्ती काल का विकास भी इस ब्राह्मण साहित्य में दर्शनीय है।

शतपथ के एक मन्त्र में इतिहास को कला माना गया है। महाभारत के कई कथाओं के स्रोत इसके आख्यानों में पाये जाते हैं यथा रामकथा, कद्रू-सपर्णा की कथा पुरूखा-उर्वशी प्रेमाख्यान, अश्विनी कुमारों द्वारा च्यवन को यौवनदान आदि। इस प्रकार संस्कृत साहित्य के काव्य, नाटक, चम्पू प्रभूति अनेक विधाओं के सूत्र इस ब्राह्मण में विद्यमान हैं। इसे एक विशाल विश्वकोशात्मक ग्रन्थ कहा जा सकता है।

ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन से यह भी निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ऋग्वेद के ब्राह्मण 'होता' के कार्यों की विशेष व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जबकि सामवेदीय ब्राह्मण 'उद्गाता' ऋत्विज के कार्यों के व्याख्याता है। वहीं यजुर्वेद ब्राह्मण 'अध्वर्यु' के कर्मकाण्ड की व्याख्या करते हैं। अथर्ववेद के ऋत्विज को 'ब्रह्म' कहा गया है। अथर्ववेदीय ब्राह्मण सभी ब्राह्मणों की विषय-सामग्री एवं ऋत्विज के कार्यों को अपनाते हुए पाये जाते हैं। वैसे भी 'ब्रह्मा' नामक प्रधान ऋत्विक का कार्य सम्पूर्ण यज्ञ का निरीक्षण करना ही है। चारों वेद के ब्राह्मण ग्रन्थों के स्वरूप में अन्तर होते हुए भी इनमें अन्ततः पारस्परिक समानता है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने समग्र ब्राह्मण साहित्य के महत्त्व का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है- 'ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों के नाना रूपों तथा विभिन्न अनुष्ठानों के इतिहास का पूर्ण परिचय देता है। ब्राह्मणों में यज्ञ एक वैज्ञानिक संस्था के रूप में हमारे सामने आता है। हम उन निर्वाचनों से परिचय पाते हैं जो निरूक्त की निरूक्ति का मौलिक आधार है। उन सुन्दर आख्यानों का मूल रूप हमें यहाँ (ब्राह्मणों में) मिलता है जिनका विकास अवान्तर कालीन पुराणों में विशेषतः दृष्टिगोचर होता है। कर्म-मीमांसा के उत्थान तथा आरम्भ का रूप जानने के लिये ब्राह्मण ग्रन्थ पूर्व पीठिका का काम करता है। ब्राह्मणों के अध्ययन से हम इन विविध शास्त्रों के उदय की कथा जान सकते हैं और स्वयं देख सकते हैं कि यज्ञ की आवश्यकता की पूर्ति के लिये उत्पन्न होने वाले ये शास्त्र किस प्रकार सार्वभौम क्षेत्र में पदार्पण कर अपना विकास सम्पन्न करने लगने लगते हैं।[18]

वैदिक विद्याकुलों द्वारा परवर्ती काल में कर्तव्य, नैतिकता, सदाचार और वर्णाश्रम धर्मों की व्यवस्था के लिए जो साहित्य रचित हुए उनका मूल आधार ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ आर्य संस्कृति के आधार और ज्ञान-विज्ञान के आगार हैं। इनमें अनेकों ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सामग्री अनुशीलन तथा व्यापक प्रचार-प्रसार किये जाने हेतु उपलब्ध हैं। अतएव राष्ट्र की उन्नति तथा अपनी विरासत से भिज्ञ होने के लिए ब्राह्मणों पर अधिकाधिक शोध कार्य किया जाना उचित होगा।

उपर्युक्त प्रस्तुतिकरण के आलोक में यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणों ने मानव जीवन के समष्टि एवं व्यष्टि रूप से सम्बन्धित सभी पहलुओं को प्रभावित किया। आर्य संस्कृति को सबल एवं व्यवहारिक बनाया। ब्राह्मणों ने जो पाया उसे संरक्षित रखा तथा भविष्य के वैचारिक चिन्तन हेतु आधार तैयार किया। अतः सांस्कृतिक रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों की महत्ता स्वतः सिद्ध है।

संदर्भ

[1]*शपपथ ब्राह्मण,* 7.1.1.5,
[2]वैदिक साहित्य और संस्कृति -बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ संख्या 243
[3]संस्कृति के चार अध्याय -दिनकर, पृष्ठ संख्या 97, लोक भारती इला0
[4]*शतपथ,* 10.2.2.5 एवं *काठक संहिता,* 21.4.
[5]भारतीय संस्कृति और कला -वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ संख्या 109 (उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ)
[6]हिन्दू धर्म कोश -डॉ0 राजबली पाण्डेय, पृष्ठ संख्या 382 (उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ)
[7]*शतपथ,* 3.1.3.18 अयेध्यो वै पुरुषो यदनूतं वदति।'
[8]*ताण्डय ब्रा0,* 8.6.13 'एतद्वाचश्छिद्रं यदनुतम।'
[9]*शतपथ,* 4.3.4.3 एष वै प्रत्यक्ष यज्ञों यत्प्रजापतिः'
[10]*ऐतरेय ब्रा0,* 1.4.3.
[11]*ऐतरेय ब्रा0,* 33.3.15.
[12]*शतपथ,* 1.2.16.
[13]*शतपथ,* 14.1.3.29
[14]*तैत्तिरीय ब्रा0,* 3.11.8.
[15]*तैत्तिरीय ब्रा0,* 2.2.9.
[16]*ऐतरेय ब्रा0,* 2.3.8.
[17]*शतपथ,* 5.2.4.10.
[18]वैदिक साहित्य एवं संस्कृति -बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ संख्या 255

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,48-49
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 फरवरी 2016

संस्कृत काव्यशास्त्र में रसात्मवाद

डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संस्कृत काव्यशास्त्र में रसात्मवाद* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सूर्यकान्त त्रिपाठी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

संस्कृत काव्यशास्त्र में रसात्मवाद का अर्थ काव्य के आत्मभूत तत्त्वरस से सम्बद्ध आचार्यों के अनेक विचारों से है। काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में आचार्यों में परस्पर मत वैभम्य है। प्रथमतः काव्य के दो भेद हैं- दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। दृश्यकाव्य में रस की काव्यात्मकता के संदर्भ में आचार्य सहमत दिखते हैं। श्रव्यकाव्य में आत्मा को लेकर विवादास्पद स्थिति है।

पञ्चभूत से निर्मित काया में आत्मा को आनन्दमय तथा चिन्मय कहा गया है। तैत्तरीयोपनिषद् में कहा गया है- *रसो वै रसः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।*[1] अर्थात् आत्मा रसरूप है। जब मनुष्य इसको प्राप्त कर लेता है तो आनन्दमय हो जाता है। काव्य में भी रस के स्वरूप को उसी प्रकार व्याख्यात किया गया है।

आचार्य भरत ने स्वकीय ग्रंथ नाट्यशास्त्र में रस का नाट्य की दृष्टि से विवेचन किया है। बाद के आचार्यों ने भरतमुनि के प्रतिपादन का ही अनुसरण किया है। अग्निपुराण में रस के संदर्भ में कहा गया है- *न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः। भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यते च रसा इति। वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।।*[2]

आचार्य आनन्दवर्द्धन ने *काव्यस्यात्मा ध्वनिः* कहकर काव्य की आत्मा ध्वनि को स्वीकार करते है। ध्वनि के भेदत्रय में रसध्वनि को प्रधानरूप स्वीकार करते हैं। न केवल ध्वनि को अपितु रसध्वनि को भी वे काव्यात्मा स्वीकार करते हैं- *रसभाव तदाभास भावशान्त्यादिरक्रमः। हवनेरात्माङ्गिभावेन मासमानो व्यवस्थितः।।*[3]

अभिनव गुप्त पादाचार्य ने भीप्राचीन आचार्यों के मतों को उपस्थापित करते हुये कहा है कि काव्य-रस सदैव व्यंग्य होता है। वह काव्य के ध्वनिरूप व्यापार से अनुभूत होता है, इसलिये इसको रसध्वनि कहा जाता है। *स च काव्य व्यापारैक-गोचरा रसध्वनिरिति। स च रसध्वनेरेवेति स एव मुख्यताया आत्मा।।*

आचार्य भोज ने स्वकीय ग्रंथ शृंङ्गार-प्रकाश तथा सरस्वती कण्ठाभरण में शृंङ्गार रस को ही का सर्वस्व स्वीकार किया है- *रसोऽभिमानोऽहंकारः शृंङ्गार इति गीयते। योऽस्तिस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते।।*

* प्रवाचक [संस्कृत], पंचायत इण्टर कॉलेज परतावल, महराजगंज (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

शृङ्गारी चेत्कविः काव्यं जातं रसमयं जगत्[4]*। स एव चेदाशृंङ्गारी नीरसं सर्वमेव तत्।।*

आचार्य मम्मट ने रस के प्राधान्य को स्वीकार किया है। यह रस रूप अर्थ ही काव्य का अंगी होता है तथा गुण इसके नियत धर्म हैं- *ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादम इवात्मनः। उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।*[5]

पण्डित राज जगन्नाथ ने *अभिनव गुप्त पादाचार्य* का अनुगमन करते हुये उपनिषद् के वाक्य *रसो वै रसः* का उद्धरण देकर, रत्यादि विषयक आवरणविहीन आत्मचैतन्य को रस कहा है। इसको पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य की आत्मा स्वीकार किया है।

इस प्रकार रस की आनन्दात्मकता तथा प्राधान्य के कारण काव्यशास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है।

आधुनिक आचार्यों में अधिकांश आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। प्रो0 राजेन्द्र मिश्र ने आनन्दवर्द्धन का अनुसरण करते हुये व्यंग्यार्थ को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। प्रो0 मिश्र ने अनेक तर्कों के माध्यम से अपने मंतव्य को परिपुष्ट किया है। आधुनिक आचार्यों में प्रो0 रेवा प्रसाद द्विवेदी तथा प्रो0 राधाबल्लभ त्रिपाठी ने अलङ्कार को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। प्रो0 रहस विहारी द्विवेदी ने प्रो0 रेवा प्रसाद द्विवेदी के काव्यात्म-विषयक मन्तव्य की अनेक तर्कों के माध्यम, आलोचना की है।

निष्कर्षतः मैं यह कहना चाहता हूँ कि व्यंग्यार्थ ही काव्य की आत्मा है। यह व्यंग्यार्थ काव्य में रमणी के रूप लावण्य की भांति प्रतीत होता है; तथा सामाजिक उसका अनुभव कर सानन्दित हो उठता है। यही कारण है अधिकांश काव्य-शास्त्रियों ने रस को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]*तैत्तिरियोपनिषद्,* वल्ली-3/7

[2]*अग्निपुराण,* 339/12

[3]*ध्वन्यालोक,* 2/3

[4]*सरस्वतीकण्ठाभरण,* 5/1

[5]*काव्य प्रकाश,* 6/66

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,50-54
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 फरवरी 2016

काव्येषु राजशास्त्रविषयिणी चर्चा

डॉ. अनामिका पाठक*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *काव्येषु राजशास्त्रविषयिणी चर्चा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अनामिका पाठक* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

काव्येषु महाकाव्येषु राजशास्त्रविषयमधिकृत्य यत्र तत्रवर्णन दरीदृश्यते। कविभिः राजधर्मविषयः नैव परित्यक्तः अन्येषु विषयेषु वर्णितेष्वपि। यतोहि राष्ट्रधर्मः राजधर्मः उभयः सहैवावश्यकः। राजधर्मस्याननुपालनेन राष्ट्रधर्मः न पूर्णत्वमायाति अतः कविभिः यत्रापि राज्ञां चर्चा क्रियते तत्र यथावसरं राजविष्यकर्तव्य प्रबोधनाय अवश्यमुद्दिश्यते। यथाच किञ्चिद् कालिदासकृतं रघुवंश-महाकाव्यमवलोकयामः, कालिदासकथनं यत् य आसन प्राचीना भूपतयः तेषां दिनचर्या कथसीदिति- *यथा विधिहुताम्नीनां यथा कामर्चिताताार्थिनाम्। यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।*

प्राक्काले राजपदमलकुर्वाणाः राजानः रास्त्रविधेरनुसारं हवनं कुर्वन्ति स्म, ये च दुष्टान् यथापराधं दण्डयन्ति स्म। ये समये एव कार्यं निर्वाहयन्ति स्म। अत्र राजादिलीपमुदाहरति कविः राजकर्तव्यः निवेदितव्यः - *रेखामात्रमपि क्षुराणादामनोर्वर्त्मनः परम्। न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नोभिवृत्तयः।।*

यथा चतुरसाधिना चालितस्य रथस्य वृत्तयः मार्गान्नं किञ्चित तिर्यग्गच्छन्ति तथैव सुयोग्यशासनेराजदिलीपेनशासिता प्रजा न किञ्चन्मात्रं भगवतां मनूनांनियमानां समुल्लघनं न करोति। *प्रजानामेव भूत्यर्थसताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्त्रगुणमुत्स्त्रष्टुमादतेहि रसं रविः।।*

यथा रविः स्वकिरणेः भूम्याः जलमाकर्ष्य सहस्त्रगुणकृत्वावर्षति तथैव राजा दिलीपः स्वप्रजाभ्याः षष्ठभागरूपेण यद्धनं संगृहणाति स्म तद्धनं प्रजाकल्याणायैवसहस्त्रत्वेनव्यधीकरोति स्म। *सेनापरिच्छेदस्तस्य द्वयमवार्थसाधनम्। शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।*

राजा दिलीपस्य विशालसेना तु केवलमुपकरणं शोभामात्रामासीत्। राजा दिलीपस्यतु प्रयोजनद्वे शास्त्रे आकुण्ठिता शास्त्रा-वगाहिनी बुद्धिः धनुषि मौर्वी चारूढ़ा। *जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः। अगृध्नुराददे साऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत।।*

* संस्कृत प्रवक्ता, माँ खण्डवारी महिला महाविद्यालय, चन्दौली (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

राजादिलीपः सर्वदा निर्भयो भूत्वा स्वरक्षां करोति स्म, अरोग्यवान् भूत्वा धर्मं सेवते स्म अपि च लोभपरित्यज्य धनं संग्रहं करोति स्म तथा महासक्तिं त्यक्तवा सांसारिकसुखमनुभजवति स्म। *ज्ञाने मौनं क्षमाशक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः। गुणागुणानुबन्धि-त्वात्तस्य सप्रसवा इव।।*

अपरेषांसर्वं ज्ञात्वाऽपिमानावलम्बनम शत्रुं प्रति शत्रुत्वेऽपि सति क्षमाधारणम्, दानं दत्वा आत्मश्लाघया अभावः, एवे गुणाः भातृवत्राज्ञा दिलीपेनसहनिवसन्ति स्म अर्थात् ज्ञानादिगुणाः मानादिविद्धगुणैः सह अविरोधे वसन्ति स्म। *प्रजानांविनयाधाना द्रक्षणादपि। सपिता पितरस्तेषां केवलं जन्महेतवः।।*

राजा दिलीपः प्रजायाः पिता एवासीत् अन्ये येमातरपितरस्तासां प्रजानामासन् ते तु केवलं जन्मनः हेतुभूता आसन्। यतोहि राजा दिलीपः प्रजासुनम्रता, सादाचारः, सद्व्यवहारः इत्यादि गुणानांवप्राऽस्ति अतः स एव वस्तुतः पालकत्वात् पिता वर्तते। *स्थित्यै द्रव्यते दण्डयान्परिणेतुः प्रसूयते। अप्यर्थं कर्मौ तस्यास्तां धर्मं एव मनीषिणः।।*

लोकमर्यादायाः रक्षायै अपराधिनाम् अपराधानुकूल दण्डप्रदाता केवलञ्च सन्तानप्राप्यते विवाहाश्रमे गत्वा विद्वान राजादिलीपः आसीत् तस्यराज्ञः अर्थकामावपि धर्मरूपेणवास्ताम्। *दुदाह गां स यज्ञाय सस्याय मथवादिवम्। सपद्विनिमयेनाभा दधतुभुव-वद्वयम्।।*

स राजा दिलीपः यज्ञकरणार्थपृथिवी दुग्धे स्म अर्थात् प्रजाभ्यः करं संगृह्ययजते स्म। तस्यराज्ये इन्द्रः अन्नाय स्वर्गदुग्धे स्म अर्थात्वृष्टि कृत्वा अन्नानि वर्धापयति स्म। एवञ्च इन्द्रः दिलीपश्च परस्परं सम्पदः विपर्यमेन भुवनद्वयं रक्षतः स्म। *न किलानुय युस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः। व्यावृत्ता यतपरस्वभ्यः श्रुतां तस्करता स्थिता।।*

भयहेतो रक्षकस्यराज्ञः दिलीपस्य यज्ञप्रजादिक्क्रम्र न केनचिद्राज्ञा प्रापतु समर्थितम् यताहि तस्यराज्य चौरकर्म इति शब्द केवलं श्रवणगोचर एवासीत्। दिलीप राज्ये न कश्चित् कस्यचन धनापहरणं करोति स्म अतस्तस्य यशयोऽपिन स्तेयत्वमभूतम् *द्वेष्योऽपि संमतःशिष्टस्तस्यार्तस्य औषधम्। त्याज्यो दुष्टः प्रियाऽप्यासीदंगुलीवोरक्षता।।*

शत्रुरपि दिलीपस्य प्रियस्तथैव यथारोगिणः कटुऔषधि। दुष्टश्च मनुष्यः प्रियोऽपि तथैव त्याज्य आसीत्, यथासर्पादंगुलिः। *सन्तानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता। ते धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु विचिक्षिपे।।*

सन्तानप्राप्तिसमये राजा दिलीपः स्वराज्यभारं स्वभुजादवतार्य सचिवेषु निक्षिप्तवान्। तथा पुत्रप्राप्ति अनुष्ठानाय सेवकत्रयं सहैवनीत्वा गौसेवाये प्रस्थितः प्रजापालनकार्य बाधा न भवेदितिविधार्य तेन सेवकत्रय एव नीतः।

इदानी राजा दिलीपस्य पुत्रेण राज्यभारं गृहीत्वाकेन प्रकारेण राज्यः सञ्चालितः, प्रजा न वशीकृता इति सर्वंमग्ने वच्मि यतोहि दिलीपेन रघूश्च कथं प्राक्समये राज्यव्यवस्था सुसंचालिताइत्युक्तवा कालिदासः राजशास्त्रसिद्धान्तं सुदृढ़ीकरोति- *सहिसर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः। आददे नीतिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः।।*

यथा दक्षिणदिशः वायु नातिशीतः नात्युष्णः भवति हरति च सर्वेषांमनस्तथैव राजारघुरपि अपरा धानुसारंप्रदण्डयसर्वस्य लोकस्य मनः जहारः। *नयविद्भर्नवे राज्ञिसदसत्योप्रदर्शितम्। पूर्वंएवाभवत् पक्षसतास्मिननाभवदुत्तरः।।*

राजनीतिशास्त्रज्ञैः रघु समक्षं धर्मयुद्ध दलयुद्ध द्वयोपक्षं प्रस्तुतम् रघुणां केवलं धर्मयुद्धः स्वीकृतः न कूटयुद्धः परन्तु यथा आह्लादकत्वात् चन्द्रः उच्यते, सन्तापत्वात् सूर्यस्य सार्थकत्वम् तथैव प्रजाया अनुरञ्जनत्वात् रघुरपि राजापदमलंकृतवान्। *इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्। आकुमारकथादघातं शलिगोप्यो जगुर्यशः।।*

इदृशां छायासु स्थिताः कृषकाणां स्त्रियः प्रजावर्गस्य रक्षकस्य राजा रघोः शूरतां विरताञ्च (या बाल्यकालादेव प्रसिद्धाऽसीत्) गायन्ति स्म। तथा चैकदा तस्य दिग्विजयमात्रायाः समाचारंस्त्रुत्वा शत्रूणां मनः पराजयकारणात् भयग्रस्तं बभूय। *मरूपृष्ठा न्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः। विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्वाच्चकार सः।।*

दिग्विजयकाले कुशलेन राज्ञा रघूणां मरूप्रदेशः जलपूर्णः कृतः। नद्यः सुप्रतराः स्युरिति बन्धननिर्माणः कृतः अपि विपिनानि-चयाति धनानि आसन् तेषां वृक्षान् विकृत्य प्रकाशयुक्तानि कृतानि। *स विश्वजितमाजहे यज्ञंसर्वस्वदक्षिणाम्। आदानंहिविसर्गाय सतां वारिमुचामिव।।*

दिग्विजयानन्तरं रघुः विश्वजित्यज्ञं चकार यस्मिन् समस्तं धनं दक्षिणायां दीयते। यथा मेघः समुद्रात् जलमाहृत्य जनता लाभायवृष्टिं करोति तथैव सज्जनानामपिद्रव्यसञ्चयंपरोपकाराय भवति इतिविचार्य रघुः यदधनं दिग्विजये जितवान् तत्सर्व विश्वजित यागे वितीर्णवान्। एष आदर्शभूत सिद्धान्त, कौत्स अपि रघु प्रशंस्य वक्ति यदि भावानिदानी धनरहितो भूत्वातथैव

शोभते यथा अमृतपीतस्य क्षीणस्य चन्द्रस्यदौर्बलत्वं शुक्लपक्ष वृद्धयपेक्षया श्लाध्यं भवति। किमाश्चर्यं यदि भवत्सदृशानां कृते पृथ्वी मनोनुकूलं वस्तूत्पादयति आश्चर्यन्त्वेतत् भवतां स्वग्र अपि दुग्धः।

अथ रघोः पुत्रः अजोऽपि पितृसदृशंराज्यभारंवहति तथैव यथा गोवत्सः दम्य सदृशं धुर्येन बिभर्ति गुर्वी धुरं यो भुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं विभत्ति।

अजेनपितुः राज्यं नवभोगेच्छया स्वीकृतम् -प्रत्युतपितराज्ञया स्वीकृतम् पितुराज्ञेति न भागे तृणयां। अजेन न केवलं राज्यलक्ष्मी सम्प्राप्ता अपितुपितुः सर्वान् गुणानपि प्राप्तवान् सः स हितस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणापि। *अहमेव मतोमहीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्विचिन्तयत्। उद्धरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्यविभावाक्वचित्।।*

अज राज्ञः एष स्वभाव आसीत् यत् सः सर्वाः प्रजाः समदृष्टया पश्यति अतः सर्वे मन्यन्ते स्म यत् अतः मामेवाधिकं सिन्ध्यतीतिउच्यतेऽन पद्येनअहमेव मतः महीपतेः इति सर्वप्रकृतिषु अचिन्तयत्। यताहि सहस्रासु नदीषु समानव्यवहारकः समुद्र इव अजस्यकमपि प्रतिरिस्कारस्यव्यवहार न आसीत्। *न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीहवि। स पुरस्कृतमध्ययक्रमो नमयामानानुद्धरन्।।*

राजा अजः नातिकठोरः नातिमृदुर्बभूव। किन्तु मध्य मार्गावलम्बी अजः स्वस्वभावेन शत्रुराज्ञअपि सिंहासना दानकर्ताय एवनम्रीकृतवान यथा मध्यमवेगेन प्रवहमानः वायुः वृक्षान् पिनैव उत्पाद्य नम्रीकरोति। *गुणवत्सुतरोपितकियपरिणामे हि दिलीप वंशजाः। पदवीतरूवल्क वाससा प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे।।*

यदा राजा रघुः पश्यति यन्मम पुत्रः विकारहीनभावेनप्रजासु प्रतिष्ठितस्तदा निस्पृहो भूत्वा रघुः वृद्धावस्थायांराज्यलक्ष्मी पुत्र समर्थ तरूवल्कवासः सन् अरण्यं जगाम अर्थात् प्राक्काले राजानः यथाकालं निर्लोभिनः भूत्वा निस्पृहिणः भूत्वा यतीनामनुसरण-कृर्वन्ति स्म।

अनन्तरञ्च रघुपुत्रः दशरथः समजायते। तेनापि पितृवत् राज्यव्यवस्थां सञ्चालयामास- *जनपदेन पदः पदमादधावभिवः कुतः एवसपत्नगः। क्षितिर भूत्फलवत्यजनन्दने शमरणेऽभरतेजसि पार्थिवे।।*

देवतासदृशः तेजस्वी शान्तिपरायणः दशरथः यदा राज्यं पालितवान् तदा राज्य रोगस्य नितान्तभावो बभूव कव शात्रोरा-क्रमणन्तहि? पृथ्वी च धनधान्ये पूर्णाऽभवत्।

अथ दशरथपुत्र रामो बभूव इदानीरामराज्यं वर्णयामि। कथञ्च रामस्य राज्यव्यवस्थाऽसीदिति- *तेनार्थवॅल्लोभ पराङ्मुचरेल तेन ध्नता विघ्नमयं क्रियावान्। तेनास लोकः पितृमन्विनेत्रातेनैव शोकापदुनेनेपुत्री।।*

लोभेन सर्वथा विमुक्तस्य रामस्य प्रजा धनवती आसीत्।

रामराज्ये विघ्नभयाभावेन प्रजायज्ञादिक्रियावत्यासीत्। रामः सवेषां दुखानां निवारण आसीत् अतः प्रजा आत्मानं पुत्र इव मन्यते स्म।

गुप्तचरमाध्यमेन प्रजासु निजापयशं रावणगृहे अषितायाः सीतायाः पुनर्ग्रहणं विषयकं श्रुत्वा कीर्ति विपर्ययेण अभ्याहतः रामः लोकानुरञ्जनाय सीतां परित्यजात पृथिवीमेव केवलां सेवते न काचिदन्यां पार्थिवशरीरयुवा नारीम- *कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम्। बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्।।*

इक्ष्वाकुवंशेन कस्यचित् काल मृत्युर्भवति स्म इत्यत्र प्रमाणम् न तृकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकुपदमस्पृशत। *स धर्मस्थसरवः शश्वदर्थिनां स्वयं। ददर्श संशयच्छद्यान्व्यवहारान्तन्द्रितः।।*

धार्मिकाणां मित्रः राजा रामः निर्णयविषयकं चिन्तनं स्वयं करोति अतिथिवादिनां प्रतिवादिनाञ्च स्वयमेव न्याच्यं कुरूते स्म। न्यायाधीशानां ऊपरी न त्यजति स्म। *कार्तयकवला नीतिशौर्य श्वापदचेष्टितम्। अतः सिद्धिसमेताभ्यामुमाभ्यामन्वियेष यः।।*

कूटनीत्या विहितः कार्यः कायरता एव केवलञ्च शूरताविहितः कार्यः पशूनां स्वभावः। अतः राजा अतिथिना राजनीत्या तथा पराक्रमेणसमयानुसारं विजयप्राप्ति अन्वेषणं कृतम् विजयञ्च प्राप्तवान।

राजा अतिथि न कदाचित् अपथेन प्रवृतः। यदि च दैववात् प्रजायामसन्तोषः स्यात्नार्हि सद्य एव तमयाकर्तुद्यतो भवति स्म, अपि च प्रयासं करोति स्म नैव असन्तोषः उत्पन्नः स्यात् यस्य प्रतकारकरणीयं स्यात्। यथा उपसमुद्रं गत्वामेघासामर्थ्यमनुसारं जलंप्राप्नुवन्ति तथैव अतिथिराजनं समुपागत्य निर्धना अपि तथाभूताः धनप्राप्तरः भवन्ति स्म यत्ते स्वयं दातारः भवन्ति स्म उदधेरिव जीमूता प्रापुर्दातृत्वमर्थिः।

एवञ्च राजापरम्परामाध्यमेन राज्ञामचारविचारेण व्यवहारेण प्रजां प्रति वात्सल्यभावेन, राजाराज्यव्यवस्थासुसञ्चालनमाध्यमेन कालिदासकविना एतदवबोधितं यत् यथाप्राचीनाः राजानः वर्त्तेरन् सा एव राज्यव्यवस्था भवितव्या, तथेव चाद्यादि वर्तितव्यम् एषाएव राजविषयता, राजव्यवस्था च।

किरातार्जुनीये च भारविना द्वितीये सर्गेराजविषयकगम्भीराचर्चादृश्यते अपि च प्रथमसर्गे दुर्योधनः प्रजां वशीकर्तु केन प्रकारेण राज्यव्यवस्था सुष्ठुतया निर्वाहयतीति वर्णयता कविना राजविषयक गुणाः प्रोक्तास तथाहि षडवर्गविजयीनीत्यनुसरणशीलो दुर्योधनो नक्तन्दिवं विभज्य नीत्या पौरूषंकरोति।

निरभिमानो दुर्योधनो भृत्येषु मित्रभावं, मित्रेषु बन्धुभावं, बन्धुषु च स्वामिभाव लोकान् दर्शयते। समविभक्त धर्मार्थ कामसेवकस्य दुर्योधनस्य ते गुणानुरागात्संख्य प्राप्तवन्त इन परस्परं न आधान्ते, अपि तुवर्धनन्त एवं। वशी दुर्योधनो धनलोभात् क्रोधात् वा न दण्डधारी। किन्तु राज्ञो ममाय धर्मः इति बुद्धया गुरूशिक्षया शत्रौ पुत्रो वा दण्डयति। कीर्तिमतादुर्योधनेन सर्वतो रक्षितो मही भूरी वसूत्पादयति। कीर्तिमन्तः तेजस्विन मानिनो धनादृताधनुर्भृतो राजानोदुर्योधनस्य प्राणैः प्रियं कर्तुमिच्छन्ति। अशोषित क्रियो दुर्योधनोऽवञ्चकरद्वाराऽन्यनृपकार्ये वेत्ति। अस्याद्योगस्तु फलैर्ज्ञायते नान्यथा। अक्रुद्धस्यापि दुयोधनस्य अनुशासनं गुणानुरागिणोराजानः शिरसावहन्ति। यौवराज्ये दुशासनं नियुज्य दुर्योधनः मुखैषु हन्तिं पीणयति। यथा उच्चारित मंत्रश्रवणा-दुखो व्यथते तथा जनोदीरितभवन्नामाकर्णनादयं व्यथते।

अपि च द्रौपदी अपि युधिष्ठिरं राजनीतियोग्यं वचनं ब्रवीति हे राजन! येमायिषु मायां न कुर्वन्ति ते पराभवं भजन्ते। तीक्ष्णबाणा अनावृत्तशरीरान् ध्नित। हे राजन! अग्निः शुष्कं शमीवृक्षमिव निन्दितमार्गस्थं त्वा मन्युः कुतो न ज्वलति। सकल मन्योरापद्विनाशकस्य पुंसः सर्वे च प्राणिनो वश्या भवन्ति, स्नेहिनो निष्कोपात् पुंसोन कस्यचिदभयं भवति। हे राजन! विजयेच्छवोनृपाः शत्रुषु सव्याजं सन्धिभेदका भवन्ति। यथा प्रातरूदीयमानं सूर्यं लक्ष्मीः अभ्येति, तथा त्वमपि रिपुविनाशोत्तरं लक्ष्मीः भूयोऽभ्येतु। निशम्य सिद्धि द्विषतामपाकृतीस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा। *नृपस्य मन्यु व्यव्यसायदायिनीरूद्राजहारद्रुपदात्मजा गिरः। अवन्धकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्तिवश्याः स्वयमेव देहिनः। अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुनान जातहार्देन विद्विषदरः।।*

अथ च द्वितीये सर्गेयुधिष्ठिरं प्रतिभीमः कथयति ज्ञानचक्षुषा सम्यगालोच्य द्रोपद्युक्तवचनं बृहस्पतेरप्याश्चर्यजनकम्। यथाकेनचित् कृताल्पविशेष परीक्षणे गभीरेऽपि जले प्रवेष्टारो बहवः सन्ति परीक्षाकस्तु विरलस्तथीतिशास्त्रेऽपि सति वक्तरि बाद्धारोबहवोक्त्तातु विरल एव। यथाल्पमात्रे श्रेष्ठभेषजे बहुगुणास्तथा द्रौपदीवचने बहुगुणा दृश्यन्ते।

हे राजन! वर्धनशीलं शत्रुकोषदण्डजं तेजोऽनुत्सा हेनोपेक्षमाणस्य पुंसो लोकापवादभयादिव सम्पत्तयो द्रुत नश्यन्ति। यथोदितं द्वितीयाचन्द्रं जनाः प्रणमन्तितथावृद्धयर्थमुत्थितं क्षीणामपि धाम दधुतं नृपप्रजाः प्रणमन्ति। यथा कृष्यादिप्रवृत्तो लोकोदैवमनुसरति तथा नीतिरपि कर्तव्ये क्षिप्रकारित्वमनुसरति। उच्चैः पदमारोदुतिच्छोः पुंस आत्मपौरूषमेवावलम्बम्। पौरूषं विपदोध्नन्ति। विपद्रुपतमयतिः। त्यजति, निर्यातः पुमान् लघुर्भवति, स च नृपसम्पदास्पदं न भवति। अभ्युदयान्तरायभूतो निरूद्योगो नाश्ररूणीयः, यतः पौरूषसाध्यसम्पदां नहि विषादेनसहावस्थानं भवति- *विशमौपयिकं गरीयसी फलनिष्पत्तिमदूपितायमित्। विगणय्य नयन्तिपौरूषं विजितक्रोधरया विजिविषत्।।*

अपि च सिंह स्वयं हतैः मदवर्षिभिः गजैरेवजीवति, नान्यहतैः तथा प्रभावेण जगत्तिरस्कुर्वन् महानपि नान्यतो भूतिमिच्छति। इत्युपदशैः भीमः युधिष्ठिरं राज्योग्यकार्यप्रेरच्य तमुत्साहयति। युधिष्ठिरश्च उग्रस्वभान्वितं भीष्मं शान्तयति उपदिशति राजनीतिविषयकं शिष्टमन्यजनम्त्युक्तिः शास्त्रसिद्धायुक्तियुक्ता। परकार्य सहसा न विधेयम्। अविवेकः परमदुखमुपादयति, यत् सम्पदोविवेकिनम् अनुसरति- *सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदांपदम्। वृण्वते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदाः।।*

विवेकिनमेव क्रियासाफल्यनेतेरेषां क्रियासाफल्यं भवति शुचि श्रुतं वपुर्भुषयति, प्रशमञ्च तदलंकरणम् सचपराक्रमयुक्तः साधुः। पराक्रमञ्च नीत्यनुसरणशीलः साधुः। यथादोषोऽर्थदर्शनं कुरूते। क्रोधहीनो जिगीषवः फलसिद्धि विचार्यपौरूषं कुर्वन्ति। उदयाभि-लाषीं बुद्धया क्रोधमपहरेत। सूर्योऽपि निशातम् विनाशयेउदयते। सूर्यं इवयोनृपा यथाऽवसरंमार्दवतैक्ष्ण्ये धारयतित स सकल-लोकधिष्ठाता भवति। जितेन्द्रियाणमेवाश्रियोवश्या भवन्ति। शास्त्रध्ययनं कृत्वाऽपियेका मादिशत्रून न दूरीकुर्वन्ति ते श्रियश्चापल्य-दोषमुत्पादयति। अक्षमा भवन्तः नीतिसिद्धे पृथक् न कर्तुमर्हति। शान्तितुलयमन्यन्साधनं लोके नास्ति। *उपकारकमायते भृशं प्रसवः कर्मफलस्य भूरिणः। अनपायि निर्बहणं द्विषन तितिक्षासममस्ति साधनम्।।*

विभूतयोमानिनां मद वर्धयन्ति। अभिमानशैली नृपो मूढ़ो भवति, मूढ़स्तु नृवादियुज्ज्यते, नृपहीनञ्च विरागहेतुर्भवति। यथा वायुप्रेरितः जर्जरितमो महानपिवृक्ष उन्मूलयितुं शक्यस्तथा क्षमावता तादृशः शत्रुरून्मूलयितुं शक्यः। यथापर्वतोत्थः अग्निरखिलं भूधरं दहति तथा सचिवादिविराजो अनलो नृपं दहति। मतिमान् पुरूषोदुर्विनीतस्य शत्रोरून्नतिमुपेक्षते तादृशः शत्रुः क्वचिच्छिद्रे जेतु शक्योभवति, यतो दुर्विनीतानासम्पत्तयोः दुखावसानं भवन्ति। यथानदीवेगः शिथिलं कुलं हरति तथा मित्रादिविरूद्धं च नृपसमुहशत्रुः हरति।

इत्याद्युपदेशैः परस्परं च वार्तालोकन भीम युधिष्ठिर द्रौपद्यादीनां मध्येराजविषयिनी चर्चा भवति। नैषधमहाकाव्येऽपि राज नलः केन प्रकारेणस्वराज्यं सञ्चालयति स्म। कथमासीत् तदा राज्ये सौष्ठ्यमिति वर्णयति हर्षकविः -*अयं दरिद्रां भवितेति वैधसीं/ लिपि ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्। मृष न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः/ प्रणीयदारिद्रयदरिद्रता नृपः।।*

पद्येऽस्मिन नृपस्य नलस्य दानवीरतायावर्णनं विद्यते यत्सराजानृपः ब्राह्मणा नियुक्तः अयं निर्धनं इति ब्रह्मवाक्यमपि मिथ्यां करोति स्म अत्यधिक दानकर्मणा। तस्य राज्ये न कश्चित याचकः आसीत्। एवञ्च नलेन याचकानांदरिद्रतापि दरिद्रीकृत्वा दरिद्रता न तेषां व्यर्थीकृता। अभिलाषायधिकं दीयते स्म तेन। *अजस्त्रमभ्या समुपेयुषा सम/ दधो पटीयान् समयं नयन्नयम्। दिनेश्वरश्रीरूदयं दिने दिने।।*

बुद्धिमान, सूर्यसम तेजस्वी राजा नलः निरन्तरं अभ्यास वध्भिः कविभिः पण्डितैश्च सह हर्षपूर्वकं समयंयापमन् समृद्धिं तथैव लभते स्म यथा सततं समीपस्थ शुक्र बुधनामकेन ग्रह्द्वयेन सह समयं यापनयन् सूर्यः उदयं प्राप्नोति स्म। *प्रतीतभूमपैरिव किं ततो भिया-/ विरूद्धधर्मैरपि भेत्तृतोच्झिता/ अभित्रजिन्मित्र जिदौजसा स। यद्विचारदृत्वादृगप्यवर्त्तते।।*

विरोधिराजवत् परस्परं विरूद्धस्वभावेन नलभयेन भेदभावः त्यक्तमासीत्। *आनन्दजाश्रुभिरनुस्त्रियमाण मार्गान/ प्राकशोकनिर्गमित नेत्रपथः प्रवाहान्। चक्रे चक्रनिभयऽक्रमेणच्छलेन। नीराजानां जनयतां निजबान्धवानान्।।*

स्वसम्बन्धिनः कष्टेनकष्टानुभवनम् सुखेन सुखानुभवन् एतदेवप्राणिमात्रस्यस्वभावः भवति परंनल नृपः कस्यचिदपि कष्टेन कष्ट-मनुभूयते स्म। तदैव हंससहचराणां कष्टे सति नलेन ते त्यज्यन्ते।

राजा नल अमित्रजित् (शत्रूणां जेता) भवन्नीय मित्रजित (मित्रजेता) विरोधपरिहारपक्षे स्वप्रतापेनसूर्यञ्चताऽसीत् तथा चारदृक गुप्तचरैः कार्यकलापद्रष्टासन्नपि विचारदृक विचारेणापि द्रष्टा आसीत्।

एवञ्च काव्यस्य अध्ययेन एतज्ज्ञायते यत् कविभिः काव्येषुकेनचिन्माध्यमेन, ऐतिध्यमाध्यमेन, राज्ञः वर्णनमाध्यमेन राजनीतिविषयिकां चर्चामश्वयं करोति कथञ्च राज्यव्यवस्था सञ्चालनीय राजः स्वभावः कथं भवेत्। प्रजां प्रति राजा कथं व्यवहरेत्।

प्रजा अपिराजानं प्रति कीदृक व्यवहरेत् केन प्रकारेण कथा नीत्यया राज्ञः यत् प्रजासुप्रसरेत् सर्वा प्रजा राज्ञः वशे स्यात् इत्यादिकं सर्वमुपदेशं वयमन्न काव्ये द्रष्टुं पश्यामः।

संदर्भ ग्रन्थ

महाकवि भारवि- *किरातार्जुनीयंमहाकाव्यम्*
कालिदास- *रघुवंशमहाकाव्यम्*
माघ- *शिशुपालबधम्*
श्रीहर्ष- *नैषधीयचरितम्*
हिजेन्द्रनाथ- *संस्कृतसाहित्यविमर्शः*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,55-59
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 फरवरी 2016

बैंडिट क्वीन : चौराहे पर खड़ा मानवाधिकार[1]

आशुतोष वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *बैंडिट क्वीन : चौराहे पर खड़ा मानवाधिकार*[1] शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *आशुतोष वर्मा* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

मैं फूलन देवी हूँ भैन#$.[2]

फूलन देवी के जीवन पर बनाई गई शेखर कपूर की फिल्म 'बैंडिट क्वीन' (1994) के शुरू होने से पहले खाली पर्दे पर नाराज फूलन गाली के साथ अपना परिचय देती है। फिल्म के संसार किए जाने से पहले अंग्रेजी में एक वाक्य उभरा था जो 'ढोल-गंवार-शुद्र-पशु-नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' का अनुवाद था। फिल्म के सेंसर किए गए संस्करण में इसे बदल दिया गया है। अब पहले दृश्य में इससे पहले कि दर्शक पर्दे की फूलन से कोई सम्बन्ध स्थापित कर पाए, यह गाली से लैस संवाद दर्शक के अन्दर भरे बारूद में चिंगारी का काम करता है और इस दृश्य से ही दर्शक के दिमाग को पहला झटका लगता है। इस दृश्य से बखूबी बचा जा सकता है। कुछ शोहदे नवयुवकों के लिए हंसने का मसाला यहीं से शुरू हो जाता है, क्योंकि हिन्दी फिल्मों के सामान्य दर्शक को पिछले पचास वर्षों के संस्कार ने यही सिखाया है कि हिन्दी फिल्म को देखते समय अपने दिमाग को इस्तेमाल करने की कतई जरूरत नहीं है और शेखर कपूर की यह फिल्म आपसे सिर्फ आँखों की नहीं, आँखों के जरिए दिल और दिमाग तक पहुँचने वाले रास्ते की माँग भी करती है। इसलिए फिल्म के रिलीज होने के साथ-साथ शुरू हुआ है आरोपों-प्रत्यारोपों, जुलूसों-मोर्चों, बहसों ओर विरोधों का एक अनवरत सिलसिला।

फिल्म की पटकथा पूरी तरह एक अव्यवसायिक कला-फिल्म की पटकथा है। शुरू के लगभग आधे घंटे में वह एक वृत्तचित्र होने का आभास देती है, फिल्म के पहले दृश्य में एक बड़ी सी नाव में गाँव के बड़े-बूढ़े बच्चे आ रहे हैं। नाव धीरे- धीरे किनारे आने लगती है। फूलन का मल्लाह जाति का होना यहाँ स्थापित होता है। फूलन चलते-चलते अपनी सहेली से बात करती है। हर दूसरे वाक्य में मा-बहन की गालियाँ चस्पा हैं। उसकी सहेलियाँ गाली का मतलब पूँछती हैं। गालियों का मतलब ग्यारह साल की बच्ची फूलन को नहीं मालूम, पर मतलब 'अच्छे ही होयेंगे' क्योंकि उसने गाँव में सभी को, बाबा को भी इसी तरह बातें करते सुना है।

* शोध छात्र, मा. च. रा. प. स. वि. भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

यहाँ से दर्शकों की ग्यारह साल की फूलन से पहचान होती है। उसके माँ-बाप आपस की थोड़ी तकरार के बाद फूलन की शादी उससे तीन गुनी उम्र के पुत्तीलाल से एक अदद पुरानी साइकिल और एक गाय के बदले कर देते हैं। हिन्दुस्तान के पिछड़े हुए गाँवों का यह एक आम रिवाज है, जहाँ ग्यारह-बारह साल की लड़कियों के बाल-विवाह उनसे दोगुनी उम्र के आदमी के साथ कर दी जाती है। शादी के बाद उसे पति के साथ अकेला छोड़ दिया जाता है। स्थिति से पूरी तरह अनजान फूलन असमंजस में बैठी है, पति के बलिष्ठ हाथों का लिजलिजा स्पर्श और एकालाप 'अभी कच्ची है। कब हरिआयेगी तू[3] सांकेतिक रूप में पति का उस ग्यारह वर्षीय बच्ची के साथ बलात्कार दिखाया गया है। दीवार से सटी बैठी सहमी-सी फूलन और उसके ऊँचे लम्बे पति का कानूनी बलात्कार का हक देती है। ये औरतें पूरी तरह निलिप्त, तटस्थ, संवेदनशून्य चेहरा लिए कनखियों से भीतर के बलात्कार का जायजा ले रही है। इस दृश्य को देखना एक बेहद तकलीफदेह एवं महिला मानवाधिकार के अनुभव से गुजरना है।

सुबह उठकर उसे आँगन बुहारने के लिए झाड़ू और कुँए से पानी भरकर लाने के लिए घड़ा थमा दिया जाता है। फूलन दर्द से कराहती हुई कहती है- वह नहीं जायेगी। इस पर पति का धमकी भरा स्वर- 'जायेगी क्यों नहीं तुझे लाया किसलिए, बकरियाँ तू नहीं चरायेगी तो क्या मैं चराने जाऊँगा?[4] फिर ससुराल वालों का भी उपेक्षापूर्ण रवैया। फूलन उस माहौल से छूट भागती है।

फिर वही हिन्दुस्तानी औरत की शाश्वत स्थिति ससुराल से भागकर आई लड़की को कहीं आसरा नहीं मिलता। माँ-बाप के पास तो खासतौर पर नहीं, क्योंकि शादीशुदा बेटी उनके लिए शर्म है, कलंक है। गाँव के आवारा लड़के उसे छेड़ते हैं, उस पर फब्तियाँ कसते हैं। गाँव के सरपंच के बेटे को भी जब वह तरजीह नहीं देती, तो उसे गाँव की पंचायत में ला खड़ा किया जाता है, जहाँ जाहिर है, उसके खिलाफ फैसला होता है। उसके बाप के सामने उस पर झूठे इल्जाम लगाकर उसे गाँव से खदेड़ दिया जाता है। फूलन के सामने अब सारे रास्ते बंद हैं। वह अपने चचेरे भाई मयादीन के पास जाती है, जहाँ वह डाकुओं के हाथ पड़ जाती है। यहाँ एक महिला के खिलाफ मानवाधिकार का लगातार उल्लंघन देखा गया है।

इसके बाद शुरू होता है यातनाओं का लम्बा प्रकरण। डाकुओं के गिरोह में बाबू गुजर द्वारा किया गया बलात्कार खौफनाक और दिल दहला देने वाला है। आए दिन हम गाँव की बेसहारा दलित औरतों पर बलात्कार की खबरें अखबारों में पढ़ते हैं, पर उन्हें इतने दहला देने वाले खुले रूप में पर्दे पर देखना रोंगटे खड़े कर देता है। इस दृश्य को देखकर प्रसिद्ध स्वीडिश फिल्मकार इंगमार बर्गमैन की फिल्म 'द वर्जिन स्प्रिंग' (1960) का दृश्य आना स्वाभाविक है जिसमें चौदह साल की एक बेहद कोमल, मासूम, खुबसूरत लड़की पर चार डाकुओं का निर्मम बलात्कार दिखाया गया है। 'द वर्जिन स्प्रिंग' (1960) की नायिका को हम नहीं जानते, फिर भी एक लम्बे अरसे तक वह फिल्म दिमाग पर हावी रहती है। फूलन देवी को हम जानते हैं। हमारा उच्चवर्णी मन इस दृश्य पर उसे सहानुभूति देने से इंकार करता है। फूलन डकैत रही है, वह हमारी सहानुभूति की पात्र कैसे हो सकती है? हम उसकी बाद की जिन्दगी को जानते और उसे मानसिक रूप से इस दृश्य पर सुपर इंपोज करते हैं और संवेदनहीन हो जाते हैं। हम उसकी बाद की जिन्दगी के कारण तटस्थ होकर यह दृश्य नहीं देख पाते। हमें लगता है यह बलात्कार एक डकैत औरत पर होता हुआ दिखाया जा रहा है। हम भूल जाते हैं कि उस समय वह डकैत नहीं थी, वह गाँव की उन हजारों मासूम औरतों जैसी ही, जिन्हें ऊँची जाति के लोग हमेशा अपने हाथों का खिलौना समझते रहे हैं।

फूलन का गुनाह था गरीब होना, छोटी जाति का होना और उससे भी बढ़कर औरत होना। इन तीन वजहों से उस पर जुल्म होता रहे। वक्त के साथ ये जुल्म और बढ़ते गए, क्योंकि उसने गरीब और छोटी जाति का होने पर भी इन जुल्मों का विरोध करने की जुर्रत की। फूलन के कारनामे कानून की नजर में भले ही अपराध हों, लेकिन उसके द्वारा भोगे गए उत्पीड़न और अन्याय को देखा जाए तो यह तर्कसंगत है कि उसके पास हथियार उठाने के अलावा कोई रास्ता नहीं था, जुल्म जब अपनी हदें पार कर देता है तो इन्सान भी अपनी हदें पार करने पर मजबूर हो जाता है। इन्हीं बातों के मद्देनजर सुप्रीम कोर्ट ने उसे आजाद करने का फैसला किया और जनता ने उसे वोट देकर सांसद बनने का।[5]

फिल्म की नायिका निम्न जाति की नाबालिग लड़की है। स्कूल जाने की उम्र में उसका ब्याह अपने से तिगुने उम्र के पुरुष के साथ कर दिया जाता है। पहली रात को ही उसका पति उसके साथ बलात्कार करता है। पति के यौन शोषण से घबराकर वह घर से भाग जाती है। एक मुसीबत से बचने के लिए घर से भागी फूलन के जीवन में मुसीबतों का कभी न रुकने वाला

सिलसिला शुरू हो जाता है। अपने साथ हुए अन्याय की पुलिस में रिपोर्ट लिखाने जाती है, वहाँ भी उसके साथ सामूहिक बलात्कार होता है। बहमई में भी तीन दिन और तीन रात लगातार उसके साथ बलात्कार होता है। यही नहीं उसे नग्न अवस्था में कुँए से पानी लाने को मजबूर किया जाता है। फूलन डाकुओं के गिरोह में शामिल हो जाती है। धीरे-धीरे उत्तर भारत की चंबल घाटी की सबसे प्रसिद्ध डकैत बन जाती है। उसकी गतिविधियों को रोकने के लिए सरकार को सेना की मदद लेनी पड़ती है।[6]

अपने अश्लील संवादों, नग्न दृश्यों और अभद्र चरित्र चित्रण के कारण बैंडिट क्वीन काफी विवादास्पद रही। सेंसर बोर्ड ने इसे प्रमाण पत्र देने से इंकार कर दिया। फिल्म के प्रदर्शन के लिए शेखर कपूर ने सुप्रीम कोर्ट तक लड़ाई लड़ी। फूलन के बहाने दर्शकों ने परदे पर वह सब देखा, जो इससे पहले देखना तो दूर, देखने की कल्पना भी उन्होंने नहीं की थी। फिल्म में परोसी गई अश्लीलता और अभद्रता को देखते हुए किसी हद तक इसका विरोध उचित था। लेकिन हमेशा की तरह इस बार भी हमने विवादों में तो दिलचस्पी ली, लेकिन उसके पीछे से झांकते सवालों को नजरअंदाज कर दिया। समाज की जो सच्चाइयाँ हम परदे पर नहीं देख सकते, उन्हें समाज में होते देख विरोध क्यों नहीं करते? जब फूलन को नंगा कर कुँए से पानी लाने को मजबूर किया जा रहा था, जब लगातार 72 घण्टे तक उसके साथ बलात्कार हुआ, तब क्या कानून व्यवस्था सम्भालने वाले नपुंसक हो गए थे? औरतों को ही क्यों नैतिकता के पाठ पढ़ाए जाते हैं, पुरुषों को उनकी हवस को काबू में रखने की बात क्यों नहीं सिखाई जाती?[7]

शेखर कपूर की राय में फिल्म पूरी तरह एक दलित औरत के दस्यु बनने की प्रक्रिया की एक प्रमाणिक और सहानुभूतिपूर्ण कहानी है तथा फिल्म का हर एक दृश्य उसके प्रति फिल्मकार की सहानुभूति को रेखांकित करता है। उनके इस वक्तव्य में यह दृश्य कहाँ और कैसे आवश्यक सिद्ध होता है। इसे निर्देशक या लेखक ही बेहतर बता सकते हैं। फिल्म रिलीज होने से पहले फूलन की माँग पर इस दृश्य को काट दिया गया था।

सबसे ज्यादा अफसोस और हैरत की बात यह है कि कुछ महिलाएँ 'अंदाज' (2003) या 'रंगीला' (1995) जैसी फिल्मों के मापदण्ड से ही इस फिल्म को नापते हुए विरोध का स्वर बुलंद करती हैं। अग्निशिखा मंच की सदस्याओं को इस दृश्य से विशेष रूप से आपत्ति है। इस मंच की अध्यक्षा अल्का पाण्डे का कहना था- 'आप बताइये किसी औरत को इस तरह कुँए से पानी भरकर लाने को कहा जाए तो क्या वह सीधी परेड करती हुई चल पायेगी? वह तो झुककर रेंगने लगेगी। उससे चला ही नहीं जायेगा। उसके हाथ में पानी भरने के लिए घड़ा है। क्या वह उसे अपने अंगों को ढकने का प्रयास नहीं करेगी? शेखर कपूर ने सिर्फ नंगापन दिखाने के लिए यह दृश्य लिया है।'[8]

इस दृश्य से महिलाओं का सिर शर्म से झुक जाता है। एक औरत पर अत्याचार की यह चरम परिणति है। वह किस तरह चलेगी, इसका कयास लगाने के लिए उस निर्वस्त्र देह को दूर से निहारने की नहीं, उसकी आत्मा तक पहुँचने की जरूरत है। जिस औरत पर लगातार कई दिनों तक अनजाने चेहरों द्वारा बलात्कार किया गया है, अपनी ही देह के प्रति क्या उसमें कोई संवेदना, कोई मानवीयता बाकी बची रह सकती है, लेकिन यह निर्देशक का कसूर है कि उसने परदे की अभिनेत्री को यह हिदायत दी कि वह हाथ के घड़े से अपने अंगों को ढकने का प्रयास करे, ताकि हिन्दी फिल्मों का दर्शक और जो से सीटियाँ बजाकर उसे घड़े को हटाने को कहे। हमारी दकियानूसी नैतिकतावादी दृष्टि आज भी औरत को या तो देवी के रूप में देखती है या वैश्या के रूप में। औरत के मानवीय स्वरूप की अवधारणा जब भारतीय संस्कृति में है ही नहीं, तो हिन्दी फिल्मों में एक आम दर्शक से उसकी उम्मीद करना बहुत बड़ी भूल है।[9]

ओपल महानगर के सम्पादक निखिल वागले ने कहा- जिन्हें इस प्रसंग में भी अपनी काम-वासना की तृप्ति करने की इच्छा होती है और ठाकुरों के अत्याचार की जगह अभिनेत्री की नग्न देह दिखती है उन्हें विकृत ही कहा जायेगा। उनके मस्तिष्क में कोई गम्भीर खराबी है, ऐसा मान लेने में कोई बुराई नहीं है।[10]

इन दृश्यों की अश्लीलता के कारण सेंसर बोर्ड के एक सदस्य सुभाष पाण्डे ने इस मुद्दे पर अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया, उनमें से एक ने बताया- ''इस फिल्म के मामले में सेंसर बोर्ड का हाथ बिल्कुल साफ है, हमने इसे पंद्रह कट्स दिए थे। इसके सारे गंदे सीन काट दिए थे, शेखर कपूर इसे जस्टिस लेनिटस के पास ले गए, जिन्होंने इसे दो-चार कट के बाद पास कर दिया। सेंसर बार्ड का इसमें कोई दोष नहीं है, अब तो और ज्यादा अश्लील फिल्में बनेंगी।"[11]

दिक्कत यह है कि सेंसर बोर्ड की नैतिकता एक झूठी ओढ़ी हुई तथा बिकाऊ नैतिकता है, जिसका कोई सही मापदण्ड नही है। 14 फरवरी को महिलाओं के लिए आयोजित विशेष 'शो' में कुछ महिला संगठनों 'वुमेन्स सेन्टर' आदि की सदस्याओं ने यह फिल्म देखी। सबका कहना था कि इस फिल्म पर अश्लील होने का आरोप सरासर गलत है। बलात्कार और फूलन के निर्वस्त्र घुमाए जाने के दृश्य अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ फिल्माए गए हैं। कॉलेज की बीस वर्षीय छात्रा ने कहा- ''फिल्म के विज्ञापन के साथ यह स्लोगन होना चाहिए 'वॉच दिस, बट वॉच इट विद इंटेलिजेंस' (इसे देखिए, मगर बुद्धिमानी के साथ)। एक महिला कार्यकर्ता ने कहा- 'कुछ महिलाएँ सिर्फ विरोध करने के लिए विरोध करती हैं। मुद्दा चाहे हो या न हो। आज हर हिन्दी फिल्म में नाच के नाम पर भद्दे तरीके से सिर्फ वक्ष और कूल्हों को हिलाया जाता है, क्या उसमें उन्हें नग्नता नहीं दिखती?' 'नारी केन्द्र' की अरुणा बुरटे का कहना था कि फिल्म बड़ी रियलिस्टिक है, उसमें अश्लीलता भी नहीं है, पर यह सचमुच चिन्ता का विषय है कि फिल्म कोई मैसेज कन्वे नहीं करती। शेखर कपूर के पास यथार्थवादी दृष्टि है, फिल्म निर्माता की समझ है, पर दृष्टि नहीं है। उसने तथ्यों को एकत्रित करके रख दिया है, पर यह फिल्म के माध्यम से कहना क्या चाहता है, इस बारे में वह बहुत स्पष्ट नहीं है। इसलिए मैं शेखर कपूर की पीठ नहीं ठोक सकती। इस मुद्दे पर बहस ही नहीं, विश्लेषण होना चाहिए कि फिल्म अपने उद्देश्य में कामयाब क्यों नहीं हुई, यह आम जनता को विश्वास में क्यों नहीं ले पाई।"[12]

कुछ साल पहले जब इस फिल्म के कुछ 'प्राइवेट शो' हुए थे, तब विरोध के मुद्दे कुछ और थे। तब यह कहा जा रहा था कि इस फिल्म में फूलन के जीवन के तथ्यों के साथ मनमानी छूट लेते हुए शेखर कपूर ने फूलन के साथ ज्यादती की है। अरूंधती राय ने यहाँ तक कहा कि राजीव गाँधी पर बनी डाक्यूमेंट्री में सिर्फ एक दृश्य की प्रमाणिकता से संदेह होने की वजह से फिल्म रुकवा दी गई थी, यहाँ फूलन देवी को फिल्म दिखाए बिना उसके 'शो' कैसे किए जा रहे हैं? सवाल यह भी उठाया गया था कि किन दर्शकों के लिए यह फिल्म बनाई गई है? 'सत्यजित रे' ने हिन्दुस्तान के निचले तबके की गरीबी, भुखमरी, दो जून की रोटी के लिए अनेक संघर्ष, उनकी मानवीय संवेदना की त्रासदी को सेल्युलाइड के जरिए पूरे विश्व तक पहुँचाया गया था। शेखर कपूर इससे आगे बढ़कर दलित नारी के बेहद निजी कक्ष में दाखिल हो गए और उसे खुली आँख से उसी तरह प्रक्षेपित भी कर रहे हैं। इस फिल्म पर आरोप लगाया गया है कि इसे एक एलीट वर्ग के लिए ही बनाया गया है जबकि इसे ऐसा होना चाहिए कि बिना सेंसर हुए यह फिल्म हर घर में देखी जा सके।[13]

बहरहाल, आलोचना-प्रत्यालोचना से आजिज आकर शेखर कपूर ने अंग्रेजी में एक कविता लिखी।[14] अपनी एयरकंडीशंड कार में 'शिट स्ट्रीट' से गुजरते हुए अपनी खूबसूरत पोशाक ओर बड़ी सी बिन्दी पहनकर अपनी गाड़ी के शीशे चढ़ाना मत भूलना, क्योंकि इस गंदी सड़क की दुर्गंध आप जैसों के लिए नहीं है।.....और यह कौन है? जो यह सारी बकवास लिख रहा है? क्या यह बैंडिट क्वीन (1994) का डॉयरेक्टर है? क्या यह सॉफ्टनेस या फिल्टर इस्तेमाल नहीं कर सकता है? उसे क्या हक है, हमें इन गंदी नालियों तक घसीटकर ले जाने का? हमारी नाक को दुर्गंध में दबाए रखने का, जब तक हमारा दम न घुट जाए और हम पूरी दुनिया की सच्चाई देखकर हाँफने न लगें। क्या यही कला है? सत्यजीत रे ने कभी ऐसा नहीं सोचा पर फिर, वह भी तो हममें से एक ही था।

इस फिल्म में डकैती के कुछेक हिंसात्मक दृश्यों के साथ फूलन के मानवीय पक्षों को भी उभरा गया है। एक लूटपाट में वह एक छोटी-सी लड़की को चाँदी की पायजेब का जोड़ा पकड़ा देती है। एक अन्य हिंसात्मक दृश्य में बेहद फिल्मी अंदाज में उसे पुत्तीलाल, जिसने ग्यारह साल की फूलन से पति के रूप में साधिकार बलात्कार किया था, को बेरहमी से पीटते हुए उसे खून से सराबोर होते दिखाया गया है। बदले की आग में जलती हुई फूलन देवी का यही एक दृश्य है, जो किसी भी व्यावसायिक हिन्दी फिल्म का फार्मूला दृश्य लग सकता है।

अच्छे फिल्मांकन के बावजूद, इस फिल्म की हिंसा अखरती है। बेहमई में बीस ठाकुरों के नरसंहार के दौरान एक नंग-धड़ंग बच्चे को लगातार रोते-चीखते हुए इधर-उधर लावारिस सा डोलना, एक कतार में उनकी जलती हुई चिता पर दादा और पोते का सिर मुड़ाकर चिता के इर्द-गिर्द मंत्रोच्चार के साथ परिक्रमा करना, क्या उन दर्शकों की सोई हुई चेतना को कहीं से झकझोर नहीं पाया, जिनकी आँखें सिर्फ सीमा विश्वास की नग्न देह पर ही चक्कर काटती रह गईं।

ऐसी फिल्म जिसमें क्रूरता, अमानवीयता और नग्नता तथा महिला मानवाधिकारों के हनन के दृश्य बिखरे पड़े हैं, उसमें नायिका का चरित्र निभाने के लिए अतिरिक्त साहस चाहिए। सीमा विश्वास ने यह कर दिखाया। उसे सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। अपनी पहली ही फिल्म में उसने लाचारी, शोषण, उत्पीड़न, अपमान और प्रतिकार से भरी फूलन की जिन्दगी के हर भाव को विश्वसनीयता के साथ पेश किया। कलाकार को अमर बनाने में कई यादगार भूमिकाओं का योगदान होता है लेकिन सीमा विश्वास के लिए यह एक फिल्म ही काफी है।[15]

सन्दर्भ

[1]*मूल कलाकार : सीमा विश्वास,* निर्देशक : शेखर कपूर

[2]*मूल फिल्म बैंडिट क्वीन से*

[3]*वही*

[4]*वही*

[5]सलीम खान -*सिनेमा में नारी,* ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली (2014), पृष्ठ संख्या 116

[6]*वही,* पृष्ठ संख्या 117

[7]*वही,* पृष्ठ संख्या 117

[8]*हिन्दी सिनेमा 20वीं-21वीं सदी तक प्रगतिशील,* वसुधा प्रगतिशील लेखक संघ का प्रकाशन-81, स्वयं प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 449

[9]सुधा अरोड़ा -*आम औरत जिन्दा सवाल,* सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 206

[10]*वही,* पृष्ठ संख्या 206

[11]*हिन्दी सिनेमा 20वीं-21वीं सदी तक प्रगतिशील,* वसुधा प्रगतिशील लेखक संघ का प्रकाशन-81, स्वयं प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 410

[12]*हंस मासिक पत्रिका,* अप्रैल-1996

[13]सुधा अरोड़ा -*आम औरत जिन्दा सवाल,* सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 206

[14]शेखर कपूर -*'वेलकम टू ए रियल वर्ल्ड',* 'टाइम्स ऑफ इण्डिया', अगस्त 1994.

[15]सलीम खान -*सिनेमा में नारी,* ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली (2014), पृष्ठ संख्या 117-118

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,60-63
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 फरवरी 2016

सूचना का अधिकार एवं मीडिया : औचित्य और चुनौतियाँ

डॉ. संजीव गुप्ता* एवं अरविन्द कुमार पाल**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सूचना का अधिकार एवं मीडिया : औचित्य और चुनौतियाँ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *संजीव गुप्ता एवं अरविन्द कुमार पाल* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

विचार की महत्ता के संदर्भ में वर्षों पूर्व कहा गया उक्त कथन समय की कसौटी पर जांचा परखा गया है। विचारों का उद्‌भाव एवं उनका स्वतन्त्र विकास अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं संसूचित समाज के अभाव में नहीं हो सकता। इसी कारण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समूचित समाज और स्वतंत्र विचारों का निर्माण पर्याय माने जाते हैं। सूचना का अधिकार अथवा जानने का हक बुनियादी स्वंत्रताओं में से एक है। इसके अभाव में अन्य स्वतंत्रताओं का कोई अस्तित्व नहीं रहता। 20 वीं सदी के उत्तरार्द्ध वाली संवैधानिक लोकतंत्रिक व्यवस्थाओं में मानव अधिकारों के विविध ऐतिहासिक दस्तावेजों में सूचना के अधिकार के रूप में स्वीकृत किया गया।

मीडिया एवं सूचना के अधिकार का गहन अन्तर्सम्बन्ध है। समग्र रूप से देखा जाए तो सत्य का उद्‌घाटन, सार्वजनिक दोषों को उजागर करना, उत्पीड़न का विरोध, असहायों की रक्षा एवं मानवाधिकारों का संरक्षण-संवर्द्धन मीडिया के मुख्य उद्देश्य हैं। 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा प्रपत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सूचना के अधिकार को मूलभूत मानवाधिकार घोषित किया गया है। सूचना का अधिकार मीडिया को अपने मूलभूत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सशक्त आधार प्रदान करता है। इस दृष्टि से दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं।

दुनिया में सर्वप्रथम वर्ष 1766 में स्वीडन द्वारा अपने नागरिकों को विधिवत् दिया गया सूचना का अधिकार आज दो दर्जन से अधिक राष्ट्रों से मान्यता प्राप्त कर चुका है। दुनिया की आधी से अधिक आबादी लोकतंत्रिक समाज में रहती है, लेकिन जिन देशों में प्रेस की स्वतंत्रता पूर्णतः वास्तविक अर्थों में बहाल है उनकी आबादी विश्व की कुल जनसंख्य की एक चौथाई से भी कम है। जाहं प्रेस की स्वतंत्रता न हो वहां सूचना के अधिकार की मांग की जटिलताएं आसानी से समझ आ सकती है। मीडिया के क्षेत्र में सूचना के अधिकार के औचित्य का विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि निष्पक्ष एवं सही सूचनाओं तक सरल एवं शीघ्र पहुंच त्रिआयामी मीडिया (प्रिन्ट, चैनल एवं इन्टरनेट) के लिए प्रथम आवश्यकता है। सही एवं पूर्ण सूचनाएं

* सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. सी. आर. पी. वी. भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत
** शोध छात्र, एम. सी. आर. पी. वी. भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्राप्त होने पर मीडिया अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर जनहित को साधने, जनमत के निर्माण एवं लोकतंत्र को सशक्त बनाने का कार्य कर सकता है।

भारत में स्वतंत्रता के 58 वर्षों के उपरान्त नागरिकों को वैधानिक रूप से सूचना का अधिकार प्राप्त होना अभिव्यक्ति की आजादी की दिशा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

सूचना का अधिकार आन्दोलन एवं मीडिया की मुहिम

भारत में सूचना के अधिकार आन्दोलन में मीडिया ने सूचना के अधिकार के लिए विधान निर्माण के आन्दोलन से लेकर सूचना के अधिकार के निष्पादन तक महत्वपूर्ण भूमिका का सम्पादन किया है। 90 के दशक में जब देश के विविध राज्यों सूचना के अधिकार की मांग के लिए सशक्त आन्दोलन संचालित हो रहे थे तब मीडिया ने केवल इन आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी की वरन सूचना के अधिकार आन्दोलन को एक दिशा भी दी। एक ओर भारतीय प्रेस परिषद द्वारा 90 के दशक में सूचना के अधिकार के कानून निर्माण हेतु दो महत्वपूर्ण प्रयास किए वहीं राज्यों में सूचना के अधिकार कानून की विसंगतियों के विरूद्ध संचालित आन्दोलनों में पत्रकारों ने भी अपनी भागीदारी की।

सूचना के अधिकार के मांग के लिए आम जनता के संघर्ष की अनूठी मिशाल राजस्थान की है, जहाँ सूचना के अधिकार की मांग जमीन से उठी तथा लोगों की बुनियादी जरूरतों के साथ ताकत पाकर फली-फूली राजस्थान में यह मांग पढ़े-लिखे या अधिकारों के लिए सर्तक रहने वाले प्रबुद्ध वर्ग ने नहीं वरन मध्य राजस्थान के बेनाम मजदूरों एवं किसानों ने उठायी जिन्हें पारदर्शिता एवं जवाबदेही जैसी अवधारणाओं का कोई ज्ञान नहीं था। भारतीय प्रशासनिक सेवा त्याग पत्र देकर समाज सेवा में आयी अरूणा रॉय एवं उनके साथियों ने जब राजस्थान के राजसमन्द से मिल के भीम तहसील के पिछड़े अकाल ग्रस्त गाँव देवडूंगरी में सरकारी कार्यो में लगे मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी की मांग की लिए मजदूर किसान शक्ति संगठन की स्थापना की।

मजदूर किसान शक्ति संगठन ने राजस्थान के छोटे से नगर ब्यावर एवं राज्य की राजधानी जयपुर में क्रमशः 40 एवं 53 दिन का धरना देकर जनव्यापी आन्दोलन चलाया। सूचना का अधिकार पढ़े-लिखे लोग, वकील, पत्रकार नहीं भूमिहीन मजदूर और किसान मांग रहे थे। इसी धरने को देखने एवं इस संघर्ष को समझने के लिए कुलदीप नैयर एवं निखिल चक्रवर्ती जैसे वरिष्ठ पत्रकार गये। देश भर की प्रेस सूचना के अधिकार के अभियान एवं आन्दोलन से जुड़े वरिष्ठ पत्रकारा प्रभास जोशी ने जानने के अधिकार को जीने के अधिकार से जोड़ते हुए सूचना के अधिकार आन्दोलन को नवीन आयाम दिये। यह नया आयाम था जानना जीने के लिए।

राजस्थान में जानने के हक के इसी आन्दोलन से सूचना के जन अधिकार का राष्ट्रीय अभियान निकला। सूचना के अधिकार के वास्तविक निष्पादन में मीडिया की कारगर भूमिका का एक उदाहरण दिल्ली का है। दिल्ली में सूचना के अधिकार कानून के निष्पादन हेतु सक्रिय जन संगठन 'परिवर्तन' के साथ मिलकर इंडियन एक्सप्रेस राष्ट्रीय समाचार पत्र समूह ने वर्ष 2004 में एक मुहिम चलायी जिसके तहत देश की राजधानी दिल्ली के विविध इलाकों में नागरिकों को इस अधिकार के प्रयोग एवं लाभों की जानकारी दी गयी।

स्पष्ट है कि मीडिया न सूचना के अधिकार आन्दोलन में निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया है। क्षेत्रीय, छोटे एवं स्थानीय अखबारों इस मिशन को आगे बढ़ाया। बड़े एवं महानगरीय अखबारों ने मिशन को जन-जन तक पहुँचाया है। त्रिआयामी मीडिया प्रिन्ट, चैनल एवं इन्टरनेट के माध्यम से भारत में सूचना के अधिकार आन्दोलन को भौतिक सर्मथन दिया गया। 11 एवं 12 मई, 2005 को सूचना के अधिकार के लिए राष्ट्रीय सूचना के अधिकार विधेयक को लोक सभा एवं राज्य सभा द्वारा पारित किए जाने के उपरान्त 15 जून 2005 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति प्रदान की गयी।

देश के 9 राज्यों में सूचना का अधिकार कानून वैधानिक रूप से नागरिक को प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति मामूली शुल्क अदा कर सभी सरकारी विभागों, निगमों एवं संस्थाओं से सूचना ले सकता है। निर्धारित अवधि में सूचना न देने पर दण्डात्मक प्रावधान एवं सूचना प्राप्त हो जाने सुनिश्चिय के लिए सूचना आयोगों की नियुक्ति, सूचना स्वतः प्रदान करने के लिए जिम्मेदारी

सुनिश्चित करना कानून के सकारात्मक प्रावधान है। किन्तु इसके साथ ही मीडिया की जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है।

सूचना का अधिकार एवं मीडिया प्रमुख चुनौतियाँ

यह सत्य है कि सूचना का अधिकार कानून का वैधानिक अधिकार नागरिक प्राप्त होने का निर्णय लोकतांत्रिक भारत की पाँच दशकीय विकास यात्रा में महत्वपूर्ण प्रस्तर चिन्ह है। आज मीडिया फलक अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो चुका है। सबसे तेज चैनलों की होड़ तथा पीत पत्रकारिता की प्रवृत्ति ने मीडिया के क्षेत्र में नवीन खलबली मचा रखी है। ऐसी परिस्थिति में सूचना का अधिकार मीडिया जहाँ एक ओर अपनी सशक्त भूमिका के निर्वाह के लिए आधार प्रदान करता है वही सूचनाओं तथा जानकारी के अभाव का वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से गहरे सम्बन्ध की मर्यादा भी निश्चित करता है। आज राष्ट्रीय स्तर पर सूचना के अधिकार की कानूनी वैधता के उपरान्त मीडिया की जिम्मेदारी अधिक बढ़ गयी है। विगत एक दशक में जैसे-जैसे खुले बाजार की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का बोलबाला हुआ है वैसे-वैसे मीडिया के क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन आये है। आज अनेक राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय अखबारों का मुख्य ध्येय मुनाफा कमाना है। व्यवसायिकता एवं पूँजी के दबाव के कारण मीडिया के चरित्र में बदलाव आया है। समाचार पत्रों की पाठक संख्या के प्रसार एवं टीबी चैनलों की टी0आर0पी0 की प्रवृत्ति के कारण किसी भी हद तक व्यवसायिक प्रतिद्वंद्विता मीडिया की साख पर सवाल पैदा करती है।

वस्तुतः सूचना के अधिकार का मीडिया द्वारा व्यवहारिक एवं न्यायोचित उपयोग के लिए निम्नांकित बिन्दुओं को ध्यान में रखना होगा :

1. *लोकहित को प्रधानता;* मीडिया के लिए लोकतंत्र को जीवन्त एवं तत्ववान् बनाने वाले अधिकर सूचना के अधिकार के प्रयोग के समय इस तथ्य का ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि इसकी व्यवहारिक सीमाओं का अतिक्रमण किए गए बिना इसका लोकहित में प्रयोग किया जाए। सूचना के अधिकार दुष्प्रयोग की सबसे बड़ी लक्ष्मण रेखा यह है कि पत्रकारिता के मूलमंत्रों आत्मानुशासन एवं पूर्वाग्रहरहित लिखने का पालन हो।
2. *सृजनात्मक उपयोगिता;* मीडिया का कार्य जटिल एवं श्रमसाध्य है। पत्रकारिता चाहे वह प्रिन्ट हो अथवा इलेक्ट्रोनिक, महत सूचनाओं का ढेर नहीं है। यह एक दृष्टिसम्पन्न एवं व्यवस्थिति गतिशीलता है जिसमें एक दिशा का होना भी जरूरी है। यह आवश्यक है कि मीडिया रचनात्मक, लोकहित एवं निष्काम दृष्टि से सूचना के अधिकार का उपयोग करें। प्रशासनिक व्यवस्थाओं में भ्रष्टाचार एवं अनियमितताओं को उजागर करने का मुख्य ध्येय व्यवस्था एवं लोकतंत्र की सबल एवं स्वस्थ्य बनाना हो।
3. *अधिकार प्रयोग की प्रेरणा;* नब्बे के दशक में भारत के जिन राज्यों में सूचना के अधिकरों को कानूनी वैधता प्राप्त हुई वहा इस अधिकार के करिश्माई प्रयोग के उदाहरण नहीं मिलते है। मीडिया का मुख्य ध्येय है यह यथार्थ का प्रमाणिक ठोस प्रकटीकरण करें। प्रेस परिषद द्वारा हाल ही में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि आज कल मीडिया खबरें पूर्व निर्धारित होती है जो शक्तिशाली हित समूह और लाबियों तथा दबाव समूह द्वारा अपने निहित स्वार्थों पूर्ण करने के लिए लिखी या लिखवायी जाती हैं। सूचना के अधिकारों का प्रयोग तभी सफल हो सकता है जब मीडिया इस अधिकार का स्वयं व्यापक प्रयोग करें तथा जनता को इस अधिकार के प्रयोग के पालन की प्रक्रिया तथा महत्व से अवगत करायें अन्यथा सूचना के अधिकार के कानून केवल कागज का कानून बन कर रह जायेगा। इसके अनुपालन हेतु नागरिक सचेतना की जिम्मेदारी मीडिया की है।
4. *मानव विकास के क्षेत्र में प्रयोग;* आज देश के विविध राज्यों में सूचना के अधिकार का पिछले कुछ वर्षों में जितना प्रयोग हुआ है वह सीमित क्षेत्र में ही हुआ है। यह आवश्यक है कि मीडिया द्वारा सूचना के अधिकार का व्यापक दायरे में प्रयोग किया जाए। सूचना के अधिकार को संबंध सनसनीखेज प्रकरणों को उजागार करना मात्र नहीं है वरन् यह तो लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शासन की जवाबदेही एवं जन-जन की सहभागिता बढ़ाने का अभियंत्र है। आज मीडिया में विकास की खबरों को कवरेज न देना एक चिन्ताजनक पहलू है। मानव विकास के विविध क्षेत्रों में जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आधारभूत ढाँचा, उपभोक्ता आन्दोलन, रोजगार, नगरीय प्रशासन एवं पर्यावरण में सूचना के अधिकार के प्रयोग के अधिकारों के प्रयोग के माध्यम से विकासमूलक खबरों को सामने लाया जा सकता है। आज देश के 6 लाख गांवों तक सूचना के अधिकारों के अनुप्रयोग को मीडिया विकास के मुद्दों में इस अधिकार के सफल प्रयोग से पहुंचा सकती है।
5. *पारदर्शिता के विचार का प्रसार;* मीडिया के समक्ष यह स्पष्ट होना चाहिए कि पारदर्शिता का सिद्धांत केवल सरकार या शासन तक ही सीमित रखना संकीर्ण होगा। निजी क्षेत्र के उद्योगों, शिक्षण संस्थाओं एवं राजनीतिक दलों में इसका प्रसार होना आवश्यक है। मीडिया को इस क्षेत्र में स्वयं ही पहल करनी चाहिए और अपनी ओर से इस दिशा में घोषणा करनी चाहिए। कोई भी जानकारी किसी भी क्षेत्र में (सूचना के अधिकार के अपवाद के क्षेत्रों को छोड़कर) गोपनीय न रहे।

6. *उपयोग ही निर्धारित करेगा सफलता;* देश में राष्ट्रीय स्तर पर सूचना का अधिकार कानून बन जाना ही सूचना के अधिकार के मूलभूत उद्देश्यों की प्राप्ति की गारण्टी नहीं है, इस अधिकार की सफलता इस बाता पर निर्भर करेगी कि उसका उपयोग कैसे किया जाता है केवल विधान पारित करना ही परिवर्तन का संकेत नहीं देता। यह आवश्यक है मीडिया शासन एवं जनता के स्तर पर सूचना के अधिकार के प्रति उदासीनता अथवा जड़ता की प्रवृत्ति को दूर करें। ''कलम'' से उन मामलों एवं मुद्दों को स्पष्ट करें जहां सूचना देने में टाल-मटोल की जाती है। सूचना के अधिकार कानून के अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए ऐसे अधिकार को व्यापक प्रयोग तत्तसंबंधित मामलों की कवरेज एवं प्रकट होने वाली स्थिति पर जनमत का निर्माण आवश्यक है।

अंततः स्वतंत्रता के पश्चात् छः दशकों के पश्चात् भारत के जन-जन को जानने का अधिकार प्राप्त होना गोपनीयता से पारदर्शिता की आरे यात्रा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। सूचना का अधिकार भारत के सामान्यजन कों सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देने की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधार है किन्तु परिवर्तन के इस अभियान की सफलता इसके सार्थक प्रयोग पर निर्भर करती है। मीडिया सूचना के अधिकार का सर्वाधिक विश्वसनीय प्रयोग कर जनतंत्र में जन की गरिमा से जीने एवं शासन को जवाबदेह बना सकता है किन्तु सभ्य समाज की स्थापना के लिए स्वयं मीडिया को सूचना के अधिकार की प्रभावी, सार्थक एवं औचित्यपूर्ण प्रयोग को सुनिश्चित करना होगा।

संदर्भ सूची

10 दिसम्बर 1948 का संयुक्त राष्ट्र संघ के 30 सूत्रीय सर्वाभौम घोषणा-पत्र की धारा-19 में अभिव्यक्ति एवं सूचना की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार घोषित किया गया है।

अरूण पाण्डेय -हमारा लोकतंत्र एवं जानने का अधिकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ट संख्या 44

वी.आर. कृष्ण अय्यर (1990) -फ्रीडम ऑफ इनफोरमेशन, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, पृष्ठ संख्या 12

प्रेस परिषद् द्वारा 1990 में गोपनीयता के कानून को रद्ध करने के लिए अनुशंसाएँ तथा 1996 में मोडल विधेयक का प्रारूप तैयार किया गया।

मजदूर किसान शक्ति संगठन (एम.के.एस.एस.) राजस्थान द्वारा 1994-96 की अवधि जनसुनवाइयों का आयोजन किया गया।

प्रभाष जोशी -जानना 'जीने के लिए', जनसत्ता, 26 मई, 1996, पृष्ठ संख्या 3

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,64-68
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 फरवरी 2016

भारतीय संविधान और मानवाधिकार

यश कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय संविधान और मानवाधिकार*[1] शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *यश कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आधुनिक काल में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए सबसे प्रभावशाली साधन संविधान को बनाया गया है। संविधान में उल्लेखित करके मानवाधिकारों को राज्यों के लिए बाध्यकारी बनाया गया है। अतः मानवाधिकार और संविधान व्यक्ति के विकास एवं अस्तित्व की आवश्यक शर्त बन गये हैं। भारतीय संविधान में मानवाधिकारों का विस्तृत उपबन्ध किया गया है। भारतीय संविधान मानवाधिकारों की सर्वाभौमिक घोषणा में निहित मानवाधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करके उनको वास्तविक रूप प्रदान करता है।

भारत में 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पुनर्जागरण के साथ मानवाधिकारों के क्षेत्र में सुगबुगाहट शुरू होती है। यूरोप के स्वतन्त्रता, तार्किकता, मानववाद के विचारों का प्रभाव भारतीय मानव पर एक खुलापन प्रारम्भ किया और परिणामस्वरूप सुधारों के अभियान प्रारम्भ हुये। आधुनिक काल में राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, दादा भाई नौरोजी, विवेकानन्द से लेकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर, नेहरू आदि तक भारत के हर क्षेत्र में एक से एक बढ़कर एक मानवता के रक्षक और मानवाधिकारों के संरक्षक पैदा हुये हैं। विवेकानन्द कहते थे- ''यदि एक कुत्ते के कल्याण के लिए मुझे हजार बार मनुष्य योनी में जन्म लेना पड़े तो मैं अपने आप को धन्य समझूँगा।'' इसी प्रकार हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का कहना था कि ''हमारी तपस्या हमारा व्रत तब तक अधूरा है जब तक समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति हमारे साथ चलने योग्य न हो जाये।''

आधुनिक भारत में मानवाधिकारों की सर्वाधिक सशक्त एवं वास्तविक अभिव्यक्ति भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के रूप में होती है। भारतीय संविधान के भाग III में इनका वर्णन किया गया है। इनको मौलिक इसलिए कहा गया है क्योंकि इन्हें न तो किसी दूसरे को दिया जा सकता है न ही इनका राज्य या व्यक्ति द्वारा अतिक्रमण किया जा सकता है। इन अधिकारों को वास्तविक रूप देने के लिए न्यायपालिका को इनका संरक्षक बनाया गया है। संरक्षक होने के नाते न्यायपालिका जागरूक प्रहरी की भाँति सरकार के क्रियाकलापों एवं व्यक्ति की क्रियाओं के प्रति अपनी दृष्टि जमाये रखती है ताकि वह

* शोध छात्र, राजनीतिविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : yash16488@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

व्यक्ति जो समाज की प्रत्येक व्यवस्था द्वारा निराश हो चुका हो उसको सहायता पहुँचाई जा सके।

भारतीय संविधान मानव अधिकारों पर एक विस्तृत प्रलेख प्रस्तुत करता है। भारतीय संविधान की उद्देशिका में व्यक्ति की गरिमा के अनुरूप स्वतन्त्रता एवं समानता के मूल्यों की घोषणा बहुत जोर शोर से की गयी है। आर्थिक एवं सामाजिक न्याय के आदर्शों द्वारा उन्हें और अधिक पूर्णता एवं स्थायित्व प्रदान किया गया है। इन्हीं सब आदर्शो एवं मूल्यों को वास्तविक रूप से प्राप्ति के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा का संरक्षण करने के लिए भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया। न्यायमूर्ति भगवती के अनुसार'' ये मूल अधिकार वैदिक काल से इस देश के लोगों द्वारा संजोये आधारभूत मूल्यों का निरूपण करते हैं और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करने तथा ऐसी दशायें उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है जिनमें प्रत्येक मानव अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर सके।''[1]

जब संविधान सभा ने संविधान निर्माण का काम अपने हाथों में लिया तो सबसे पहले एक अधिकार पत्र बनाने का विचार लिया। संविधान निर्माता चाहते थे कि इस अधिकार पत्र में भारत के विविध तथा समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा के उन विशिष्ट मूल्यों एवं संकल्पनाओं का स्पष्ट रूप झलके, जिनकी जड़े राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की प्रेरणाओं में समाहित हुई थी। जब भारतीय संविधान सभा द्वारा संविधान निर्माण का कार्य चल रहा था उसी समय 10 दिसम्बर, 1948 को सार्वभौम मानव अधिकारों की घोषणा हुई। संविधान सभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अपनी संस्तुति प्रदान करके मानव अधिकारों के प्रति अपनी निष्ठा को प्रकट कर दिया। मेनका गांधी मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि'' मानव अधिकरों की सार्वभौम घोषणा के ठीक बाद भारत के संविधान में अधिकार पत्र का समावेश विश्व के अन्य देशों की समकालीन लोकतन्त्रात्मक तथा मानवीय वृत्ति और संवैधानिक प्रथा के अनुरूप था। यह इस बात का प्रमाण है कि संविधान निर्माता सार्वभौम घोषणा में प्रतिपादित बुनियादी सिद्धान्तों का समावेश करने तथा उन्हें कार्यन्वित करने के लिए कितने उत्सुक थे।''[2] ''डॉ0 एस राधा कृष्णन ने मूल अधिकारों को हमारी भावना के साथ किया गया वादा तथा सभ्य विश्व के साथ की गयी संधि कहा। स्वाभाविक ही था कि उन्हें राज्य के लिए अर्थात् कार्यपालिका विधायिका के लिए बाध्यकारी बना दिया गया।''[3]

भारतीय संविधान में निहित मानव अधिकार अपनी प्रकृति के आधार पर दो प्रकार के है -1. मौलिक अधिकार, 2. नीति निदेशक तत्व।

1. मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकारों से उन परिस्थितियों एवं सुविधाओं का बोध होता है जो व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करने और उसे अपने व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए सामान्य रूप से अपरिहार्य माने जाते हैं। ये व्यक्तियों के वे मूलभूत अधिकार होते हैं जिनका किसी भी परिस्थिति में अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये भारतीय संविधान का भाग तृतीय नागरिकों को ऐसे ही मौलिक और मूलभूत अधिकार प्रदान करता है। इन अधिकारों की विशेषता इन्हें हर प्रकार के हस्तक्षेप से सुरक्षित किया गया है।

इन मौलिक अधिकारों का संरक्षक न्यायपालिका को बनाया गया है। यह अधिकार विधानमण्डल एवं कार्यकारिणी दोनों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाकर नागरिकों की स्वतन्त्रता को सरकार के अनुचित हस्ताक्षेप से बचाते है। जैनिग्स के अनुसार भारतीय संविधान मूलतः एक व्यक्तिवादी प्रलेख है। व्यक्ति की महत्ता को मान्यता देते हुये भारत के संविधान ने नागरिकों को कुछ ऐसे अधिकार दिये है जो उन्हें सरकार के विरूद्ध भी प्राप्त हैं।''[4]

मूल अधिकारों को संविधान का अंग बनाने का प्रारम्भ अमेरिका के संविधान से हुआ जो संसार का प्रथम लिखित संविधान है। भारतीय संविधान में अत्यधिक विस्तृत रूप से मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है और उन्हें सात उपभागों में विभाजित किया गया है। इसमें प्रारम्भ के दो अनुच्छेद (12, 13) मूल अधिकारों की सामान्य रूपरेखा और उनके सम्बन्ध में कुछ सामान्यताओं का निर्धारण करते हैं, शेष 6 उपभाग विशिष्ठ अधिकारों का उल्लेख करते हैं। संविधान में वर्णित मूल अधिकार संघीय सरकार पर ही प्रतिबन्ध नहीं लगाते वरन् इनसे राज्य सरकारें तथा समस्त स्थानीय प्राधिकारियों की शक्तियाँ भी प्रतिबन्धित होती हैं। इसलिये अनुच्छेद 12 में कहा गया है ''यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में राज्य के अन्तर्गत भारत सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधानमण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र के भीतर

अथवा भारत सरकार के नियन्त्रण के आधीन सब स्थानीय और अन्य पदाधिकारी भी सम्मिलित हैं।''[5]

इस प्रकार ये अधिकार केन्द्र एवं राज्य सरकारों पर ही बाध्यकारी नहीं है बल्कि अन्य संस्थाओं जैसे स्थानीय स्वशासन की इकाईयों आदि पर भी लागू होते हैं। भारत में मूल अधिकारों के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि कोई भी व्यक्ति राज्य के विरूद्ध संविधान के भाग-3 में उल्लिखित अधिकारों के अतिरिक्त किसी अन्य अधिकार का दावा नहीं कर सकता, जबकि अमेरिका में नागरिक, संविधान में वर्णित अधिकरों के अतिरिक्त भी ऐसे अधिकारों का दावा कर सकते हैं जो उनके स्वाभाविक विकास के लिये आवश्यक हो। प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का सहारा लेकर अमेरिका में न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों को बढ़ा सकती है, लेकिन भारत में नागरिक उन अधिकारों के अतिरिक्त जो संविधान में लिखे हुये है, अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकते है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों को दिये जाने वाले मूल अधिकार निरपेक्ष या असीमित नहीं है, लगभग हर अधिकार के साथ स्वयं संविधान उचित प्रतिबन्धों का भी उल्लेख करता है। इन प्रतिबन्धों का उद्देश्य समानता को जन्म देना और सभी नागरिकों को स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विकास के अवसर प्रदान करना है।

संविधान का अनुच्छेद-13 मूल अधिकारों को व्यवहारिक रूप देने के लिये कुछ महत्वपूर्ण घोषणायें करता है। इसमें कहा गया है कि ''इस संविधान के प्रारम्भ होने के ठीक पहले भारत राज्य-क्षेत्र में प्रवृत्त विधियाँ उस मात्रा तक शून्य होगी, जिस मात्रा तक वे इस भाग के उपबन्धों से असंगत है।''[6] इसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि ''राज्य कोई ऐसी विधि न बनायेगा जो इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को छीनती या न्यून करती हो और इस खण्ड के उल्लघंन में बनी प्रत्येक विधि उल्लघन की मात्रा तक शून्य होगी।''[16] इसका यह अर्थ हुआ की केन्द्र एवं राज्य सरकारें ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती जो संविधान के भाग 3 का अतिक्रमण करता है।

इस प्रकार मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्तों के वर्णन के पश्चात् भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का विशिष्ट वर्णन किया गया है। जिन्हें 6 भागों में बाँटा गया हैं जो निम्न है :

1. *समानता का अधिकार;* अनुच्छेद-14 से 18 तक समानता के अधिकार का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद-14 विधि के समक्ष समानता एवं विधि का समान संरक्षण से सम्बन्धित है। अनुच्छेद-15 में राज्य द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेदभाव नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद-16 राज्य के अधीन नौकरियों में समान अवसर बिना किसी भेद-भाव के उपलब्ध कराता है। अनुच्छेद-17 के द्वारा अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी अयोग्यता का लागू करना एक दण्डनीय अपराध होगा। अनुच्छेद-18 में यह व्यवस्था की गयी है कि सेना अथवा विद्या सम्बन्धी उपाधियों के अलावा राज्य अन्य कोई उपाधियाँ नहीं प्रदान करेगा।
2. *स्वतंत्रता का अधिकार;* अनुच्छेद-19 से 22 तक स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकारों का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद-19 द्वारा नागरिकों को 7 स्वतंत्रताएँ प्रदान की गयी थीं। इसमें छठी (19-च सम्पत्ति की स्वतंत्रता) को 44वें संविधान संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया है। अनुच्छेद-19 में वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अस्त्र-शस्त्र रहित शान्तिपूर्ण सम्मेलन की, समुदाय एवं संघ निर्माण की, भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध भ्रमण तथा निवास की, वृत्ति, उपजीविका अपनाने की स्वतंत्रताएँ दी गयी है। अनुच्छेद-20 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता, जब तक उसने अपराध के समय में लागू किसी कानून का उल्लंघन न किया हो। अनुच्छेद-21 के तहत किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण तथा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर वंचित नहीं किया जा सकता है। 86वें संविधान संशोधन अधीनियम 2002 द्वारा अनुच्छेद-21क जोड़कर शिक्षा के अधिकार को मूल-अधिकार बना दिया गया है। राज्य 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करायेगा। अनुच्छेद-22 निवारक निरोध से सम्बन्धित है जो बन्दीकरण की अवस्था में व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान करता है।
3. *शोषण के विरूद्ध अधिकार;* अनुच्छेद-23, 24 में शोषण के विरूद्ध अधिकार का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद-23 के द्वारा बेगार तथा इसी प्रकार की अन्य जबरदस्ती से लिया हुआ श्रम निषिद्ध ठहराया गया है। अनुच्छेद-24 में बाल श्रम का निषेध किया गया है।
4. *धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार;* अनुच्छेद-25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद-25 में कहा गया कि सर्वाजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के आधार पर सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। अनुच्छेद-26 में धार्मिक मामलों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। अनुच्छेद-27 में राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा को प्रतिबन्धित किया गया है। राज्य सर्वाजनिक व्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य इत्यादि के हित में इस अधिकार के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।
5. *संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार;* अनुच्छेद-29 और 30 में संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का वर्णन है। अनुच्छेद-29 के अनुसार नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद-30 के अनुसार धर्म

या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गो को अपनी रूचि की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके प्रशासन का अधिकार होगा।

6. *संवैधानिक उपचारों का अधिकार;* अनुच्छेद-32 में मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए संवैधानिक उपचारों का अधिकार नागरिकों को प्रदान किया गया है। इसके अन्तर्गत उच्चत्तम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित आदेश या रिट जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेक्षण जारी करने का अधिकार है।

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त

भारतीय संविधान का भाग-4 राज्य के निदेशक तत्वों से सम्बन्धित है। जहाँ एक तरफ संविधान के भाग-3 में वर्णित मौलिक अधिकारों का उद्देश्य राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है वहीं दूसरी तरफ निदेशक तत्वों का लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है। इसके सम्बन्ध में ग्रेनविल आस्टिन का कहना है कि ''भारत का संविधान मूलतः एक सामाजिक प्रलेख है और इसके अधिकांश प्रावधान या तो प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक क्रान्ति के लक्ष्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाये गये हैं अथवा वह उस क्रान्ति को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। इस सामाजिक क्रान्ति का लक्ष्य संविधान के भाग-3 एवं भाग-4 में निहित दिखायी देता है और यह कहना गलत न होगा कि मूल अधिकार तथा निदेशक तत्व संविधान की अन्तरात्मा है।''[7] यदि मूल अधिकारों के द्वारा समान तथा स्वतंत्र समाज की स्थापना की जा सकती है तो नीति-निदेशक सिद्धान्तों में सामाजिक क्रान्ति का स्पष्ट चित्र दिखाई देता है।

संविधान के अनु0-36 से 51 तक देश की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से कुछ आदर्शो का उल्लेख किया गया है। इन सिद्धान्तों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में नीति निदेशक सिद्धान्त संविधान की प्रस्तावना में घोषित सिद्धान्तों का ही विस्तृत रूप है। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान निर्माता भारत में राजनीतिक प्रजातन्त्र के साथ आर्थिक प्रजातन्त्र भी लाना चाहते थे। डॉ0 अम्बेडकर के शब्दों में ''संविधान निर्माताओं का यह उद्देश्य नहीं था कि आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए संविधान में एक ठोस प्रोग्राम का उल्लेख किया जाये बल्कि उनकी यह इच्छा थी कि प्रत्येक सरकार आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए प्रयास करेगी। इसी उद्देश्य से संविधान के चौथे भाग में कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है और यह आशा व्यक्त की गयी है कि सरकारें अपनी नीतियों का निर्माण करते समय यथा सम्भव इन सिद्धान्तों का पालन करेगी।''[8]

अनु0-37 नीति निदेशक सिद्धान्तों के स्वरूप तथा प्रकृति की व्याख्या करता है। इसमें कहा गया है कि ''इस भाग में दिये गये उपबन्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होगें तो भी इनमें दिये गये सिद्धान्त देश के शासन में मूलभूत है और विधि बनाने में इन सिद्धान्तों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।''[9] इस प्रकार अनु0-37 के अनुसार नीति निदेशक तत्वों में निम्न तीन बातें निहित हैं :

1. नीति निदेशक सिद्धान्त किसी न्यायालय द्वारा परिवर्तनशील न होगें अर्थात् यदि सरकारें उनकी उपेक्षा करती है तो नागरिक उनको लागू कराने के लिए न्यायपालिका द्वारा सरकार को बाध्य नहीं कर सकते है।
2. यह सिद्धान्त देश के शासन में मूलभूत हैं अर्थात् सरकारें नीतियों का निर्माण करते समय इन सिद्धान्तों को शासन के आधारों के रूप में स्वीकार करेगीं।
3. यह राज्य का कर्तव्य होगा कि वह कानून बनाते समय इन सिद्धान्तों को लागू करें।

नीति-निदेशक तत्वों की सूची

1. ''अनु0-36; परिभाषा
2. अनु0-37 इस भाग में अन्तर्विष्ट तत्वों का लागू होना
3. अनु0-38 राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा
4. अनु0-39 राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व
5. अनु0-39 क समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता
6. अनु0-40 ग्राम पंचायतों का संगठन

7. अनु0-41 कुछ दशाओं में काम शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार
8. अनु0-42 काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध
9. अनु0-43 कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि
10. अनु0-43 ख उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना
11. 43 ख सहकारी समितियों की अभिवृद्धि
12. अनु0-44 नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता
13. अनु0-45 छः वर्ष से कम आयु के बच्चों की बालावस्था की देखरेख एवं शिक्षा के लिए प्रावधान
14. अनु0-46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभि-वृद्धि
15. अनु0-47 पोषाहार स्तर एवं जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य
16. अनु0-45 कृषि और पशुपालन का संगठन
17. अनु0-48 क पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन एवं वन्य जीवों के रक्षा
18. अनु0-49 राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों, और वस्तुओं का संरक्षण
19. अनु0-50 कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण
20. अनु0-51 अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की अभिवृद्धि''[10]

संदर्भ ग्रंथ

[1]सुभाष कश्यप -*हमारा संविधान,* पृष्ठ संख्या 75, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2011

[2]*मेनका गाँधी बनाम भारत संघ* ए आई0 आर0 1978 एस0 सी0 597

[3]सुभाष कश्यप -*हमारा संविधान,* पृष्ठ संख्या 79, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2011

[4]एस0 एम0 सईद -*भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,* पृष्ठ संख्या 28, लखनऊ, भारत बुक सेन्टर, 2007

[5]*अनु0-12, बेयर एक्ट,* भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या 05, इलाहाबाद, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2013

[6]*अनु0-13, बेयर एक्ट,* भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या 05, इलाहाबाद, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2013

[7]ग्रेनविल आस्टिन -*दि इंडियन कांस्टिट्यूशन-कार्नर स्टोन ऑफ ए नेशन,* पृष्ठ संख्या 50-51 नई दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1966

[8]एस0 एम0 सईद -*भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,* पृष्ठ संख्या 74, लखनऊ, भारत बुक सेन्टर, 2007

[9]*अनु0-37, बेयर एक्ट,* भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या 21, इलाहाबाद, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2013

[10]*अनु0 36-51 बेयर एक्ट,* भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या 21-24, इलाहाबाद, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2013

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,69-73
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 फरवरी 2016

स्त्री का मानवाधिकार : या तो हाशिये पर या दोराहे पर

डॉ. विभा त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्त्री का मानवाधिकार : या तो हाशिये पर या दोराहे पर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा त्रिपाठी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

नारी एवं मानवाधिकार विषयक बिन्दुओं का अपना एक इतिहास रहा है। नारी एवं मानवाधिकार विषय अत्यन्त गूढ़ है। इसकी जितनी सूक्ष्म विवेचना की जाती है उतना ही इसके वैविध्य का आभास होता है। वैश्विक स्तर से क्षेत्रीय स्तर तक विषय का विस्तार है। समाज की सूक्ष्मतम इकाई से वृहदतम इकाई तक का इस विषय से प्रत्यक्ष या परोक्ष साकार सदैव से था, है और रहेगा।

जब तक 65 वर्ष की वृद्ध महिला को चुड़ैल बताकर पीटा जायेगा, उसका सिर मुड़ाँकर उसे गाँव में घुमाया जायेगा और जब तक एक आदिवासी महिला को अपनी मर्जी से विवाह करने पर पंचायत उसके साथ पूरे गाँव को मजा करने का आदेश देती रहेगी, नारी एवं मानवाधिकार विषय एक चुनौती बनकर खड़ा रहेगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से मानव-अधिकार एवं स्त्री अधिकार की उत्पत्ति दो पृथक आन्दोलन के परिणाम रहे हैं। पाश्चात्य देशों की संकल्पना में विकसित उक्त दोनों आन्दोलनों को कालान्तर में एकीकृत ढंग से विकसित किया गया। स्त्री पुरूष समानता की भावना से विकसित मानवाधिकारवादी आन्दोलन के विकास को तीन पीढ़ियों में बाँटा गया है। प्रथम पीढ़ी में मानव अधिकार वादी सार्वभौमिक घोषणापत्र एवं अन्य विशिष्ट प्रसंविदाओं को रखा जाता है। द्वितीय पीढ़ी में महिला के मानवधिकार सम्बन्धी दस्तावेज प्रारम्भ किये जाते है और तृतीय पीढ़ी में तृतीय विश्व के देशों के मानव अधिकार की बात की जाती है।

मानवाधिकार की इन तीन पीढ़ियों की यात्रा में सदियाँ बीतती गईं। परन्तु सदियों के बदलने के साथ बदल जाने की मंशा रखने वाली स्त्री की किस्मत 21वीं सदी के वैश्विक परिदृश्य में आज भी उतनी असहज, उतनी ही अनिश्चित और उतनी ही असमान है जितनी सदियों पहले थी। उत्कर्ष एवं विकास की बहुमंजिली इमारत पर चढ़ने के बाद भी बौना है एक आम स्त्री का कद। व्यक्ति व्यवस्था का चाल-चलन विकृत एवं विकराल होता जा रहा है और तथाकथित सभ्य समाज का

* एसोसिएट प्रोफेसर [लॉ स्कूल] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्वाँग असभ्यता भरे कुकृत्यों के कारण आये दिन अपना भोंड़ा सच उजागर करता है। शर्मसार होती मानवता एवं तार-तार होती संवेदना एक चुनौती है, समाज के उस वर्ग के लिये जिन्हें महसूस होती है उतनी ही पीड़ा जैसे कि मानो यह उनके स्वयं के साथ घटित कुकृत्य हो।

महिलाओं के मानवाधिकारों की बात करते समय महिला विशेष की विशिष्टताओं को भी समझ लेना चाहिए। एक अजन्मी बालिका, एक अबोध बालिका, एक तलाकशुदा महिला, एक विधवा महिला, एक वृद्ध महिला, एक अनुसूचित जाति या जनजाति की महिला, आदिवासी महिला, शरणार्थी महिला, अपराध से पीड़ित महिला, ग्रामीण महिला, शहरी महिला, गोरी महिला, काली महिला, देशी महिला, विदेशी महिला, शारीरिक, मानसिक अथवा सामाजिक रूप से विकलाँग महिला, शिक्षित महिला, अशिक्षित महिला, विवाहित महिला, सह-सम्बन्ध में रहने वाली महिला, घरों में काम करने वाली महिला, कॉल सेंटर पर काम करने वाली, एच0 आई0 वी संक्रमित महिला इत्यादि कुछ ऐसे वर्ग हैं जिनके लिए मानवाधिकार आज भी एक काल्पनिक ढाँचा मात्र है।

वर्तमान समय संक्रमण की विभीषिका का समय है। सबकुछ अव्यवस्थित है। परस्पर विरोधी है। सभी का सह-अस्तित्व सम्भव नहीं है। एक वर्ग की संतुष्टि दूसरे वर्ग की असंतुष्टि का कारक है। मातृत्व ग्रहण करने से गर्भपात कराने तक का अधिकार हो या एकल महिला अभिभावक से बच्चों के पालन-पोषण को सामाजिक कार्य माने जाने के अधिकार की बात हो; सब तरफ से उठ रही माँगों की मान्यता देते जाने की वजह से मानवाधिकार आज एक दोराहे पर खड़ा हो गया है वहीं दूसरी ओर भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और उस पर से विकृत पूँजीवाद के द्वारा लायी गई अश्लील संस्कृतियों के मकड़जाल ने खड़ी कर दी हैं कुछ नवीन चुनौतियाँ जिनसे उबर पाना एक नितान्त दुष्कर कार्य है।

इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत प्रपत्र के द्वारा यह प्रयास किया गया है कि मानवाधिकारवादी दन दस्तावेजों की पड़ताल कर उन्हें अंकित किया जाये जिनके माध्यम से कुछ सार्थक उम्मीदे की जा सकती हैं और न्यायपालिका के उन निर्णयों को रेखांकित किया जाये जिनमें महिला के मानवाधिकार की रक्षा हेतु प्रतिबद्धता दिखाई देती है।

ऐसी मान्यता रही है कि यदि मानव-अधिकार संरक्षित है तो सभी अधिकार संरक्षित हैं। मानवाधिकारों को सामान्य विधिक अधिकारों से दो बातों पर अलग किया जाता है। पहला, मानव अधिकार अर्जित नहीं किये जाते बल्कि स्वयमेव उसमें अन्तर्निहित होते हैं और दूसरा मानव अधिकार राज्य के विरूद्ध प्राप्त होते हैं। मूलभूत अधिकार नकारात्मक है एवं प्रतिबन्धित है जबकि मानवधिकार प्रतिबन्धित नहीं है।

मानव अधिकार solidarity rights हैं। यद्यपि कि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मौलिक अधिकारों एवं मानव अधिकारों से सम्बन्धित आन्दोलन एक साथ चल रहे हैं। जिनके संयुक्त विश्लेषण से महिला के मानव अधिकार संरक्षण की दिशा का अवलोकन किया जा सकता है।

जिस तरह से मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणापत्र अनुच्छेद एक के अन्तर्गत बताता है कि सब मनुष्य गरिमा एवं अधिकारों में जन्मतः समान हैं। उसी तरह भारतीय संविधान का अनुच्छेद-14 प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समान मानता है और उन्हें विधि के समान संरक्षण का अधिकारी बताता है।

किन्तु जिस प्रकार भारत के संविधान निर्माताओं ने यह महसूस किया था कि जब तक महिलाओं के लिए विशिष्ट विधि नहीं बनाई जायेगी तब तक उनके हितों की सुरक्षा नहीं हो पायेगी। अतः अनु0 15(3) के अनतर्गत राज्य को अधिकृत किया कि वह महिलाओं एवं बच्चों के हितों के रक्षार्थ विशिष्ट विधियाँ बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान के अनुच्छेद 253 में यह भी उपबन्धित किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकृत जिन घोषणापत्रों एवं अभिसमयों में भारत एक पक्षकार राज्य होगा, उनके अनुकूल विधियों का प्रवर्तन या विद्यमान विधियों में संशोधन करायेगा। घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण के सन्दर्भ में वर्ष 2005 का कानून इसी उपबन्ध का परिणाम माना जाता है। उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ का पूरा तंत्र इस बात के लिए प्रयत्नशील रहा है कि महिला हितों की सर्वाधिक संरक्षा हो सके, उनके मानव अधिकारों का समुचित पोषण हो सके और वह सही अर्थो में सशक्त बन सके। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से महिलाओं के लिए जो विशिष्ट उपबन्ध किये गये है वह इस प्रकार हैं :

वर्ष 1945-46; संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं समाजिक परिषद के द्वारा महिलाओं की प्रास्थिति पर गठित समिति, ताकि महिलाओं के राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों को संरक्षण प्राप्त हो सके। वर्ष 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणापत्र को अस्तित्व में लाना एवं वर्ष 1949 में साधारण महासभा द्वारा व्यक्तियों के दुर्व्यापार एवं वेश्यावृत्ति के शोषण के दमन हेतु अभिरक्षा।

वर्ष 1951 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के द्वारा स्त्री एवं पुरूष के लिए समान पारिश्रमिक अभिसमय का संग्रहण।

वर्ष 1952 में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय।

वर्ष 1957 में विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता पर अभिसमय।

वर्ष 1958 में रोजगार एवं व्यवसाय में भेदभाव निवारण सम्बन्धित अभिसमय।

वर्ष 1962 में विवाह हेतु सहमति, विवाह हेतु न्यूनतम आयु एवं विवाहों के पंजीकरण पर अभिसमय।

वर्ष 1967 में महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव के निराकरण का घोषणापत्र।

वर्ष 1976 में महिलाओं के लिए संयुक्त राष्ट्र विकास कोष की स्थापना।

वर्ष 1979 में महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेद-भाव के निराकरण पर अभिसमय।

वर्ष 1982 में महिलाओं के विरूद्ध भेद-भाव निराकरण हेतु समिति की स्थापना।

वर्ष 1992 में रियो सम्मेलन में महिलाओं की सम्पूर्ण विकास के संदर्भ में मुख्य भूमिका को मान्यता।

वर्ष 1993 में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा निवारण हेतु घोषणापत्र इत्यादि।

उक्त प्रयासों के साथ अब तक इतिहास में महिलाओं के लिए चार विश्व सम्मेलन भी आयोजित किये गये है।

प्रथम विश्व सम्मेलन, 1975 में मैक्सिको में आयोजित हुआ जिसमें 1976 से 1985 के प्रथम दशक में समता, विकास एवं शान्ति की बात कही गयी। 1980 में कोपेनहेगेन में दूसरे विश्व सम्मेलन में शिक्षा, रोजगार व स्वास्थ्य की माँग की गई। 1985 के तीसरे विश्व सम्मेलन में नैरोबी में कहा गया कि वर्ष 2000 ई0 तक क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ रणनीतियाँ अपनायी जाएंगी। 1995 बीजिंग में महिलाओं के अधिकार को मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई। ''प्लेटफार्म फॉर एक्शन'' बीजिंग सम्मेलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिसमें उन 12 जटिल क्षेत्रों को पहचान की गई है जो महिलाओं की प्रगति में मुख्य रूप से बाधक माने गये हैं- जैसे, शिक्षा, गरीबी, स्वास्थ्य, हिंसा, सशस्त्र संघर्ष, आर्थिक सह-भागिता, सत्ता में भागीदारी व निर्णय की अधिकारिता राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय तंत्र, मानव-अधिकार, संचार माध्यम, पर्यावरण एवं विकास तथा बालिका। सामाजिक एवं नीतिगत स्तर पर यह कहा गया कि सभी महिलाओं की पहुँच मातृत्व अवकाश, मातृत्व स्वास्थ्य चेतना, पोषाहार एवं शिक्षा तक होनी चाहिए।

बीजिंग सम्मेलन में ही यह महसूस किया गया कि प्रवर्तनकारी दृष्टिकोण अभी असन्तोषजनक है। मूल असमानता जो स्त्री एवं पुरूष के मध्य थी वह अब भी बनी हुई है और एक प्रमुख बाधा प्रतीत होती है। पुनः महिलाओं के मानव अधिकारों को विस्तृत करने के लिए 9 क्षेत्रों में करार किये गये।

प्रथम-महिला के अधिकार को मानव अधिकार मानने के तहत यह करार किया गया कि sexuality के मामले में उन्हें निर्णय लेने का अधिकार दिया गया। प्रजनन के सन्दर्भ मे उनकी इच्छा को महत्व देते हुये उत्पीड़न पर रोक की बात कही गई। *दूसरा,* सम्पत्ति के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में सरकारों को महिलाओं के लिए कानून बनाने को कहा गया है। *तीसरा,* बच्चों के पालन पोषण के सम्बन्ध में अभिभावकों के संयुक्त दायित्व की बात की गई।

चौथे, अवैध रूप से गर्भपात को रोकने के लिए विधि की आवश्यकता पर बल दिया गया और यह कहा गया कि परिवार नियोजन के उद्देश्य से गर्भपात को किसी भी हाल में बढ़ावा नहीं देना चाहिए। *पंचम,* मातृत्व को विभेद का आधार नहीं बनाना चाहिए और सबको मिलकर बच्चे की देखभाल करनी चाहिए। *छठें,* संस्कृत एवं धर्म के सम्बन्ध में महिलाओं को भी उतना ही महत्त्व देना चाहिए जितना पुरूषों को है। *सातवें,* बलात्संग को war - crime एवं जनवध की संज्ञा प्रदान करनी चाहिए, *आठवें,* जिन श्रम कार्यो के लिए महिलाओं को परिश्रमिक नहीं मिलता उनकी गणना करके उनके मूल्यों का आकलन करना चाहिए ताकि देश के कुल सकल उत्पाद में उसे शामिल किया जा सके। *नौवें,* महिलाओं की एक माँ के रूप में और एक व्यवसायी के रूप में उनके नेतृत्व क्षमता को मान्यता देना।

उक्त मानव अधिकार दस्तावेजों के अनुकरण, अनुपालन एवं प्रभावी क्रियान्वयन के लिए भारत सरकार ने कई विधियाँ बनायी है एवं न्यायपालिका ने सक्रियता दिखाते हुये उन पर अमल करने का प्रयास भी किया है। किन्तु मानवाधिकार उल्लंघन के दृष्टिकोण से न्यायिक सक्रियता के तहत किये जाने वाले प्रयास पर्याप्त नहीं माने जा सकते।

न्यायिक निर्णयों की श्रृंखला में कुछ ऐसे नवीनतम निर्णयों को प्रस्तुत प्रपत्र में शामिल किया गया है जिनके माध्यम न्यायालय की भूमिका का अवलोकन किया जा सकता है।

पेरिया स्वामी बनाम राज्य के वाद में (MANU/TN/0267/2014) मद्रास उच्चन्यायालय ने CEDAW को अनुच्छेद-6 का हवाला देते हुए mandamus writ की याचिका को यह कहकर अस्वीकृत किया कि महिलाओं के दुव्यार्पार के विरोध के लिए विधि ही एकमात्र पद्धति नहीं है। यदि कोई स्थानीय विधि CEDAW के प्रावधानों के साथ संघर्ष में नहीं है तो CEDAW के प्रावधान को बाध्यकारी माना जायेगा और किसी मंदिर या अन्य लोक स्थान पर रात के समय महिलाओं का डांस शो आयोजित नहीं किया जायेगा।

यह विनिश्चय इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि सर्वप्रथम पुलिस ने यह रोक लगाई थी की डांस का कार्यक्रम नहीं होगा अतः पुलिस के इस निर्णय को mandamus writ issue करके बदला नहीं जायेगा।

वहीं श्री बाबुल लश्कर बनाम त्रिपुरा राज्य के मामले में (MANU/TR/0027/2014) के मामले में FIR Lodge होने में देरी, रेप के आरोप को चिकित्सकीय साक्ष्य द्वारा सम्पुष्ट न होने के कारण यह नहीं कहा जायेगा कि अभियुक्त ने महिला के शील भंग का अपराध किया है (506 I PC)। महिला के द्वारा चलाये गये आरोप पूर्णरूपेण संदिग्ध है अतः संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जायेगा।

इन रे : सुओ मोटो कॉग्नीजेन्स (MANU/DE/4772/2013) के मामले में एक चौबीस वर्ष की शिक्षित महिला ने शादी के वादे के आधार पर सहमति से सम्बन्ध किया अतः इसे बलात्संग का मामला नहीं माना गया। लेकिन जज की व्यक्तिगत टिप्पणी की यदि कोई महिला ऐसा करती है तो यह उसका अपना जोखिम होगा और यह कि साधारणतया लड़कियाँ इस उम्र में भाग जाती है सम्बन्ध बनाती है और फिर बलात्संग का दावा करती हैं पर दिल्ली उच्चन्यायालय ने स्वतः संज्ञान लिया और इन दोनों टिप्पणियों को Expunge करने को कहा ताकि जब इसकी प्रमाणित प्रति जारी की जाए तब ऐसी शर्मनाक टिप्पणियाँ न हों।

स्टेट ऑफ केरल बनाम गोविन्द स्वामी के वाद में (MANU/KE/1234/2013) सरकारी यातायात साधनों में विशेष रूप में रेल में महिला यात्रियों की सुरक्षा हेतु प्रत्येक महिला कोच में दो सशस्त्र महिला सुरक्षाकर्मीयों को रखे जाने की बात कही गयी और न्यायालय ने अपने निर्णयों की एक प्रति भारतीय रेल के मुख्य अधिकारियों को भेजने के लिए भी कहा।

भारत में मानवाधिकार प्रवर्तन हेतु राष्ट्रीय मानव-अधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय बाल आयोग इत्यादि का गठन तो किया गया है किन्तु एक व्यक्ति के मानव - अधिकार प्रवर्तन से दूसरे के मानवअधिकार के उल्लंघन के चक्रव्यूह में उलझ चुके समाज के सम्मुख दिशाहीनता का संकट खड़ा हो गया है। अतः यह सुझाव देने का प्रयास प्रस्तुत प्रपत्र के माध्यम से किया गया है कि जब कभी महिला के मानव अधिकार के उल्लंघन की बात आती है तो उल्लंघन कर्त्ता के विरूद्ध कार्यवाही के पूर्व यह आवश्यक होना चाहिए कि पीड़ित को राहत पहुँचायी जा सके। उसके शारीरिक एवं मानसिक आघात से उसे उबारने के लिए, उसे समाज में समायोजित कराने के लिए, उसकी क्षतिपूर्ति की निश्चित व्यवस्था करने के लिए हर स्तर पर प्रयास होना चाहिए। प्रथमदृष्टया प्रयास पीड़ित का उपचार तत्पश्चात न्याय की गुहार हमारा मूलमंत्र होना चाहिए।

निष्कर्ष

मानवाधिकार सच्चे अर्थो में उस दिन चरितार्थ होगा जब एक मनुष्य को वास्तविक स्वतंत्रता की अनुभूति करायेगा। महिलाओं के मानवअधिकार संरक्षण की समस्या रावण के सिर जैसी है जितनी बार काटेंगें उतनी बार नया स्वरूप सामने आयेगा क्योंकि समाजरूपी नाभी में जहर व्याप्त है। अतः हमारा प्रयास तब तक एकांगी रहेगा जबतक हम उस बीज को समाप्त करने की नीति नहीं बनाते है।

आवश्यकता इस बात की भी है कि हम मानवअधिकार उल्लंघन के उन मामलों को भी उजागर करें जो सीधे तौर पर मानवाधिकार उल्लंघन के मामले नहीं प्रतीत होते। मसलन, जब एक व्यक्ति अपनी दो मासूम बेटियों और पत्नी की हत्या करने के बाद खुदकुशी कर लेता है और संयोगवश उसकी एक बेटी ननिहाल में रहने के कारण बच जाती है। तब ऐसी बच्ची के असमय कंगाल बचपन को मानवाधिकार उल्लंघन का मामला मानते हुए मानवाधिकारवादी संगठनों को सक्रिय भूमिका निभाते हुए यथोचित उपचार दिलाना चाहिए।

समाज को स्वयं जागरूक होकर महिला वर्ग के मानवअधिकार की रक्षा करने के लिए कृतसंकल्पित होना पड़ेगा। सामाजीकरण की प्रक्रिया में सुधार की जगह शुद्धिकरण अभियान चलाना पड़ेगा और समाज की सूक्ष्मत्तम इकाई मनुष्य को महिला को एक स्वायत्तशासी महिला मानना होगा। इन सब के बिना हम महिला के मानवअधिकार संरक्षण की सुखद कल्पना नहीं कर पायेंगे।

सन्दर्भ सूची

CLARK B (1991); The Vienna Convention, Reservations Regime and the Convention on Discrimination against Women, American Journal Of International Law.

CAROL SMART (1989); Feminism and the Power of Law, Routledge, London.

CHANDRA TALPADE MOHANTHY (1988); *"Under Western Eyes; Feminist Scholarship and colonial Discourses,"* 30 Feminist Review.

GOKULESH SHARMA (2008); Feminist Jurisprudence in India, Women's Right, Deep & Deep Publications Pvt. Ltd.

NIVEDITA MENON (1998); *"Rights, Law and Feminist Politics: Rethinking our Practice ",* in Swapna Mukhopadhyay (ed.) in the name of Justice, Manohar, New Delhi.

SINDISO NGABA (1995); CEDAW : Eliminating Discrimination against Women, Agenda Feminist Media

मानव अधिकार अंतराष्ट्रीय प्रपत्रों का संकलन, खण्ड-एक (प्रथम-भाग) सार्वभौमिक प्रपत्र, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत, प्रथम संस्करण, 2006

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,74-77
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 13 फरवरी 2016

लौह तकनीक से सम्बन्ध विचार द्वितीय नगरीकरण के संदर्भ में लोहे की भूमिका

डॉ. जेबा इस्लाम*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *लौह तकनीक से सम्बन्ध विचार द्वितीय नगरीकरण के संदर्भ में लोहे की भूमिका* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *जेबा इस्लाम* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

लोहे का आविष्कार मानव के प्रगति के विकास के इतिहास में उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। विश्व के औद्योगिक विकास का मूलाधार लोहा ही है। उत्खनन में अनेक धातुओं की तरह भारत से लोहे की सामग्रियां भी प्राप्त हुई है। लोहा एक कठोर धातु है, जिससे मनुष्य अपने लिये कठोर भूमि, वन, आक्रमक पशुओं और मनुष्यों से उत्पन्न संकट को टाल सकता था। कठोर भूमि को फाल या टुकडों की सहायता से तोड़ कर वह कृषि कार्य करने तथा इससे बनी सामग्रिया और उपकरणों द्वारा उत्पादन को विकसित करने में सहायता किया होगा। इस प्रकार सभ्यता का विकास जो प्रथम नगरीकरण के बाद थोडा रूका था वह लोहे के प्रयोग द्वारा अब नवीन गति से विकसित हुआ। सिन्धु घाटी की सभ्यता कास्यं कालीन है, और उसके बाद भारत में लौह युग का प्रारम्भ होता है।

लौह तत्व से मनुष्य लौह युग के बहुत पहले से परिचित था। हेमेटाइट जिसमें लौह तत्व की प्रधानता है, रंग के लिये पाषाण काल से ही प्रयुक्त होता रहा है। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार लोहे का जान किसी न किसी रूप में मेसोपोटामिया[1] में 3000 ईसा पूर्व के लगभग था, सम्भवतः उसे गलाने की तकनीक का ज्ञान भी उन्हें 2800[2] ई0 पूर्व तक हो गया था। प्रश्न यह उठता है कि, इसका प्रंयोग सर्वप्रथम कहां हुआ था, जहां से यह किस क्रम में चलकर दूसरे देशों में पहुंचा ?

इतिहासकार आर्मेनियन[3] पहाड़ी में निवास करने वाली एक बर्बर जाति जो मितानी शासकों के शासित क्षेत्रों में रहती थी, को सर्वप्रथम लोहे के प्रयोग का श्रेय देते हैं; किन्तु हिंत्ती (1800 -1200) ने सर्वप्रथम प्रयोग किया। परन्तु अब इस सम्बन्ध में नवीन साक्ष्यों के मिल जाने के बाद यह मत मान्य नहीं है। नोह (राजस्थान) तथा इसके दोआब क्षेत्र से लोहा (Black and redware) के साथ मिलता है जिसकी तिथि 1400 ईसा पूर्व है। कुछ स्थलों जैसे भगवानपुरा, माण्डा, दघेरी,

* प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आलमगीरपुर रोपड आदि से चित्रित धूसर भाण्ड सैंधव सभ्यता के पतन के साथ लगभग ई0 पूर्व 1700 मिलते है जिनका सम्बन्ध लोहे से माना गया है।

लोहे का सर्वप्रथम प्रयोग युद्ध के निमित हुआ था, इसलिये इसकी शोधन प्रणाली को गोपनीय रखा गया था। 1200 ईसा पूर्व के आस-पास हित्ती सभ्यता के पतन के बाद लौह तकनीक का प्रचार-प्रसार आस-पास के क्षेत्रों में शीघ्रता के साथ फैलने लगा था इसके प्रभाव के फलस्वरूप ताम्र व कांस्य संस्कृतियाँ समाप्त होने लगी। ईरान[4] में लगभग इसी समय प्रथम लोहे के प्रचलन के प्रमाण उपलब्ध हुये। उल्लेखनीय है कि थाईलैण्ड के बानैची' नामक पुरास्थल की खुदाई से स्तरीकृत संदर्भो में ढला हुआ लोहा मिलता है। जिसकी तिथि ईसा पूर्व 1600-1200 के मध्य निर्धारित की गयी। इस प्रमाण से लोहे पर हित्ती एकाधिकार की बात मिथ्या सिद्ध हो जाती है।

ह्वीलर[5] की मान्यता है कि भारत में सर्वप्रथम लोहे का प्रचलन ईरान के हरवामनी शासकों द्वारा किया गया था। कुछ यूनानियों को इसका श्रेय देते है। स्वयं यूनानी साहित्य इस बात की ओर इंगित करता है कि भारत वासियों को सिकन्दर के पहले से ही लोहे का ज्ञान था।

भारतीय लुहार ऐसे उपकरण बनाने में निपुण थे, जिसमें कभी जंग नहीं लगता था

ऋग्वेद[6] भी तीरों तथा भालों की नोको एवं चर्म (कवच) का उल्लेख करता है, एक स्थान पर कवच तथा शत्रुओं से सुरक्षित लौह दुर्ग बनाने के लिये सोम का आह्वान किया गया है। गालव नामक प्रसिद्ध श्रृषि की चर्चा है, जिसने पांचाल नरेश दिवोदास को दाशराज्ञ युद्ध में लोहे की तलवारे देकर सहायता की थी। कन्नौज नरेश अष्टक का उल्लेख है, जिसने अपने पुत्र का नाम ''लौही'' रखा था।

हडप्पा सभ्यता से प्राप्त उत्तम कोटि के तांबे तथा कांसे के उपकरण और गंगा घाटी से प्राप्त तामृनिधियों व गैरिक मृदभाण्डों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन भारतीयों को तकनीकी ज्ञान अत्यन्त विकसित था। सम्भव है, कि गंगा घाटी के तामृ धातु कर्मी ही लोहे के आविष्कारकर्ता रहे हो क्योंकि लोहे की दो बड़ी निधियाँ माण्डी (हिमाचल)[7] तथा नरनौल (पंजाब) उत्तर भारत में ही स्थित है, गोवर्धन राम शर्मा इसे चित्रित धूसर पात्र परम्परा[8] से सम्बन्धित करते हैं, जो उनके अनुसार आर्यो के साथ आई। ए0आर0 बनर्जी की मान्यता है कि चित्रित धूसर मात्र परम्परा संस्कृति के लोगों ने ही भारत में लोहे का अविष्कार किया। आद्यवैदिक काल[9] से ईसवी सन् के प्रारम्भ तक लोहे की उपलब्धता के निरन्तर प्रमाण मिलते हैं।

उत्तर वैदिक काल[10] के साहित्यिक साक्ष्य तथा चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति के साक्ष्यों से प्राप्त लौह उपकरण यह संकेत देते हैं कि लगभग 900 ई0 पूर्व से 600 ई0 पूर्व के मध्य पशुपालक एवं खानाबदोश समाज धीरे कृषि कार्य एवं स्थायी समाज में परिवर्तित होते लगा।

बौद्धग्रन्थ दीघनिकाय[11] में जहाँ एक ओर कृषकों की सहायता का उल्लेख मिलता है, वही अंगुतर निकाय में कृषि योग्य भूमि का उत्तम, मध्यम तथा निम्न कोटियों में वर्गीकरण किया गया है।' पाणिनीकृत अष्टाध्यायी में लोहे के हल व फाल के लिये 'अमीविकार कुशी' शब्द का प्रयोग मिलता है। उत्खनन से एटा जनपद के जखेडा[12] से लोहे का फाल साक्ष्य प्रकाश में आया। इसी प्रकार चिंरराद, रोपण[13] वैशाली तथा कौशाम्बी से भी लौह निर्मित फाल के पुरावशेष प्राप्त हुये। बौधायन में ''कौद्दलिक' शब्द आया है, कौददलिक उन्हें कहा गया जो कुदाल से खेती करके अपना जीवन निर्वाह करते थे।

उत्तर वैदिक काल में हमें इस धातु के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। अथर्ववेद[14] में 'लोहायस' तथा 'श्याम अयस' शब्द मिलता है वाजसनेयी संहिता[15] में लौह तथा श्याम शब्द मिलते हैं। लौह 'शब्द को तांबे के अर्थ में तथा श्याम को लोहे के अर्थ में ग्रहण किया गया। काठक संहिता में 24 बैलों द्वारा खींचे जाने वाले भारी हलों का उल्लेख मिलता है। इसमें अवश्य ही लोहे की फाल लगाई गयी होगी। वैदिक साहित्य[16] में अयस, श्याम, तथा लोहा शब्द मिलता है। ऋग्वेद के परवर्ती साहित्य संहिता, ब्राह्मण उपनिषद आदि ग्रन्थों में अयस के पहले दो प्रकार के विश्लेषण प्रयुक्त मिलता है। 'लोहित अयस' व कृष्ण अयस'। कृष्ण अयस निश्चित रूप से लोहे के लिये प्रयुक्त हुआ होगा। अर्थववेद में लोहे की फाल तथा ताबीज का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

लोहे सम्बन्धी साहित्यिक[17] उल्लेखों की पुष्टि पुरातात्विक प्रमाणों से भी हो जाती है। आलमगीरपुर, अतरंजीखेड़ा, मथुरा, रोपण, श्रावस्ती, कम्पिल्य आदि की खुदाइयों से लौह युगीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए, इस काल के लोग एक विशिष्ट

प्रकार के बर्तन प्रयोग करते थे, जिसे चित्रित धूसर मृदभाण्ड[18] कहा जाता है, Painted Grey ware इन स्थानों से लोहे के औजार मिले हैं। अतरंजी खेड़ा से धातुशोधन करने वाली भट्टियाँ मिलती हैं। इस संस्कृति का समय ईसा पूर्व 1000 के लगभग निर्धारित किया गया है। पूर्वी भारत में सोनपुर, चिरांद आदि स्थानों से छेनी, कैंची आदि मिले हैं। मध्य भारत से एरण[19], नागदा, उज्जैन, कायथा[20] आदि से भी लौह उपकरण मिलते हैं। दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों से वृहत्पाषणिक कब्रे प्राप्त होती हैं।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में गंगा घाटी के नगरों में आपस में व्यापारिक लेन-देन तथा सांस्कृतिक समरूपता व्याप्त थी। नगरों में रहने वाले लोग NBPW (उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा का उपयोग करते थे। यह उच्च कोटि की मृदभाण्ड परम्परा थी। इन्हें 'खरीपा नाम से सम्बोधित करते थे।

लौह प्रौद्योगिकी के विकास ने कला कौशल के बहुत से नये आयामों को जन्म दिया। दीर्घ निकाय तथा मज्झिम निकाय में रंगसाज तथा सूत्रग्रन्थों एवं जातकों में 'रजक' तथा 'रजकवीथि' का उल्लेख इस काल में वस्त्रोद्योग में आयी प्रगति का द्योतक है। जातकों में धातुकर्मी करीगर जिन्हें 'कर्मार' कहा जाता था। लौह धातु से उपकरण बनाने वाले लोहार प्राय 'काम की तलाश में गाँव-गाँव घूमते थे। (कम्मा राणा यथा डक्का अतो इनायति नो बहि) गंगाघाटी के उत्तरी चमकीली ओपदार बर्तन, बाण, छेनी, फलक, कटार, चक्र, हसिया, खुरपी, कहाड़ी, कील, दीपक, हल तथा फाल आदि की प्राप्ति इस काल के लौह प्रौद्योगिकी के विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

नगरीकरण को गतिशील बनाने में सिक्कों का सर्वप्रथम प्रचलन विशेष सहायक सिद्ध हुआ। ये सिक्के गंगाघाटी के NBPW मृदभाण्ड संस्कृति के मध्यवर्ती स्तरों से प्राप्त होते हैं। गंगा घाटी नगरों के उत्खनन में उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति के मध्यवर्ती स्तरों से पकी ईंटो से बनाये गये भवनों के अवशेष मिले हैं। इनमें रक्षा प्राचीर तथा परिखा के अवशेष हमें हस्तिनापुर[28], कौशाम्बी, राजघाट, उज्जैन, बाहल, मथुरा, अतरंजीखेड़ा से प्राप्त हुए। दक्षिणी पूर्वी उत्तर प्रदेश में नवीन पुरातात्विक अनुसंधानों से लोहे की प्राचीनता पर नया प्रकाश डाला। ये प्रमाण इलाहाबाद जनपद के झूँसी, सोनभद्र, जनपद के राजनल का टीला[21], चन्दौली के मल्हार[22] से प्राप्त हुआ।

इस प्रकार विविध साक्ष्यों पर विचार करने के उपरान्त लोहे की प्राचीनता ऋग्वैदिक काल[23] तक ले जायी जा सकती हैं किन्तु वास्तविक लौह युग का प्रारम्भ उस समय से हुआ जब मनुष्य ने इस धातु का प्रयोग जंगलों की कटाई कर भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा बस्तियां बसाने के लिए करना प्रारम्भ कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]संकालिया एच0डी0- *''प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान''*

[2]आलचिन टी0आर0 एण्ड चक्रवर्ती डी0के0- *''ए सोर्स बुक आफ इण्डियन आर्कियोलॉजी''*

[3]भट्टाचार्य डी0के0- *''ओल्ड स्टोन ऐज टूल्स एण्ड देअर तकनीक''*

[4]अग्रवाल वासुदेवशरण- *इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनी,* पृष्ठ संख्या 198-199

[5]*द्रष्टव्य सी0एच0आई0,* भाग-1 अ0 8, पृष्ठ संख्या 203

[6]*जातक 6,* पृष्ठ संख्या 189

[7]थपवल्याल के0के0- *''सिन्धु सभ्यता'',* पृष्ठ संख्या 1-176

[8]*कल्चरल हेरिटेज III*, पृष्ठ संख्या 80

[9]*वैदिक इन्डेक्स,* खण्ड-1 पृष्ठ संख्या 472

[10]*ऋग्वैदिक इण्डिया,* पृष्ठ संख्या 187-199

[11]*वैदिक एज,* पृष्ठ संख्या 366

[12]*द्रष्टव्य व्हीलर-* ''दि इण्डस सिविलाइजेशन'', पृष्ठ संख्या 86

[13]*द्रष्टव्य,* पृष्ठ संख्या 35

[14]*द्रष्टव्य, बी0बी0 लाल-* ''पुरातत्व'', संख्या- 4, 1970-71, पृष्ठ संख्या 1-31

[15]दास0 ए0सी0- *ऋग्वैदिक इण्डिया,* जिल्द-1, कोलकाता

[16]सम्पूर्णानन्द- *''आर्यो का आदिदेश,''* इलाहाबाद वि सं0 2010, पृष्ठ संख्या 29

[17]*आर0 बिफाल्ट;* 1962, पृष्ठ संख्या 59

[18]*ऋग्वेद,* 2.27.9; 5.3.52; 6,66.2

[19]सिंह यू0वी0 (1962)- *''एक्वेंशन ऐट एरण'',* जर्नल आफ मध्य प्रदेश इतिहास परिषद, नं0-4, पृष्ठ संख्या 41-44

[20]तिवारी, आर0 सिंह, जी0 सी0 एण्ड श्रीवास्तव -*''प्रागधारा'',* नं0-5, पृष्ठ संख्या 55-131

[21]*द्रष्टव्य प्रागधारा,* नं0 -7, पृष्ठ संख्या 77-95

[22]तिवारी, आर0आर0; श्रीवास्तव, के0 एण्ड सिंह, के0के0 (2000)- *एक्वेशन ऐट मल्हार,* प्रा0 धारा- 10, पृष्ठ संख्या 69-98

[23]*प्रागधारा,* नं0-10, पृष्ठ संख्या 23-30

[24]बनर्जी, एन0आर0 (1965)- *''आयरन ऐज इन इण्डिया''* नई दिल्ली

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,78-82
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 फरवरी 2016

जीवन व शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य के लिये विटामिन की उपयोगिता

प्रो. अनिता कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जीवन व शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य के लिये विटामिन की उपयोगिता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अनिता कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

"विटामिन" शब्द का प्रयोग 1912 ईस्वी में सर्वप्रथम *फंक* नामक वैज्ञानिक ने किया था। चावल की ऊपरी हिस्से से प्राप्त तत्व को "बेरी-बेरी" के रोगी को खिलाने से लाभ होता है। जीवन के लिये आवश्यक सुरक्षात्मक तत्व होने के कारण ही इसका नाम "Vitamine" दिया गया। "Vitamine" दो शब्दों से मिलकर बना है- "Vital+Amines"। जीवन [Vital] के लिये आवश्यक तथा बेरी-बेरी विरोधी तत्व [Preventing element] में नाइट्रोजन [amine] की उपस्थिति के कारण ही यह नाम [Vitamine] अधिक उपयुक्त समझा गया। बाद में, इस अवधारणा को गलत पाया गया क्योंकि पैलाग्रा, स्कर्वी, रिकेट्स आदि का सफलतापूर्वक उपचार करने वाले विटामिनों में नाइट्रोजन बहुत कम मात्रा में पाया गया। अत: विटामिन शब्द के अन्त का "ई" पृथक् कर दिया गया।

विटामिन के अभाव में अन्य पौष्टिक तत्व भी शरीर को लाभ नहीं पहुँचा पाते। शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य के लिये जिस प्रकार कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन, वसा व खनिज लवण आवश्यक है उसी प्रकार इनकी [विटामिन] उपस्थिति अनिवार्य है। इनकी [विटामिन] आहार में कमी से विभिन्न *हीनता जनित रोग* हो जाते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर एक उचित परिभाषा "विटामिन" के संदर्भ में कही जा सकती है- "विटामिन एक प्रकार के कार्बनिक वृद्धि हेतु बहुत आवश्यक होती है, ये शरीर के नियामक की भांति कार्य करते हैं तथा शरीर की उपापचयी क्रियाओं पर नियंत्रण रखने वाले तत्व हैं। यदि ये तत्व भोजन में न प्राप्त हों, तो विभिन्न हीनता जनित रोग हो जाते हैं।"

विटामिन्स के गुण

1. विटामिन्स प्राणी तथा वनस्पति दोनों में पाये जाते हैं। मुख्यत: ये वनस्पति से प्राप्त किये जाते हैं।

* गृह-विज्ञान विभाग, बाबा भूतनाथ कॉलेज वेस्ट चम्पारन (बिहार) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

2. इनकी दैनिक आवश्यकता बहुत कम होती है लेकिन ऐसी स्थितियाँ जैसे- गर्भावस्था, दूध का स्रवण, बाल्यावस्था- जिनमें चयापचय की क्रियायें तेज गति से होती हैं-विटामिन्स की दैनिक आवश्यकता अधिक हो जाती है।
3. कुछ विटामिन्स जैसे वसा विलेय विटामिन्स, विटामिन-सी, को छोड़कर इनका शरीर में संग्रहण नहीं होता है।
4. ये शक्तिशाली कार्बनिक पदार्थ होते हैं।
5. कुछ विटामिन जैसे- "ए" तथा "डी" का शरीर में संश्लेषण होता है।
6. विटामिन्स पाचन विधि में नष्ट नहीं होते हैं। वे उसी रुप में अवशोषित कर लिये जाते हैं।

सर्वप्रथम *मैकालम* नामक वैज्ञानिक ने सन् 1915 ईस्वी में विटामिन्स [ए, बी, सी, डी, ई, के] की खोज की। उसने पाया कि कुछ विटामिन जल में तथा कुछ वसा में घुलनशील होते हैं।

जल में घुलनशील विटामिन

जल में घुलनशील होने के कारण आवश्यकता से अधिक शरीर में पहुँचने पर जल के साथ घुलित अवस्था में उत्सर्जित कर दिये जाते हैं। अत: इनकी अधिकता के प्रभाव से दुष्प्रभावित नहीं होना पड़ता। इस वर्ग के अन्तर्गत विटामिन "बी" व "सी" आते हैं :

विटामिन "बी" काम्प्लैक्स; यह विटामिन एक न होकर कई विटामिनों का समूह है। इनकी रासायनिक संरचनाओं व कार्यों में विभिन्नता होती है। पहले बेरी-बेरी रोग जिस विटामिन की कमी से होता था उसी को विटामिन बी कहा जाता था। धीरे-धीरे ज्ञात हुआ कि विटामिन बी एक ही पदार्थ न होकर अनेक यौगिकों का समूह है, इसीलिये इसे विटामिन-बी काम्प्लैक्स नाम दिया गया।

अब यहाँ पर विस्तार से चर्चा करेंगे-

जल में घुलनशील विटामिन [बी काम्प्लैक्स]; यह एक विटामिन न होकर कई विटामिनों का समूह है। इन सबको सम्मिलित रुप से बी-काम्प्लैक्स कहते हैं :

i. विटामिन "बी$_1$" या थायमिन : थायमिन विटामिन की खोज बेरी-बेरी रोग के उपचार ढूँढते समय हुई। नेवी के यात्रियों को यह रोग बहुत होता था क्योंकि उनके आहार में शाक-सब्जियों का अभाव होता था। सन् 1885 में इस बीमारी को सर्वप्रथम *टकाकी* नामक डॉक्टर द्वारा पहचाना गया। जबकि सन् 1926 में *डोनथ व जैनसन* चावल की ऊपरी परत में से विटामिन को पृथक् किया जिससे बेरी-बेरी रोग का सफलतापूर्वक उपचार किया।

मुक्त थायमिन एक क्षारीय पदार्थ है जिसमें एक पिरिमिडीन तथा एक थायोजोल रिंग होती है। थायमिन हाइड्रोक्लोराइड के रुप में होता है। ये दोनों रिंग मिथाइलीन ब्रिज द्वारा जुड़ी रहती है। थाइमीन का अणुसूत्र $C_{12}H_{18}Cl_2N_4OS$ होता है जिसमें दोनों क्लोरीन परमाणु आयनिक रूप में उपस्थित होते हैं। सोडियम सल्फाइड (Na_2SO_3) कि क्रिया द्वारा यह अणु पूर्णरूपेण दो अणुओं में विभक्त होता है। इन दोनों अणुओं में थायमिन के सभी कार्बन व नाइट्रोजन परमाणु हैं तथा इन दोनों अणु संरचना द्वारा थायमिन की अणु संरचना सिद्ध होती है।

प्राप्ति के स्रोत: अंकुरित अनाज व दाल, खमीर व सूखे मेवे, थायमिन प्राप्ति के अच्छे स्रोत हैं। मांस, अण्डा, दूध व दूध से बने पदार्थों में भी यह विटामिन उचित मात्रा में मिल जाता है।

ii. विटामिन "बी$_2$" या राइबोफ्लेविन : विटामिन "बी" की खोज के समय माना गया था कि बेरी-बेरी रोग को दूर करने वाला एक ही विटामिन होगा, परन्तु बाद में ज्ञात हुआ कि बेरी-बेरी को दूर करने वाले एक नहीं वरन् दो विटामिन होते हैं- एक ताप के प्रति अस्थिर अर्थात् बिटामिन बी$_1$, जो बेरी-बेरी को वास्तव में दूर करता है तथा दूसरा ताप के प्रति स्थिर विटामिन बी$_2$, जो चूहों की वृद्धि करता है।

राइबोफ्लेविन, यह एक पीले-नारंगी रंग का फ्लेविन डेरिवेटिव होता है जो दो भागों डी-रीबीटोल और एक हेटेरोसाइक्लिक पदार्थ आइसो-अलेफ्लोजीन से मिलकर बनता है।

प्राप्ति के स्रोत : राइबोफ्लेविन विभिन्न वानस्पतिक व जान्तव भोज्यों में उपस्थित रहती है, परन्तु यीस्ट, मांस, मछली, दूध व अनाजों में इसकी अधिक मात्रा पायी जाती है। यह जन्तुओं के यकृत में सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। अनाज में इस तत्व की मात्रा कम ही होती है।

iii. नायसिन या निकोटिनिक अम्ल : इसे निकोटिनिक एसिड, निकोटिनामाइड, नियासिनामाइड आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। इस विटामिन कीखोज "पैलाग्रा" रोग के कारण हुई। सर्वप्रथम अमेरिका के वैज्ञानिक *गोल्ड बर्गर* ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि

कुत्तों में काली जीभ के लक्षण मनुष्य में उत्पन्न पैलाग्रा के समान ही है। पैलाग्रा में व्यक्ति की त्वचा का रंग भ-ा हो जाता है, मस्तिष्क में विकार आने से उसकी मृत्यु हो जाती है।

प्राप्ति के साधन: जन्तुओं में- सूखा खमीर इसकी प्राप्ति का अनुपम स्रोत है। मांस व मछली में भी यह पाया जाात है। *वनस्पति में-* अनाज, दाल व सूखे मेवों में यह पाया जाता है। मूंमफली में यह बहुतायत से मिलता है।

iv. विटामिन "बी$_6$" या पायरीडॉक्सिन : इसे रैट एण्टीडर्मेटिटिस फैक्टर भी कहते हैं क्योंकि 1934 में ग्योर्गी नामक वैज्ञानिक ने चूहों के डर्मेटिटी रोग को इस विटामिन को देकर ठीक किया था। स्टीलर ने 1939 में इसे संश्लेषित किया। इस संश्लेषित रुप को पायरीडॉक्सिन कहते हैं। इसकी कमी शरीर में प्राय: कम ही रहती है। यह सफेद, स्वाद में कसैला व क्रिस्टलीय विटामिन है। पानी में घुलनशील होता है। ताप व सूर्य की किरणों में नष्ट हो जाता है।

प्राप्ति स्रोत : सूखी खमीर, गेहूँ के बीजांकुर, मांस, यकृत, दालें, सोयाबीन, मूंमफली, अण्डा, दूध, दही, सलाद के पत्ते, पालक आदि इसके प्रमुख स्रोत हैं।

v. पेण्टोथेनिक एसिड : इसे एण्टी डर्मेटिटिस फैक्टर भी कहते हैं। 1933 में *विलियम्स तथा साथियों* द्वारा इस विटामिन को क्रिस्टलीय रूप में प्राप्त किया तथा 1940 में *स्टिलर* द्वारा संश्लेषित किया गया। प्राणी पोषक में इस विटामिन की उपयोगिता *ज्यूक्स तथा वूली* द्वारा स्थापित की गई। यह भी पानी में विलेय, सफेद, गन्धहीन, हल्का कसैला स्वाद का विटामिन है। अम्ल, क्षार व ताप की क्रिया से शीघ्र ही क्षतिग्रस्त हो जाता है।

प्राप्ति स्रोत : सूखे खमीर, यकृत, चावल की ऊपरी परत, गेहूँ का छिलका तथा अण्डे के पीले भाग, दूध, शकरकन्द में मुख्य रुप से पाया जाता है।

vi. बायोटिन : इसे विटामिन "एच" भी कहते हैं। 1916 में *बेटमेन* ने बताया कि कच्चे अण्डे में एक क्षारीय प्रोटीन एवीडीन होता है जो बायोटीन को नष्ट कर देता है लेकिन पके अण्डे में ऐसा नहीं होता है। अत: पके अण्डे खिलाने पर अण्डे की सफेदी का रोग नहीं होता है।

प्राप्ति स्रोत : सामान्यत: दालें, नट्स, खमीर आदि में पाया जाता है। यकृत, अण्डा, मांस, मूंमफली, सोयाबीन आदि इसके प्रमुख स्रोत है।

vii. फोलिक एसिड : फोलिक शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द *फोलियम* से हुई जिसका अर्थ पत्ता है। यह विटामिन सबसे पहले पालक के पत्तों से निकाला गया था। इसकी रासायनिक संरचना 1945 में दी गई है।

प्राप्ति स्रोत : खमीर, गेहूँ व चावल की ऊपरी परत, दाल, हरी पत्ते वाली सब्जियों में पाया जाता है।

viii. कोलीन : इसे सबसे पहले सन् 1934 में *बेस्ट व हन्ट्समैन* ने प्रतिपादित किया। यह एक महत्वपूर्ण मेटाबोलाइट है। यह शरीर द्वारा संश्लेषित किया जाता है। यह फास्फो लिपिड्स का एक प्रमुख अवयव है। यह तन्त्रिका-तंत्र के लिये आवश्यक होता है। यह एक तरह का रंगहीन रवेदार पदार्थ होता है। यह पानी व अल्कोहल में घुलनशील होता है।

प्राप्ति के स्रोत : यकृत, गुर्दे, साबुत अनाज, दालें, मांस, दूध व अण्डे के पीले भाग में प्रमुख रूप से पाया जाता है।

ix. इनोसीटॉल : जान्तव व वानस्पतिक ऊतकों में यह विटामिन पाया जाता है। मनुष्य में इसकी कमी से अभी तक किसी रोग के होने की जानकारी नहीं मिली है। इसकी कमी से चूहों में गंजापन आ जाता है। इसकी आहार में पर्याप्त मात्रा लेते रहने पर यकृत में अधिक वसा एकत्रित नहीं हो पाती। इसे माउस एण्टी एलोपेसिया फेक्टर भी कहते हैं। इस विटामिन की खोज *वूली* ने की।

प्राप्ति के स्रोत : यह सभी जान्तव व वानस्पतिक खाद्य पदार्थों से प्राप्त हो सकता है। विभिन्न फल, सब्जियाँ, साबुत अनाज, यीस्ट, दूध, यकृत इसके अच्छे साधन हैं।

x. पैराअमीनो बैंजोइक एसिड : PABA चूहों की सामान्य वृद्धि तथा दुग्ध स्रावण के लिये आवश्यक है। इसके अभाव में काले चूहे के बाल सफेद हो जाते हैं। यह एक रवेदार पदार्थ होता है। एक एल्कोहल में पूर्ण प्रभावित करता है। यह इन्सुलिन हार्मोन की क्रियाशीलता को बढ़ाता है तथा थॉयराइड हार्मोन के निर्माण को कम करता है।

प्राप्ति के स्रोत : यह जान्तव व वानस्पतिक जगत में मुक्त रुप तथा संयुक्त रूप से मिलता है। इसकी प्राप्ति यकृत, दूध, यीस्ट, गेहूँ का भ्रूण, केला आदि से होता है।

विटामिन "सी"; स्कर्वी नामक रोग नाविकों को दीर्घकालीन समुद्र यात्रा के दौरान विशेष रुप से हो जाता था। स्कर्वी रोग के कारण व उपचार ढूँढने के फलस्वरुप ही विटामिन सी का आविष्कार हुआ। सन् 1928 में *जैट ज्योर्जी* व 1932 में *वाग व किंग* आदि वैज्ञानिकों ने सन्तरा, नीबू व अन्य इसी प्रकार के फलों से विटामिन "सी" के क्रिस्टल अलग किये। स्कर्वी रोग को दूर करने के कारण इस विटामिन का नाम एस्कार्बिक एसिड पड़ा।

प्राप्ति के स्रोत [क] वनस्पति से; यह आंवला व अमरुद में मुख्य रुप से होता है। इसके अतिरिक्त ताजे, रसीले व खट्टे फलों जैसे- नीबू, नारंगी व सन्तरा में यह प्रचुर मात्रा में मिलता है। अंकुरित अनाजों व दालों में भी यह उपस्थित रहता है।

[ब] जन्तुओं से; दूध व मांस में इसकी अल्प मात्रा रहती है।

स्कर्वी रोग होने से प्रभाव

विटामिन सी की कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जना, वृद्धि रुक जाना व संक्रमण जल्दी लगना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। बच्चों व प्रौढ़ों में इसके अलग-अलग लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। स्कर्वी रोग होने से निम्न प्रभाव पड़ सकता है :

बच्चों में स्कर्वी रोग; बच्चों में इसकी कमी से टांगों व जांघों में दर्द रहता है तथा जोड़ों में दर्द रहता है। बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। यदि दांत निकल आये हैं तो उनसे रक्तस्राव होने लगता है।

अस्थियों के मज्जा वाले भाग का विकास नहीं हो पाता। सांस लेने पर पसलियों में पीड़ा होती है तथा शरीर नीला पड़ जाता है, बच्चा गोद में भी रोता है। अधिक दिनों तक कमी बने रहने से मृत्यु तक हो जाती है।

वयस्कों में स्कर्वी रोग; वयस्कों में स्कर्वी रोग होने से कमजोरी वजन में कमी, हाथ-पैरों में दर्द आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

प्रौढ़ों में स्कर्वी रोग; इसकी कमी से प्रौढ़ों की अस्थियों, जोड़ों व मान्सपेशियों में दर्द रहता है। मसूड़ों से खून बहने लगता है। दांत कमजोर होकर गिरने लगते हैं। जरा सी चोट लगने पर रक्त काफी मात्रा में निकलता है और घाव सूखने में समय लगता है।

स्कर्वी रोग का उपचार

स्कर्वी की प्रारम्भिक अवस्था में कुछ ही दिनों में सौ-दो सौ मिग्रा, विटामिन सी सन्तरे के रूप में देने पर उपचार हो जाात है। दीर्घकालीन स्कर्वी में समय लगता है।

वसा में घुलनशील विटामिन

इस वर्ग के कुछ विटामिन शरीर में संश्लेषित हो जाते हैं परन्तु यह मात्रा शरीर की आवश्यकतानुसार पर्याप्त नहीं रहती। अत: भोजन द्वारा इनकी भी पूर्ति करनी पड़ती है। यह विटामिन जल में घुलनशील नहीं होते, वसा में घुलनशील होते हैं। शरीर में इनकी आवश्यकता से अधिक मात्रा संचित हो जाती है तो इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। इनकी कमी व अधिकता दोनों ही स्थितियाँ दु:खदायी होती हैं। इस वर्ग के मुख्य विटामिन हैं; 1. विटामिन "ए", 2. विटामिन "डी", 3. विटामिन "ई" एवं 4. विटामिन "के"।

अब यहाँ पर विस्तार से चर्चा करेंगे-

1. विटामिन "ए"; वसा में घुलनशील विटामिनों में सर्वप्रथम विटामिन "ए" की खोज हुई। यह विटामिन पीले फल व सब्जियों में पाया जाता है। 1915 में *मेक कोलम* तथा *डेविस* ने इस विटामिन की खोज की। शुद्ध रूप में इसे 1937 में प्राप्त किया गया। इस विटामिन को रेटिनाल भी कहते हैं। इसे वानस्पतियों में पाये जाने वाले पदार्थ कैरोटीन से प्राप्त किया जाता है।

प्राप्ति के साधन [क] वनस्पति से; वनस्पति में यह उन साग-सब्जियों में पाया जाता है जो पीले व लाल रंग के हों, जैसे- टमाटर, गाजर, पपीता, शकरकन्द, आम, आड़ू, मटर व हरी पत्तेदार सब्जियाँ [धनियां, शलजम, पोदीना, चुकन्दर आदि]

[ख] जन्तुओं से; मुख्य रूप से मछली के यकृत के तेल में मिलता है। इसके अतिरिक्त यह अण्डा, दूध व मक्खन आदि में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। वनस्पति घी का पौष्टिक मूल्य बढ़ाने के लिये उसमें ऊपर से विटामिन "ए" मिला दिया जाता है।

विटामिन "ए" के कमी से होने वाले रोग; इसकी कमी से निम्न रोग होते हैं, जैसे- रतौंधी, कंजक्टाइविटिस, जीरोफ्थेलमिया, किरेटो मलेशिया, बाइटॉट स्पॉट, फौलिक्यूलर हाइपरकिरेटोसिस आदि।

2. विटामिन "डी"; सन् 1918 में सर्वप्रथम *मैलनबाय* ने पाया कि चूहों में रिकेट्स रोग की स्थिति में कॉड लिवर आयल का उपयोग लाभकारी होता है। अत्यधिक अध्ययन करने के बाद *मैकोलम और उनके साथियों ने* यह जान पाया कि विटामिन "ए" कि मात्रा को कॉड लिवर ऑयल से खत्म कर दी जाये तो रिकेट का उपचार करने में लाभ होता है। इससे निष्कर्ष निकाला गया कि विटामिन "ए" रिकेट रोग का उपचार करने में सहायक नहीं है। रिकेट को दूर करने वाले इस पदार्थ का नाम विटामिन "डी" है, ऐसा उन्होंने रखा। विटामिन "डी" शरीर में होने से कैल्शियम व फॉस्फोरस के चपापचय में सहायता मिलती है तथा साथ में रक्त में कैल्शियम व फॉस्फोरस की

उचित मात्रा भी बढ़ जाती है। शरीर की वृद्धि होती है। अस्थियों के निर्माण की सहायक होती है। इसके द्वारा दांतों का भी विकास होता है।

प्राप्ति के स्त्रोत [क] वनस्पति से; भोज्य-पदार्थों में यह उपस्थित नहीं होता।

[ख] जन्तुओं से; यह विटामिन मुख्य रुप से मछली के यकृत के तेल मेंपाया जाता है। इसके अतिरिक्त अण्डा, दूध, घी, मक्खन भी इसकी प्राप्ति होती है।

इसके अतिरिक्त विटामिन "डी" मात्रा हमारे शरीर में सूर्य के प्रकाश से सीधे पहुँचती है। जब सूर्य के अल्ट्रावायलट किरणें त्वचा की वसा में उपस्थित कॉलेस्ट्रॉल पर पड़ती है तो विटामिन "डी" का निर्माण होता है। यही कारण है कि शिशुओं को उनकी मातायें सुबह मालिश करके धूप में थोड़ी देर लिटा देती हैं।

विटामिन "डी" कि कमी से होने वाले रोग; इसकी कमी से, शरीर में कैल्शियम व फॉस्फोरस का अवशोषण नहीं हो पाता अत: ये मल के साथ बाहर निकल जाते हैं, जिसके कारण बच्चों में *रिकेट्स* और प्रौढ़ों में *औस्टोमलेशिया* रोग हो जाता है।

3. विटामिन "ई"; विटामिन ई मनुष्य व जन्तुओं में प्रजनन संस्थान की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक होता है। सन् 1922 में *ईवान्स व बिशप* ने चूहों पर अनेक प्रयोग किये और देखा कि कच्ची सब्जियों के तेल में उपस्थित व वसा में घुलनशील यह तत्व चूहों की सन्तानोत्पत्ति में सहायक होती है, इस विटामिन का नाम "ई" रखा गया। इस विटामिन पर ताप तथा अम्ल की क्रिया का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह विटामिन सूर्य के किरणों के साथ मिलकर नष्ट हो जाता है।

प्राप्ति के स्त्रोत; विभिन्न अनाजों के भ्रूण के तेल जैसे-नारियल, अलसी, सरसों, बिनौला, प्राप्ति के मुख्य साधन है। वस्पति तेलों व वसाओं में इसकी अच्छी मात्रा उपस्थित रहती है। इसके अतिरिक्त यह विटामिन यकृत, अण्डा, अंकुरित अनाज, मांस, मक्खन में भी पाया जाता है।

इसकी कमी से होने वाले रोग; पुरुषों में नपुंसकता और स्त्रियों में बांझपन। पेशियों की शक्ति का ह्रास होता है। लाल रक्त कणिकायें शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। अस्थि मज्जा इतनी शीघ्रता से नयी लाल रक्त कणिकायें नहीं पाना पाती। अत: रक्त-हीनता का रोग हो जाता है।

4. विटामिन "के"; विटामिन के की खोज सर्वप्रथम *डॉ. डेम* ने 1933 में की। उन्होंने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि विटामिन के रक्तस्राव को रोककर रक्त का थक्का जमाने में सहायक होता है। इसी विशेषता के कारण इस विटामिन का नाम *रक्त का थक्का जमाने वाला विटामिन* रखा गया।

प्राप्ति के स्त्रोत; विभिन्न वनस्पतियों जैसे-गोभी, सोयाबीन, हरे पत्ते वाली सब्जियों में यह मुख्य रुप से पाया जाता है। तन्तुओं की आंत में उपस्थित कुछ बैक्टिीरिया भी विटामिन "के" का निर्माण करते हैं।

विटामिन "के" की कमी से होने वाले रोग; इसकी मात्रा शरीर में यदि कम हो जाये तो रक्त में प्रोथ्रोम्बिन की मात्रा कम रह जाती है जिससे रक्त का थक्का जमने में समय लगता है। फलस्वरुप रक्तस्राव होता है, तो रूकने का नाम नहीं लेता। गर्भावस्था में स्त्री के आहार में यदि विटामिन "के" की कम मात्रा हो, तो शिशु रक्तस्राव सम्बन्धी रोगों से पीड़ित हो जायेगा। शरीर में पाचन व अवशोषण की क्रिया ठीक से नहीं होने पर, प्रौढ़ों में हेमरेज के लक्षण परिलक्षित होने लगते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि हमारे शरीर को विटामिनों की अत्यधिक आवश्यकता होती है, जिसके कारण हमारे शरीर को विभिन्न रोगों जैसे- स्कर्वी, रिकेट्स व बेरी-बेरी तथा अन्य शरीर जनित रोगों से मुक्ति मिलती है।

स्त्रोत

आहार एवं पोषण विज्ञान- डॉ. अनीता सिंह, स्टार पब्लिकेशन्स आगरा

दैनिक जागरण

इण्डिया टुडे

JAYNE MCALLISTER, MA; *Mile High & Healthy: The Frequent Traveler's Roadmap to Eating, Energy, Exercise and a Balanced Life*

MAKOTO TROTTER, BSc (Hons), ND; Doug Cook, RD; The Complete Leaky Gut Health & Diet Guide

JONATHAN BENDER; *Stock, Broth & Bowl: Recipes for Cooking, Drinking & Nourishing*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,83-87
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 फरवरी 2016

आधुनिक पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव

अरून कुमार गुप्त*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आधुनिक पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अरून कुमार गुप्त* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आज के बदलते समय में आधुनिक पुस्तकालय से पाठक को देश विदेश गाँव गिरांव, समाज के अन्दर हो रहे बदलाव को समाचार पत्र-पत्रिकाएं फिल्में रेडियों तथा टेलीविजन के माध्यम से सूचनाओं को आसानी से प्राप्त कर लेता है। इन्हीं संचार के माध्यमों से एक जगह से अधिकांश पाठक तक एक तरफ संचरण को सरल बनाते हैं। 20वीं सदी के आधुनिक पुस्तकालयों में जनसंचार माध्यमों में तीक्ष्ण वृद्धि हुई है। टेलीविजन तथा चलचित्र सबसे अधिक प्रभावी माध्यम है क्योकि यह दृश्य तथा श्रव्य दोनों का समिश्रण करते है। टेलीविजन में समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, फिल्मों, इन्टरनेट, कम्प्यूटरों, रेडियों ने पाठकों के जीवन शैली में बदलाव किया है क्योकि इससे सम्प्रेषण आमने-सामने न होते हुए भी बहुत से मामलों में आमने-सामने के सम्बन्धों से भी अधिक व्यवहारिक तथा प्रभावी बना दिया है और कुछ स्थितियों में तो यह आमने-सामने सम्प्रेषण का भी एक रूप बन जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में छोड़ा गया उपग्रह एडूसेट (Eduset) के अंतर्गत प्रक्षेपण वेव आधारित अनुदेशन, डिजिटल पुस्तकालय एवं बहुमाध्यम अभिकरणों ने शिक्षा क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है। इस क्रान्ति से ही अब दूर-दराज के क्षेत्रों के पाठकों को एक नई वास्तविकता के सम्मुख लाना सम्भव हो सका है।

आज का युग सूचना प्रसारण के विस्फोट का युग है। बिना अपने ज्ञान को ताजा रखे हम विश्व के साथ ताल-मेल मिलाकर नही चल सकते। पाठकों को अपने ज्ञान को ताजा रखने के लिए हमे सूचना प्रसारण तकनीक को अवश्य अपनाना होगा। इस तकनीक के अंतर्गत रेडियो, टेलिविजन, इन्टरनेट का प्रयोग शामिल है। जिस प्रकार महाभारत काल में संजय ने कुरूक्षेत्र में होने वाली एक घटनाओं का वर्णन धृतराष्ट्र को महल में बैठे-बैठे वर्णन कर दिया। उसी प्रकार आज हम अपने कार्यालय, कक्षा, सभागार, पुस्तकालय, वाचनालय, व्याख्यान हाल, या घर में बैठे-बैठे, विश्व के किसी भाग में हो रहे किसी शैक्षणिक कार्यक्रम का न केवल अवलोकन कर सकते हैं बल्कि इंन्टरनेट अथवा वीडियो कान्फ्रेन्सिंग के द्वारा उसमें अपनी प्रतिभागिता सुनिश्चित कर सकते हैं।

* पुस्तकालयाध्यक्ष, मां खण्डवारी पी. जी. कॉलेज चहनियां, चन्दौली (उत्तर प्रदेश)भारत। E-mail : arunkumarg402@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पुस्तकालय क्षेत्र में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग स्वतंत्रता के बाद UGC के संगठन के बाद प्रारम्भ हुआ, जिसका उद्देश्य ज्ञान को जन-जन तक पहुचाना, सुलभ व सरल बनाना था। संचार के साधनों के माध्यम से ज्ञान को व्यापक रूप में फैलाने का प्रयास किया गया है। विज्ञान के क्षेत्र में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग व्यापक क्षेत्र में होता है। जिससे पाठकों को इसका लाभ अच्छे ढंग से प्राप्त होता रहे। टी0वी0 पर दूरदर्शन द्वारा ज्ञान भारती चैनल द्वारा विभिन्न विषयों की सूचनाएं प्रसारित की जाती हैं। आकाशवाणी द्वारा भी मौखिक ज्ञान रेडियों के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग इग्नू द्वारा व्यापक रूप से किया जाता है। इग्नू जो पत्राचार की पढ़ाई कराता है, अपने एडवांस स्टडी सेन्टर पर संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग बड़े-बड़े प्रोफेसरों के व्याख्यान उपलब्ध कराता है। यही नही कई बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के क्लास रूम लेक्चर इन्टरनेट के माध्यम से, किसी पाठक के स्टडी रूम में कम्प्यूटर के माध्यम से आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

इन्टरनेट के माध्यम से पाठक न केवल वैश्विक एजूकेशनल कन्टेक्स्ट को एक्सेस कर सकता है बल्कि घर बैठे अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा भी पाता है। विदेशी संस्थानों से आनलाईन कोर्स करना अब कोई नई बात नहीं है। नेट पर विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हजारों वेबसाइट्स उपलब्ध हैं। रिसर्च से सम्बन्धित जानकारियां हो तो या विभिन्न एन्ट्रेन्स एग्जाम, एग्जाम नोटिफिकेशन, एग्जाम डेट, एडमिशन प्रोसेस, आनलाईन एग्जाम, डिस्टेन्स एजुकेशन, एजुकेशन लोन, एग्जाम रिजल्ट, विभिन्न कैरियर आप्सन्स, विदेशों में पढ़ाई की जानकारी आदि से सम्बन्धित जानकारियां प्राप्त कर सकते हैं। स्मार्ट क्लासेज, ई-कम्प्यूटर, जैसी कई अवधारणाएं, आज वर्तमान शिक्षा में काफी लोकप्रिय है। सूचना तकनीकी के माध्यम से पाठकों को इंटरनेट पर भी लैब की सुविधाएं मिलने लगी है। आज वर्चुवल लैब पर साइंस टेक्नोलाजी, इंजिनियरिंग, आई टी आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित प्रयोगों का घर बैठे ही लाभ प्राप्त किया जाता है।

विज्ञान से सम्बन्धित तकनीक तथा कुछ विषयों की सीमा तोड़कर, सूचना व संचार प्रौद्योगिकी ने पाठ्यक्रम के प्रत्येक पक्ष पर अपना अधिपत्य जमा लिया है। इसके प्रयोग से पाठकों की ग्रहण क्षमता, प्रेषण क्षमता व योग्यता में सार्थक व रचनात्मक ढंग से सुधार आया है। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी ने विषय की विषयवस्तु, शिक्षण विधियां, कक्षागत परिस्थितियों एवं शिक्षा के राष्ट्रीय व सामाजिक सरोकार के परिप्रेक्ष्य में अमूल परिवर्तन ला दिया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने कक्षा में व कक्षा के बाहर, पुस्तकों में, वाचनालयों में, अनुदेशन में प्रयुक्त होने वाले परम्परागत साधनों के अतिरिक्त आधुनिक, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग विस्तारित किया है। जिससे पाठकों को विषय से सम्बन्धित किसी प्रकार कोई अवरोध उत्पन्न न हो।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

- पाठकों के शिक्षण के लिए रेडियो, दूरदर्शन प्रसारण, सी0डी0 कैसेट, डी0वी0डी0कैसेट, कम्प्यूटर आदि उपकरणों का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है।
- पाठक विचार- विमर्श, सामूहिक अधिगम, व्यक्तिक अधिगम अनुसंधान हेतु नवीन शिक्षण विधियों के उपकरण के रूप में।
- पाठकों को पुस्तकालयों में पुस्तकों को आसानी से लेन-देन करने हेतु नवीन उपकरणों का प्रयोग करना।

आज के शिक्षा क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के भौतिक संसाधनों का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है; • कैलकुलेटर, • डिजिटल पुस्तकालय, • मल्टीमीडिया, • इंटरनेट, • ब्राडबैन्ड, • वर्ल्ड वाईब वेब, • आडियो और वीडियो, • हाईपर टेक्सट, • सर्च इंजन, • टेक्सट एवं ग्राफिक, • आनलाइन आवेदन करना, परीक्षा, साक्षात्कार, प्रोफाइल करना, • विडियो कान्फ्रेन्सिंग, • डाउनलोडिंग।

सभी संसाधनों के प्रयोग पुस्तकालयों में पाठकों को उत्तम शिक्षा प्रदान करने के लिए किया जाता है। इन संसाधनों के माध्यम से पाठकों को शिक्षा क्षेत्र में नई से नई सूचनाएं आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।

वर्तमान युग के पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता व विकास दिन प्रतिदिन हो रहा है। पाठकों को अपने विषय से सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण वर्तमान की आधारशिला पर भविष्य के विकास के लिए किया जाता है, जिससे भूतकाल से उर्जा प्राप्त की जाती है। वर्तमान समय में सभी पुस्तकालय पाठको को अच्छी से अच्छी सूचना व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था को चुस्त-दुरूस्त बनाकर रखने में, अत्याधुनिक यंत्रों की व्यवस्था की जा रही है ताकि समय के साथ ही विश्व में हो रही नई नई खोज, सूचनाओं, समसामयिक घटनाओं से अवगत हो जाये।

पाठकों के पाठ्यक्रम निर्माण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण अपरिहार्य सी हो गयी। पाठ्यक्रम यथार्थ पाठको की प्रौद्योगिकी के अनुसार निर्मित किया जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के तमाम उपागम को पाठकों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया। जैसे ही सूचना एवं संचार के आधुनिक साधनों की जानकारी प्राप्त होती है। उसकी पूर्णतः व्यवस्था पुस्तकालयों में, एवं वाचनालयों में की जाती है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो हमारे पाठक दुनिया की दौर में पिछड़ सकता है।

आज वर्तमान समय में शैक्षिक प्रशासन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का इतना अधिक प्रयोग किया जा रहा है कि समस्त सूचनाओं आकड़ों का निर्माण, प्रेषण कम्प्यूटर से किया जा रहा है। विडियो कान्फ्रेन्सिंग के माध्यम से राजधानी, जिला मुख्यालय, या पुस्तकालय के सभागार में बैठे शिक्षा प्रशासक, पुस्तकालयाध्यक्ष एवं अन्य प्रशासक अपने-अपने कार्यक्षेत्र का नियंत्रण कर रहे हैं। इसके लिए शिक्षा विभाग ने शैक्षिक सूचना प्रबन्धन प्रणाली तथा क्षेत्रीय स्तर पर शैक्षणिक सूचना प्रणाली साफ्टवेयर का निर्माण कर रहा है।

सूचनाओं का महत्व तभी है जब वह उचित समय पर, उचित स्वरूप में, उचित पाठक, व्यक्ति के पास पहुंच जायें, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने इस कार्य को अपने सूचना सम्वाहन तंत्र के माध्यम से उपलब्ध करा दिया है। सूचनाओं के संग्रह हेतु मोबाइल, फैक्स, ई-मेल, प्रक्रमण हेतु कम्प्यूटर तथा उचित व्यक्ति के पास पहुचाने हेतु वेबसाइट, ई-मेल, फैक्स, फोन सेवा, उपलब्ध कराकर सूचना सम्वाहन को सरल एवं सुलभ बना दिया है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने पुस्तकालय में कक्षा में, लेक्चर हाल में सभागार में, सेमिनार हाल में एक क्रान्ति सी ला दी है तथा प्रोफेसर, लेक्चरर, प्रवक्ता, अध्यापक, पुस्तकालयाध्यक्षों को अपने शिक्षण में सहयोग व पाठकों तक पहुँचाने के सजीवता प्रदान की है। पुस्तकालय के सभागार में, वाचनालय में स्लाईड, विडियो, टेलीफिल्म, माईक्रोफोन, ध्वनि-प्रकाश, पद्धति, टेपरिकार्डर, का प्रयोग करके शिक्षण का कार्य किया जा रहा है। पाठकों के शिक्षण काल में इन आधुनिक यंत्रों की इतनी उपयोगिता बढ़ गयी है कि कक्षा में, पुस्तकालय के वाचनालय में नक्शा आदि के स्थानों को संकेत हेतु शिक्षक, प्रोफेसर, पुस्तकालयाध्यक्ष, संकेतक के स्थान पर टार्च के द्वारा लाईट का प्रकाश फैककर करने लगा है तथा लम्बी कक्षाओं में अपनी आवाज को पहुचाने हेतु मोबाईल माइक्रोफोन का प्रयोग कर रहे हैं।

पुस्तकालयों के अभिलेखों के निर्माण व अनुरक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में अपनी उपयोगिता प्रमाणित की है। प्रौद्योगिकी के तहत सूचनाओं का निर्माण अब कम्प्यूटर से किया जा रहा है। पुस्तकालय के अभिलेख कम्प्यूटर से बनाये जा रहे है। उनके अनुरक्षण हेतु कम्प्यूटर फ्लापी, सी0डी0 तैयार की जा रही है। अधिकांश कार्यक्रमों का अभिलेखीकरण फोटोग्राफी, टाइप प्रिन्ट, कम्प्यूटर प्रिन्ट, आदि के माध्यम से किया जा रहा है।

सूचना तथा संचार प्रविधियों फैलाव ने दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के परस्पर एकीकरण व सामंजस्य से दूरस्थ शिक्षा की प्रविधियों, शिक्षण, सामग्री प्रेषण, अन्तर्क्रियात्मक क्षमता में वृद्धि कार्यक्रम दूरभाष, कान्फ्रेन्सिंग, दूरवर्ती कान्फ्रेन्सिंग, कन्प्यूटर कान्फ्रेन्सिंग, ई-मेल, रेडियों, अन्तर्क्रियात्मक कार्यक्रम आदि के प्रयोग ने दूरस्थ शिक्षा को सहज रूप से ग्रहण किया है। ये साधन दूरस्थ शिक्षा के शिक्षार्थियों को अत्यंत प्रभावी ढंग से द्वि-मार्गीय अन्तर्क्रिया करने के विविधतापूर्ण अवसर उपलब्ध कराते है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक सूचना तथा संचार माध्यमों का सबसे महत्वपूर्ण व उत्साहजनक पक्ष उनकी लागत में पर्याप्त कमी आयी है। इसलिए इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

टेलीकान्फ्रेन्सिंग, विडियो कान्फ्रेन्सिंग प्रक्रिया- संचार आधारित उपग्रहों के माध्यम से कान्फ्रेन्सिंग होती है। इसी माध्यम से पाठकों को दूर-दूर तक वार्तालाप एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान समय के रहते होते रहते हैं। इसमें दृश्य श्रव्य दोनों माध्यमों में तारतम्यता के साथ सूचनाओं का प्रसारण किया जाता है। दृश्य एवं श्रव्य तरंग प्रेषक स्रोत से ही ग्राही केन्द्र तक संचार उपग्रहों के माध्यम से प्रसारित की जाती है।

टेलीकान्फ्रेन्सिंग- टेलीफोन या टेलीविजन द्वारा बैठक या संगोष्ठियों का आयोजन करना टेलीकान्फ्रेन्सिंग कहलाता है। इस पद्धति के माध्यम से कई स्थानों पर बिखरे व्यक्तियों से इस प्रकार बातचीत कर लेते है। जैसे एक ही कमरे में बैठे हो या एकत्रित हों। टेलीकान्फ्रेन्स के आज विविध रूप देखने का मिलते हैं। जैसे आडियो कान्फ्रेन्स, विडियों कान्फ्रेन्स,

कम्प्यूटर कान्फ्रेन्स इत्यादि। वर्तमान की व्यस्त व तीव्र जीवन शैली में टेलीकान्फ्रेन्स पद्धति का विकास वरदान सिद्ध हुआ है।

टेलीटैक्स एवं विडियो टैक्स्ट- यह दूरसंचार की आधुनिक प्रणाली है। जो कम्प्यूटर के विकास से ही सम्भव हुआ है। टेलीविजन संदेशों के साथ आकड़ों का प्रसारण भी करता है। यह विडियो टेक्स्ट कहलाता है। टैली टेक्स्ट प्रणाली टेलीविजन प्रसारण केन्द्र पर सूचनाओं को कम्प्यूटर में व्यवस्थित करके प्रसारित करती है। इस प्रक्रिया को डाटावेश कहते है। विडियो टेक्स्ट में संदेशो को टेलीफोन द्वारा सम्प्रेषित किया जाता है। सूचना प्राप्त करने वाली इस प्रक्रिया में संदेश को कम्प्यूटर की मेमोरी में फीड कर लेता है। सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति टेलीफोन द्वारा विडियो टेक्स्ट से सम्पर्क स्थापित करता है और कम्प्यूटर वांक्षित सूचना टेलीफोन लाईन द्वारा प्रसारित करता है।

गेटवे पैकेज स्वीचिंग पद्धति- जिस एरिया में टेलीफोन लाइनें बिछाना सम्भव नहीं है वहां उपग्रह संचार प्रणाली से सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाता है। उपग्रह संचार प्रणाली के सहायता से, कम्प्यूटर के माध्यम से, किसी भी स्थान से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस कार्य के लिए जिस तकनीक का प्रयोग किया जाता है उसे गेटवे पैकेज स्वीचिंग पद्धति कहा जाता है।

मोडम- आधुनिक संचार के क्षेत्र में मोडम कम्प्यूटरीकृत आधुनिक तकनीक है, जिससे कम समय व आवश्यकता से अधिक खर्च में समाचार पत्र का पृष्ठ तैयार हो जाता है। इस प्रणाली में सबसे पहले सन्देश प्राप्तकर्ता से टेलीफोन द्वारा सम्पर्क स्थापित करते है फिर मोडम नं0 डायल करते हैं, इसके उपरान्त सारे कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से नियन्त्रित किया जाता है।

प्रकाशीय संचार- सूचनाओं को जब प्रकाश के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर सम्प्रेषण किया जाता है तो उसे प्रकाशीय संचार व्यवस्था कहा जाता है। इस संचार व्यवस्था में चित्रों व आकड़ों को प्रकाश के रूप में प्रसारित किया जाता है। इस कार्य को डायोड लेजर या लाईट एन्टीना डायोड ट्रान्समीटर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

लेसर दूरसंचार- लेसर किरणों ने दूरसंचार जगत में क्रान्तिकारी प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है। लेसर किरणों के द्वारा टेलीफोन, टेलीविजन प्रसारण, कम्प्यूटर डाटा और सूचनाओं को उपग्रहों तक भेजा जाता है।

नेटवर्क- भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय सूचना केन्द्रों की स्थापना प्रत्येक जनपद में की गई है। इसका मुख्य कार्य सरकारी विभागों के विचारों, निर्णयों का आदान-प्रदान तथा कान्फ्रेंन्सिंग के माध्यम से पाठकों से सम्पर्क स्थापित करना है। यह सरकारी विभागों के लिए डाटावेश उपलब्ध कराता है। जिसके माध्यम से सरकारी कामकाज आसानी से संचालित किया जाता है। जिससे पाठकों को आपने अध्ययन से सम्बन्धित अधिक फायदा होता रहता है।

इन्डोनेट- इन्डोनेट का निर्माण कम्प्यूटर मेन्टेनेन्स कार्पोरेशन ने किया है। इन्डोनेट बनाने का मुख्य उद्देश्य देश के दूर दराज के हिस्सों में पाठकों को कम्प्यूटर के माध्यम से तत्काल घटने वाली सूचनाओं की जानकारी तथा शीघ्रता से प्राप्त हो जाय। इसके माध्यम से देश के प्रत्येक हिस्से में सूचनओं को एवं आकड़ों को आसानी से पहुचाँया जाता है। इसका दूसरा उद्देश्य के इलाकों में कम्प्यूटर द्वारा प्राप्त सूचनाओं के लिए साफ्टवेयर का विकास और निर्यात करने के साथ-साथ अभियांत्रिकी डिजाईन, मैनेजमेंट साइंस, ऊर्जा एवं कम्प्यूटर नेटवर्क क्षेत्र में विशेष पैकेज, वितरित सूचना निकायों कम्प्यूटर व्यवसाय का पाठकों की समय समय पर प्रशिक्षण प्रदान करता है।

इंटरनेट- इंटरनेट एक ऐसा विश्वव्यापी कम्प्यूटर नेटवर्क है जिसमें विस्तृत जानकारी एकत्रित कर एक कम्प्यूटर में उपलब्ध करायी जाती है। इंटरनेट का पूरा नाम इंटरनेशनल नेटवर्क है। इससे बहुत कम समय में दुनिया की बड़ी से बड़ी जानकारी प्राप्त की जाती है। वर्तमान समय में इस इंटरनेट का भरपूर उपयोग पाठक, विद्यार्थी, अध्यापक, प्रवक्ता, रीडर, डीन, प्रोफेसर, पुस्तकालयाध्यक्ष, पुस्तकालय प्रवक्ता, डाक्टर, वैज्ञानिक, शोधार्थी, सरकारी कर्मचारी, निजी कर्मचारी, व व्यवसायी, इसका पल-पल का लाभ उठा रहे हैं।

शिक्षा जगत में इंटरनेट का विशेष महत्व है। इसके द्वारा शिक्षक, पाठक, विद्यार्थी, प्रोफेसर किसी भी महत्वपूर्ण विषय पर दूर दराज बैठकर इंटरनेट के माध्यम से आपस में विचार-विमर्श कर सकते हैं। वर्तमान समय में मुख्य रूप से शोध-कर्ता एवं वैज्ञानिक इंटरनेट के माध्यम से विश्व की अधिक से अधिक आधुनिक शोध सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं।

इंटरनेट के माध्यम से पाठकगण कला, संस्कृति, अन्तरिक्ष व खगोल विद्या, पर्यटन भौगोलिक एवं अंतर्राष्ट्रीय मामले समेत अन्य सूचनाएं भी समय-समय पर प्राप्त करते रहते हैं।

ई-मेल- ई-मेल का पूरा नाम इलेक्ट्रानिक मेल है। यह इंटरनेट का सबसे लोकप्रिय उपयोग है। जिसमें सूचना संचार के क्षेत्र में एक जबरजस्त क्रान्ति का उदगार हुआ। ई-मेल के माध्यम से ई-मेल के सरलतम प्रयोग के रूप में ई-मेल के संदेश कम्प्यूटर फाईल को एक दूसरे कम्प्यूटर पर भेजा जाता है। यह प्रणाली अन्य इंटरनेट सेवाओं की तरह फ्लाइट सर्वर पद्धति पर आधारित है। ई-मेल के अंतर्गत ई-चैट, ई-कामर्स, ई-बिजनेस, पी-कामर्स, ई-प्रशासन इत्यादि आती है।

कन्वर्जेन्स- यह सूचना प्रौद्योगिकी पुस्तकालय जगत में एक नयी उपलब्धि है। यदि पुस्तकालय में केबल, टी0बी, इंटरनेट, टेलीफोन, फैक्स आदि की सुविधाएं उपलब्ध है तो निश्चित ही पुस्तकालय, वाचनालय में तारों व संजालों का जाल बिछ जायेगा जो पाठकों को अध्ययन में बाधा उत्पन्न होने लगेगा। यदि इन सारी सुविधाओं को एक ही कन्वेंन्सन में मिला दिया जाये तो जगह की बचत होगी और एक ही उपकरण से सारी सुविधाएं पाठकों को प्राप्त हो जायेगी। कन्वर्जेन्स इसी एकीकृत सुविधा व्यवस्था का नाम है जिसे हम सभी लोग अपनी भाषा में आल इन वन कहते है। इसके माध्यम से हम सभी पाठक लोगों को टेलीफोन बूथ, ई-कामर्स, टेली बैंकिंग, टेली ट्रेडिंग, टेली एजुकेशन (साइबर शिक्षा) टेली मेडिसीन, विडियो कान्फ्रेन्सिंग आदि का प्रयोग करते हैं। इसमें सूचना तकनीकी, संचार, तकनीक तथा प्रसारण सेवाओं को एक चैनल के माध्यम से पाठकों तक आसानी से पहुचाया जाता है।

डिजिटल डिवाइड- डिजिटल डिवाईड शब्द 1990 के दशक में कम्प्यूटर के क्षेत्र में पाठकों के सामने प्रचालित हुआ। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी तथा इंटरनेट के प्रयोग के सम्बन्ध में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तरों पर पाठकों, पुस्तकालय वाचनालय, घरेलू व्यवसाय, भौगोलिक, क्षेत्रों के बीच आये मतभेद को डिजिटल डिवाइड कहा जाता है।

सारांश

राष्ट्र उन्नति के पथ पर तभी अग्रसर होता है। जब राष्ट्र के सभी पाठकों को पढ़ने की सर्वोत्तम व्यवस्था मिले तथा अवसरों को पाठकों के द्वारा प्रभावी ढंग से लाभ प्राप्त हो सके। वर्तमान समय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अनेक विकास कार्यक्रम का संचालन अपनी ऊचाई पर चढ़ती जा रही है। इसके माध्यम से शोध छात्रों, पढ़ने वाले छात्रों को अपने अध्ययन की सुविधा का विस्तार होता जा रहा है। वर्तमान समय में पूरा समाज एवं शिक्षा संस्थाओं को आई टी से जोड़ दिया गया है। इसी कारण शिक्षा के स्तर को दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक पद्धति में सुधार एवं विकास हो रहा है। आई टी के प्रभाव से आधुनिक पुस्तकालय को सुदृढ़ बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है। जिसके माध्यम से पुस्तकालय में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव पाठकों पर अच्छी तरह से पड़ता दिखायी दे रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

श्रीवास्तव महेन्द्र नाथ (2012)- शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

जैन रंजना (2010)- शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, आर.एस.ए. इन्टरनेशनल, आगरा

शर्मा राजकुमारी (2010)- शिक्षा में शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, राधा प्रकाशन मंदिर आगरा

कुल श्रेष्ठ, एस0पी0 एवं सिंघल, अनुपमा (2012)- शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा

पाटनी, डा0 मंजू (2007)- प्रसार एवं संचार, शिवा प्रकाशन इंदौर

सिंह, शंकर (2000)- कम्प्यूटर और सूचना तकनीकी, दिल्ली पूर्वांचल प्रकाशन

शर्मा, डा0 पाण्डेय, एस0के0 (1996)- कम्प्यूटर और पुस्तकालय, नई दिल्ली ग्रन्थ अकादमी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,88-95
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 फरवरी 2016

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारों का सामाजिक और साहित्यिक अवदान

डॉ. सच्चिदनन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतेन्दुयुगीन पत्रकारों का सामाजिक और साहित्यिक अवदान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

पत्र-पत्रिकाएँ समाज की गतिविधियों के दर्पण हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः जिस समाज में वह रहता है, उस समाज के बारे में वह अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। समाज में कब, कहाँ, क्या और क्यों हो रहा है? इन सबको जानने को एक मात्र साधन पत्र-पत्रिकाएँ हैं। ''पत्रकारिता वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने मस्तिष्क में उस दुनियाँ के बारे में समस्त सूचनाएँ संकलित करते हैं, जिसे हम स्वतः कभी नहीं जान सकते।''[1]

जब सामाजिक जीवन प्रगतिशील तत्वों को अपनाता हुआ निर्माण और उत्थान की ओर अग्रसर होता है तभी स्वस्थ जीवन मूल्य संरचित एवं संरक्षित होते हैं क्योंकि उन्हें भी पत्रकारिता अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार पत्रकारिता सामाजिक जीवन की सत्, असत्, दृश्य, अदृश्य और शुभ-अशुभ छवियों का दर्पण है। समाज में फैली कुरीतियों, अंधविश्वासों और रुढ़ियों के प्रति भी पत्रकारिता संघर्ष छेड़ती हुई समाज से उन बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करती है। दूसरे अर्थ में एक सच्चा पत्रकार अंधराष्ट्रवाद और संकीर्ण देशभक्ति दोनों के विरूद्ध आवाज उठाता है। समाज में जो कुछ भी अच्छा या बुरा घटित होता है, पत्र-पत्रिकाएँ उनका सम्यक् विश्लेषण करती हुई समाज के भविष्य द्रष्टा की भूमिका निभाती हैं। संक्षेप में कहा जाय तो पत्रकारिता समाज की सीमाओं पर पड़ने वाली वह चैतन्य किरण है, जो अपने प्रकाश से सामाजिक, अस्त-व्यस्तता और विश्रृंखलता को समाप्त करती हुई प्रकाश विकीर्ण करती हैं। यही प्रकाश सामाजिक जीवन में प्रवेश करता हुआ उसके अन्तस् में छिपे अंधकार की पर्तों को काट देता है।

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

'बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म अंग्रेज भक्त महाजन परिवार में हुआ था। 09 सितम्बर, 1950 ई0 को श्री पार्वती देवी की कोख से भारतेन्दु जी ने जन्म लिया। उन्होंने होश सँभालने पर प्रतिज्ञा की थी- ''इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा।'' हरिश्चन्द्र जी आर्थिक दृष्टि से सबल थे, उन्हें कोई कमी नहीं थी।

भारतेन्दु जी की जन्मशती के अवसर पर 'नवजीवन' (लखनऊ) में डॉ0 रामविलास शर्मा के एक मित्र ने (जिसका नाम उन्होंने नहीं दिया है) लिखा था, ''उन्होंने अपना लाखों रूपया रण्डी-भडुओं और मुसाहिबों के फेर में फेंक दिया। यहाँ तक कि कर्ज ले लेकर भी यह अपनी वासनाओं का पोषण करते रहे। अपने को मिटाने की भावना ने इन्हें साहित्य और समाज के क्षेत्र में क्रांति की भावना दी, ऐसा मुझे लगता है।''

अपनी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को छापने के लिए उन्होंने अपनी बहुत सी व्यक्तिगत पूँजी लगा दी। उन्हें इस साहित्य सेवा से कर्ज और गरीबी ही मिली। काव्य गोष्ठियों, कवियों को प्रोत्साहित करने, किताबों के लिए पुरस्कृत करने, दूसरों को पुस्तकें देने और साहित्यकारों की आर्थिक सहायता करने में उनका कितना धन व्यय हुआ, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं है।

उनकी अधिकांश शिक्षा घर पर ही संपन्न हुई क्योंकि उन दिनों राजा, रजवाड़े, जमींदार और अमीर खानदानों के बच्चे सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने नहीं जाते थे। उनके यहाँ विषय विशेष के शिक्षक स्वतः पढ़ाने आते रहे। उसके लिए उन्हें मोटी रकम दी जाती थी। यही स्थिति भारतेन्दु जी के साथ रही। इनको पढ़ाने के लिए पं0 ईश्वरीदत्त, मौलवी ताजअली और पंडित नन्दकिशोर जी जैसे विद्वान आते रहे।

जब वे 5 वर्ष के थे तब इनकी माता और जब वे 9-10 वर्ष के थे तब इनके पिता स्वर्ग सिधार गये। मातृ-पितृहीन हो जाने के कारण वे एक प्रकार से स्वच्छन्द हो गये। किसी का दबाव नहीं मानते थे। फिर भी इनका नाम वाराणसी के क्वींस कॉलेज में लिखा गया। पढ़ने भी जाने लगे। लेकिन वहाँ भी वे मन लगाकर कभी नहीं पढ़ते थे और सर्वदा चंचल चित्त रहते थे। पर बुद्धि तो ईश्वर प्रदत्त थी। जिस विषय को सहपाठी दिनभर में याद नहीं कर सकते थे, उसे वे दो-एक बार के सुनने और पढ़ने ही से याद कर लेते थे। यही कारण था कि सर्वदा परीक्षोत्तीर्ण भी होते थे।

भारतेन्दु जी सदैव साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए कार्य करते रहे। इसको लक्षित करके पत्र-पत्रिकाओं में वे लेख, सम्पादकीय और कविता-नाटक इत्यादि लिखा करते थे। उन्होंने भली-भाँति अनुभव कर लिया था कि अंग्रेज सरकार सभी धर्मों के अनुयायियों में मतभेद पैदा करने में लगी है। इन परिस्थितियों में गुलामी की जंजीरों को बिना सभी धर्मों के एक जुट हुए नहीं तोड़ा जा सकता था। इसी कारण सभी सम्प्रदायों में भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए वे आजीवन प्रयासरत रहे।

वस्तुतः वे आधुनिक भारत के निर्माण हेतु सांस्कृतिक जागरण लाना चाहते थे। कुछ विद्वानों ने उनके ऊपर साम्प्रदायिक होने और राजभक्त होने का आरोप भी लगाया है जो भारतेन्दु के प्रति घोर अन्याय का द्योतक है।

बाबु हरिश्चन्द्र जी को काव्य, नाटक और निबन्ध के रचनाकार होने के साथ ही पत्रकार कला में भी निपुणता प्राप्त थी। उन्होंने कई पत्रों का सम्पादन एवं प्रकाशन किया, जिनमें प्रमुख हैं- 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (हरिश्चन्द्र मैगजीन)।

निर्धनों और मुफालिसों आदि के लिए उन्होंने अत्यन्त उदार हृदय पाया था। किसी को दुःखी या व्यथित देखकर वे उसे अपने तन के कपड़े तक उतार कर दे देते थे। जाड़े की रात में बाहर घूमते हुए उन्हें एक गरीब व्यक्ति सोता हुआ मिला, जो कड़ाके की ठण्ड से ठिठुर रहा था। उसे अपना दुशाला दे दिया। किसी भिखमंगे को फूलों का गजरा उतार कर उसमें पाँच की नोट छुपाकर देना या किसी की लड़की की शादी के लिए सौ दो सौ रूपये और साड़ियाँ भेंट कर देना उनका शौक था। यहाँ तक कि अर्थाभाव से पीड़ित व्यापारियों तक को वे निस्पृह भाव से आर्थिक सहायता देते और दिलाते थे। यही नहीं, सहायता के याचकों को अपना वस्त्र और अंगूठी आदि भेंट कर देने में उन्हें प्रसन्नता ही होती थी।

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तिगत दान से भी बढ़कर उनका सामाजिक कार्यों में रुचि लेना महत्वपूर्ण था। सन् 1872 ई0 में खान देश के बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए उन्होंने अपनी निजी सहायता के अतिरिक्त वाराणसी में घूम-घूम कर

धन संग्रह किया। 02 अक्टूबर, 1872 की 'कविवचन सुधा' में एक विज्ञापन छपा है, जो हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्मरणीय घटना है। इस विज्ञापन में उन्होंने बाढ़ से ग्रस्त जनों की भरपूर सहायता करने की अपील छापी थी। वह विज्ञापन इस प्रकार है-

इश्तिहार

(1) दैव कोप; ''हम अपने दयालु ग्राहकों की दृष्टि इधर दिखलाना चाहते हैं, वरंच विनय करते हैं कि वे लोग इस भारतवर्ष की परम विपत्ति के यथाशक्ति सहायक हों, दक्षिण में खानदेश नामक प्रान्त और कई गाँव में ऐसी वर्षा हुई कि गाँव वरंच देश का देश बह गया है और वहाँ के लोग अन्न, वस्त्र और सब वस्तुओं से हीन होकर परम दीन हो गये हैं और उनकी दशा स्मरण करते नेत्रों में जल भर आता है, कई सहस्त्र मनुष्य एक संग नाश हो गये, घर गिर पड़े, अन्न, वस्त्र, धन सब बह गया, केवल ईश्वर ने कृपा करके जिनके प्राण बचाये हैं वे निरवलंब अनाथों की भाँति रोते फिरते हैं। इससे हम आशा करते हैं कि आप लोग इस पत्र को पढ़ते ही उन लोगों की यथाशक्ति सहायता करें, द्रव्य चाहे 'कवि-वचन सुधा' सम्पादक के पास भेज दीजिए वा बंबई (वर्तमान में मुम्बई) में 'इन्दु प्रकाश' के सम्पादक के पास भेज दीजिए वा अपने किसी दक्षिण मित्र द्वारा भेद जीजिए। उन लोगों की सहायता के चन्दे में पहुँच जायेगा।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रसेवा, साहित्य और पत्रकारिता बाबू हरिश्चन्द्र के लिए ये तीनों ही अभिन्न कार्यक्षेत्र थे। यह सर्वमान्य है कि उनका व्यक्तित्व शुद्ध साहित्यकार का न होकर एक समाजसेवी एवं सुधारक का रहा। भारतेन्दु की व्यक्तिगत इच्छाएँ देश और समाज की इच्छाओं से घुल-मिल गई थी। धार्मिक उत्सवों के लिए, विदेश यात्रा के लिए, हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए, उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए और कॉलेज खोलने के लिए आर्थिक संसाधनों की व्यवस्था करना उनका मनपसन्द कार्यक्षेत्र था।

(2) पं0 बालकृष्ण भट्ट पं0 बालकृष्ण भट्ट को 'हिन्दी प्रदीप' के प्रकाशन में अन्य कठिनाइयों के साथ- साथ अर्थाभाव की कठिनाई भी प्रमुख समस्या थी। इसी अर्थाभाव और ब्रिटिश सरकार की कुटिल नीति के कारण 'हिन्दी प्रदीप' अपने 33 वर्षों के जीवन-काल में घूम-घूम कर आठ प्रेसों में मुद्रित हुआ। अर्थ का संकट भट्ट जी को सदैव बना रहा। तब भी उन्हें यह आशा बराबर बनी रही कि उनका निज का प्रेस हो जाता तो नियमित रूप से पाठकों के पास 'हिन्दी प्रदीप' पहुँचा सकते पर अर्थाभाव से उनकी यह आशा फलवती न हो सकी। बार-बार ग्राहकों से निवेदन करने पर भी जब रूपये न मिलते तो वे अपनी निजी पूँजी लगाकर उसे चलाते, पर उतने से भी न चलता तो कुछ दिनों के लिए 'हिन्दी प्रदीप' के प्रकाशन को बन्द कर देते। जब कुछ धन संचित हो जाता तो फिर प्रारम्भ कर देते। बार-बार याद दिलाने पर भी चंदा न देने वाले अपने ग्राहकों से खीझ कर उन्होंने एक बार लिखा- ''हम अपने ग्राहकों से निवेदन करते हैं कि वे अब भी हमारा मूल्य जो कुछ उनके पास बाकी है, इस मास के भीतर चुका दे नहीं तो अब हम उनके नाम गोत्र का पन्ना खोलेंगे। विशेष निवेदन उनसे है जो वर्ष भर बराबर पत्र लेकर दाम देने की जून पत्र लौटाय चुपचाप बैठ रहे हैं, क्योंकि जब वे हरामी ग्राहक श्रेणी को भी अपने नाम से भूषित नहीं किया चाहते तो हम व्यर्थ को क्यों उनका शील बनाये रखें।''?

भट्ट जी ने स्वयं 'निज वृत्तांत' शीर्षक लेख में बड़े स्पष्ट रूप से लिखा है- ''पुराना चर्खा ओटने की भाँति निज वृत्तांत कह सुनाया आप का बहुमूल्य समय नष्ट करने की भाँति है। किन्तु कई मित्रों के अनुरोध से कि 'प्रदीप' का संक्षिप्त इतिहास जानने की बहुतों की लालसा है, हमें ऐसा करना पड़ता है और दिनों-दिन उनकी संख्या बढ़ती जा रही है, किन्तु एक समय वह सिवाय देश में हिन्दी का नाम भी न था। दाहिनी ओर से हिन्दी लिखते देख लोगों को अचरज होता था। वर्तमान हिन्दी साहित्य के जन्मदाता प्रातः स्मरणीय बाबू हरिश्चन्द्र बाबू साहब के इतने परिश्रम पर भी हिन्दी बालिका पर मुग्ध दशा बनी रही। भाषा के ऐसे बाल्यकाल में हिन्दी के हितू और प्रेमी कतिपय छात्रों की एक मण्डली हमारी जन्मदाता हुई। एक-एक छात्र ने 55 रूपये चन्दा दे एकत्र कर प्रतिमास 10 पृष्ठ का एक मासिक-पत्र निकालना प्रारम्भ किया और पुस्तकाकार इसलिए रखा कि जिसमें पंसारियों की पुड़िया बाँधने के काम की न रहे वरन् जिल्द बाँध लोग रख सके।''

स्पष्ट है कि भट्ट जी अर्थाभाव से सदा मर्माहत रहे। जीवन भर भट्ट जी ने न जाने कितनी आर्थिक हानि सहकर भी कुछ थोड़े से अनुरागी पाठकों के भरोसे 'हिन्दी प्रदीप' का 33 वर्ष तक लगातार प्रकाशन किया। दुर्भाग्यवश 'हिन्दी प्रदीप' की ग्राहक संख्या दो सौ से अधिक कभी नहीं हुई।

'हिन्दी प्रदीप' अपने जीवन-काल में निम्न अवधि के बीच कुल तीन बार बन्द हुआ, जिसमें दो बार तो अर्थाभाव कारण था और अन्तिम बार का कारण ब्रिटिश सरकार का प्रकोप था। 1. अक्टूबर, 1898 से दिसम्बर, 1898 तक, 2. जनवरी, 1902 से दिसम्बर, 1902 तक, 3. मई, 1908 से सितम्बर, 1909 तक।

पं0 बालकृष्ण भट्ट की आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुयी थी। इनके पिता व्यापारिक रुचि के व्यक्ति थे। ये रूपये को पढ़ाई लिखाई से अधिक महत्त्व देते थे। इनकी माता पार्वती देवी एक पढ़ी-लिखी समझदार महिला थीं। वह नहीं चाहती थीं कि एक ब्राह्मण कुल की सन्तान पंसारी का बेटा कहलाये। ये एक कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। उनकी माता ने स्वयं उनको शिक्षा देने का संकल्प किया और नित्य नियमपूर्वक पढ़ाने लगीं। अल्पावधि में ही उन्होंने हिन्दी और संस्कृत का कुछ ज्ञान बालक को करा दिया।

पं0 बालकृष्ण भट्ट सम्प्रदाय, वर्ण और जाति भेद के कट्टर विरोधी थे। उनका मत था कि इन्हीं सब कुरीतियों ने हिन्दू समाज को गर्त में डाल रखा है। उन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' के जुलाई-अगस्त सन् 1889 के अंक में लिखा है- ''जाति भेद, वर्ण भेद, सम्प्रदाय भेद ने समाज को महारोगी, निर्बल और क्षीण कर डाला किन्तु पराधीनता की पिशाची के चंगुल में पड़े हुए इन अनर्थों के हटाने का उद्यम कभी न किया वरन् शाखा-प्रशाखा के रूप में अनेक कुसंस्कार जिनकी नेंव इन्हीं जाति भेद, सम्प्रदाय भेद के कारण बढ़ी है नित्य नये होते गये।''

समाजोत्थान में योगदान; भट्ट जी का समाजोत्थान में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बाल-विवाह, बाह्याडम्बर, जाति-पाति, दान आथा, फैशन, अनमेल विवाह, भीख माँगना और दहेज आदि समाजोत्थान में बाधा डालने वाली कुप्रथाओं का उन्होंने कड़ा विरोध किया था। इनका मानना था कि समाज में ये कुरीतियाँ जब तक रहेंगी तब तक समाज का विकास सम्भव नहीं होगा। यही नहीं, उन्होंने नारी शिक्षा का खुलकर समर्थन किया था। समाजोत्थान में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले उनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं- 'हिन्दी-प्रदीप' में एक स्थान पर वे अपने समाज की स्त्रियों की दशा पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं- ''किसी-किसी देश में जहाँ सभ्यता अपनी चरम सीमा को पहुँची है स्त्रियों को मरदों के बराबर का दावा है जहाँ तक कि अमेरिका में स्त्रियाँ फौज तक में भरती है। इंग्लैण्ड में कितनी स्त्रियाँ बैरिस्टर हैं किन्तु हमारे यहाँ इसका चलन नहीं है, इसलिए स्त्रियों की दशा के परिवर्तन पर बहुत जोर देना व्यर्थ है।''

स्त्री समाज में प्रचलित पर्दा-प्रथा पर भट्ट जी के विचारों की एक बानगी द्रष्टव्य है- ''देश की प्रचलित रीति के अनुसार हम अपनी स्त्रियों को एक तो यों ही सब तरह परहीन दीन दासी बनाये हुए हैं। गर्मी के मौसमों में तो उन बेचारी गृहस्थिनियों का रातो-दिन चूल्हें के आस-पास बैठे-बैठे जो हाल होता है वह वे ही जानती हैं- ऊपर से लम्बा घूँघट।''

पं0 बालकृष्ण जी ने अनमेल विवाह को समाज की एक भयंकर कुरीति माना है। उन्होंने अपने एक निबन्ध में इसके विषय में लिखा है- ''दृष्टि फैलाय कर देखिए तो इसी अनमेल चित्त के विवाह के कारण कौन-सा घराना है जहाँ दिन-रात की दाँत किट-किट नहीं हुआ करती।''

(3) पं0 रुद्रदत्त शर्मा; पं0 रुद्रदत्त शर्मा जी जीवनपर्यन्त आर्थिक विपन्नता से जूझते रहे और इसी कारण उन्हें 'वेंकेटेश्वर समाचार' का सम्पादन भी करना पड़ा। 'आर्य समाज' ने जब इस पर आपत्ति की तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि ''हम तो वकील है। जिसका भी मुकदमा आयेगा उसकी पैरवी करेंगे।'' उन्हें आर्थिक विपन्नता के कारण अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। 17 नवम्बर, 1918 को आगरा में उनका देहावसान हुआ। कहा जाता है कि उनकी मृत्यु का प्रमुख कारण आर्थिक विपन्नता ही रही।

पं0 रुद्रदत्त जी ने अपने पिता के संरक्षण में रहकर अपनी ज्ञान ज्योति को प्रखर किया। इनके पिता पं0 काशी नाथ शर्मा जी हिन्दी और संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् थे और ज्योतिष तथा तंत्र-शास्त्र के विशेषज्ञों में से एक थे। इन्हीं का प्रभाव रुद्रदत्त जी पर पड़ा। उनकी शिक्षा-दीक्षा मथुरा, वृन्दावन तथा बनारस में हुई। इन्होंने इक्कीस वर्ष की अवस्था तक अपने आपको शैक्षणिक कार्य के लिए समर्पित किया तथा इसके पश्चात् वे आर्य समाज के उपदेशक के रूप में सामाजिक जीवन में उतरे।

शर्मा जी की पत्रकारिता का समाजोत्थान में योगदान; सम्पादकाचार्य रुद्रदत्त शर्मा हिन्दी के प्रमुख लेखकों तथा साहसिक पत्रकारों में एक थे। ये आर्य समाज के वरिष्ठ उपदेशक थे। शर्मा जी ने कई पत्रों का सम्पादन किया तथा उन्हें अंग्रेजी शासन का अनेक बार कोपभाजन भी बनना पड़ा। घोर आर्थिक अभावों से वे आजीवन संघर्षरत रहे। वे इतने अच्छे तथा कुशल वक्ता थे कि आर्य समाज के उपदेशकों में इनका स्थान विशिष्ट हो गया था। शास्त्रार्थ विद्या में भी ये पूर्णतः निपुण थे। शर्मा जी प्रारंभ में 'आर्य मित्र' के सम्पादक हुए तथा आगरा में रहकर सम्पादन करते रहे। फिर वे मुरादाबाद में सन् 1885 ई0 में प्रकाशित 'आर्य विनय' नामक पाक्षिक पत्र का सम्पादन करने लगे। इनके सम्पादन में कुल 16 अंक प्रकाशित हुए। इस पत्र के सम्पादन का सबसे विचित्र पक्ष यह है कि पत्र की सामग्री प्रकाशन से पूर्व इन्हें डिप्टी कलेक्टर को सुनानी पड़ती थी। 'आर्य विद्वत् सभा', गुरुकुल महाविद्यालय-ज्वालापुर ने शर्मा जी को 'सम्पादकाचार्य' की उपाधि से अलंकृत किया था।

(4) पं0 प्रतापनारायण मिश्र; प्रतापनारायण मिश्र जी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। फिर भी स्वच्छन्दता के कारण उन्हें नौकरी का बन्धन स्वीकार नहीं था। वे केवल मकान के किराये से ही जीविका चलाते थे। प्रारम्भ में कई विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया, किन्तु कहीं टिके नहीं। कालान्तर में तीस रूपये मासिक वेतन पर 'हिन्दुस्थान' के सहकारी सम्पादक हो गये और वहाँ सपत्नीक डेढ़ वर्ष रहे। 'ब्राह्मण' के सम्पादन में मिश्र जी को कोई आमदनी नहीं होती थी, बल्कि कुछ न कुछ घाटा ही उठाना पड़ता था।

अभाव और चिन्ता के कारण मिश्र जी का स्वास्थ्य सर्वदा खराब रहा। शक्ति से अधिक श्रम, अनेक चिंताएँ और समुचित पोषण के अभाव ने इनके शरीर को व्याधि-मन्दिर बना दिया था। किसी न किसी रूप में सर्वदा जड़ जमाये रहने वाली व्याधियाँ मुख्यतः उनकी जीवनचर्या में सम्मिलित थीं। अपने जीवन के प्रति लापरवाही और रहन-सहन तथा व्यवहार में विरक्ति का समावेश कर लेने के फलस्वरूप उनके समस्त उपचार निष्फल हो जाते थे।

पं0 प्रतापनारायण मिश्र बाल्यकाल से ही चंचल प्रकृति के थे। इसीलिए उनको विद्यार्जन हेतु पाठशाला न भेजकर उनके ज्योतिषी पिता ने उन्हें घर पर ही ज्योतिष का ज्ञान कराने की चेष्टा की, लेकिन मिश्र जी का मन नहीं लगा। कुछ दिनों तक वे संस्कृत के 'शीघ्रबोध' और 'मुहूर्त चिंतामणि' जैसे ग्रंथों को पढ़ते रहे, लेकिन यह अध्ययन अधिक दिन तक न चल सका। उन्हें एक अंग्रेजी स्कूल में भर्ती करा दिया गया वहाँ भी उनका मन न लगा। अन्त में उन्हें पादरियों के एक स्कूल में भेजा गया। यद्यपि वहाँ भी उनका मन नहीं लगा किन्तु फिर भी बहुत सी बातों का ज्ञान उन्हें हो गया। अंग्रेजी और हिन्दी का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त करके उन्हें 1875 ई0 के लगभग 19 वर्ष की अवस्था में विद्यालय की पढ़ाई से विरत होना पड़ा। इस प्रकार मिश्र जी की स्कूली शिक्षा अधूरी रह गयी। साहित्यकारों के सम्पर्क में आने तक उन्होंने फारसी अंग्रेजी; संस्कृत और उर्दू का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उर्दू में उनकी बहुत सी कविताएँ मिलती हैं। वे गजलें, लावनियाँ और मसनवी भी लिखते थे। बंगला, मराठी और पंजाबी का भी इन्हें सामान्य ज्ञान था। इनके विविध भाषा-ज्ञान को निम्न कुछ उद्धरण प्रमाणित करते हैं :

1. *मराठी :* ''अरे राजगार बंद के ल्याने तर काहीं एक होत नाहीं आपले हात पाँय सबल अल्या समाती पासून ही पैरत मिलंशूक तो विलायते इन कपड़ा से यंत्र मागऊँ देश कापड़ा वा परु।''
2. *पंजाबी :* ''मेरी राय तो नासिक में यह आता है कि भारत की तफरीह तबा के लिए यहाँ पर किसी तायफे का नाच होना चाहिए।''
3. *अंग्रेजी :* 'कालिकौतुक' रूपक में मायादास के कथन में उन्होंने एक अंग्रेजी वाक्य का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार है- *"Eat drink and be mercy, tomorrow we shall die."*
4. *फारसी :* पं0 प्रतापनारायण ने *फारसी* के अनेक उद्धरण यत्र-तत्र प्रस्तुत किए हैं। रूपक 'कालिकौतुक' में मुंशी शंकर लाल का यह कथन द्रष्टव्य है- ''दरीं चिशका वह चीज स्किे लिए हो हमें विहिश्त अंजीत सिवाय बादए गुलाब में मुशक बू क्या है।''

''दरी बहर जुत मदें दाईन रफ्तार गुम आशुद कि दुम्बा ले राइन राफ्ता।''

5. *उर्दू :* उर्दू के बहुत से शेर उन्होंने स्थान-स्थान पर उद्धृत किए हैं।

''हमसे खिलाफ होकर करेगा जमाना क्या?''

6. *संस्कृत :* पं0 मिश्र ने संस्कृत की अनेक सूक्तियों को स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है। यथा- ''विद्या विवादाय धनम्मदाय शक्तिः परेषां परिपीड़नाय। खलस्य सद्योर्विपरीत मेत ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।''

कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने के नाते अपनी जाति और धर्म के प्रति गहन प्रेम के लिए मिश्र जी प्रसिद्ध थे। उन्हें ईश्वर पर पूरा विश्वास था किन्तु वे अपने को किसी विशेष धार्मिक बन्धन में जकड़ कर नहीं रखते थे। वे मूर्ति पूजक थे, किन्तु मन्दिर में जाने के अभ्यस्त नहीं थे। उन्हें कृत्रिम और ढोंगपूर्ण आस्तिकता से घृणा थी। उनका विश्वास था कि एक दृढ़ और सच्चा आस्तिक अनेक ढोंगी आस्तिकों से श्रेष्ठ है। जो हिन्दू इसाई बन जाते थे, उनसे उन्हें घृणा थी। इसका आशय यह कदापि नहीं है कि मिश्र जी को इसाई धर्म से विरोध था। वे इंजील पढ़ने वालों की अन्य धर्मद्वेषी प्रवृत्ति के विरोधी थे। मिश्र जी 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के समर्थक थे। इसीलिए इसाई बनने वाले हिन्दुओं को फटकारने, विदेशी भाषा, धर्म एवं संस्कृति से प्रेम करने वालों को सुपथ दिखाने और वाद-विवादियों को प्रेम का मार्ग सुझाने के उद्देश्य से मिश्र जी ने धार्मिक विषयों से संबद्ध अनेक निबन्धों की रचना की। हिन्दू होकर भी वे हिन्दू धर्म की बुराइयों की निन्दा करते थे, ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मणों के पाखण्डों और धूर्तताओं की पोल खोलते थे और समाजद्रोही, मुल्ला, मौलवी, साधुओं, पण्डों, पुजारियों को खूब लताड़ते थे।

धार्मिक सुधार से सम्बंधित उनके निबन्धों के शीर्षक इस प्रकार है- 'जातीय महासभा', 'पादरी साहब का व्यर्थ यत्न', 'राम लीला और मुहर्रम', 'धर्मोत्सव', 'मतावादी अवश्य नर्क जायेंगे', 'प्रयाग : हिन्दू समाज का महोत्सव', 'प्रेम एवं परोधर्म' और 'मुक्ति के भागी' आदि। उनके उपर्युक्त तथा अन्य लेख साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने में और धार्मिक रुढ़ियों को समाप्त करने में सहायक सिद्ध हुए।

समाजोत्थान में पं0 प्रताप नारायण मिश्र का योगदान; भारतेन्दुयुगीन पत्रकारों और लेखकों आदि ने अपने तेज-तर्रार लेखन के माध्यम से तत्कालीन अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारा और निर्भीक होकर भारतीयों में व्याप्त रुढ़िवादिता, अशिक्षा, बाल-विवाह प्रथा, विधवा-विवाह और साम्प्रदायिकता आदि विषयों पर लिखा। उस युग में बंगाल और पंजाब से समाजोत्थान के लिए जब अनेक आन्दोलन चले और कुछ पहले से ही चले आ रहे थे, तब भारतेन्दु मण्डली के लेखकों ने भी उसमें अपना स्वर मिलाया तथा अतर्कसंगत परम्पराओं को त्यागने और नये विचारों को अपनाने का परामर्श दिया।

यद्यपि भारतेन्दु मण्डल में गिने जाने वाले श्री प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी और बालकृष्ण भट्ट आदि भी राष्ट्रोत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे परन्तु इनमें से समाजोत्थान (समाज सुधार) के विषय में वे इतने उग्र नहीं थे, जितने पं0 प्रताप नारायण मिश्र थे। उनकी भाषा शैली चुभती हुई और व्यंग्य बाणों की मार पैनी हुआ करती थी। पाखण्डी आवृत्ति, अशिक्षा और बाल विवाह आदि का मिश्र जी ने स्वतंन्त्र रूप से विरोध किया था। वे पत्रकार तथा सम्पादक दोनों थे, इसलिए समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को पहचान कर अपने 'ब्राह्मण' पत्र में इस विषय में लेख आदि लिखते थे। अन्य धर्मों से उन्हें द्वेष नहीं था, लेकिन दूसरे सम्प्रदायों की द्वेष भावना के प्रति वे असहिष्णु थे। जातीयता के पक्षपाती होकर भी वे सभी जातियों में फैले हुए अनाचार और कुरीतियों का विरोध मानवीय धरातल पर करते थे।

तत्कालीन समाज में फैली नशाखोरी और स्थिति ने भी मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया। स्थिति के विषय में मिश्र जी लिखते हैं- ''कुछ दिनों से हमारे देश में इसका (नशा) ऐसा प्रचार हो गया है कि मूर्खों की कौन कहे, पढ़े लिखे लोग भी इस प्रकार प्रत्यक्ष पाप से किंचितमात्र लज्जा और घृणा नहीं करते। कितने ही सेवा वृत्तों (नौकरी पेशा) को तो यह हराम की हड्डी ऐसी दाँत लग गई है कि वे अधिक वेतन की जगह छोड़ के मेरी तेरी खुशामद करके वरंच कुछ अपनी गाठ से पूज के इसी 'बलाई आमदनी' के लिए थोड़े से मासिक पर नियत हो जाने ही को बड़ी चतुरता समझते हैं। हम बहुतों को प्रतिदिन ऐसी बातें करते सुनते हैं कि कहो उस्ताद, पोस्ट तो बहुत अच्छी हाथ लगी, भला कुछ ऊपरी तरावट भी है।''

नशाखोरों की खबर लेते हुए मिश्र जी कहते हैं- 'बिछे गलीचा है मजलिस माँ खोपरी ठाउईं धरत विलाय। फट-फट कोऊ बोतल खोले, कट-कट कोऊ हाड़ चबाय। खाय अफीम के कोऊ गोटा आँखी उधरें और रहि जायं। धधकै चिलमें रे गांजन की मानो बन माँ लागि दवारि।''

(5) पं0 मदन मोहन मालवीय; श्री मदन मोहन मालवीय की प्रारम्भिक शिक्षा घर तथा संस्कृत पाठशाला में हुई थी। घर के वातावरण में स्वतः भी वे संस्कृत सीख रहे थे। फिर कुछ बड़े होने पर वे पंडित हरदेव जी की धर्म ज्ञानोपदेश पाठशाला में भरती हुए। वहाँ उन्होंने सहपाठियों के साथ 'मनुस्मृति', 'गीता' और 'नीति' के बहुत से श्लोक कंठस्थ किए तथा

धार्मिक शिक्षा और शारीरिक बल बढ़ाने की शिक्षा भी प्राप्त की। वहाँ गुरुजी अपने शिष्यों को दूध पिलाते तथा कुश्ती भी लड़ाते थे। मालवीय जी की इच्छा अंग्रेजी पढ़ने की हुयी। महँगी का जमाना था परन्तु इसके बावजूद पिता ने बालक की इच्छा का स्वागत किया और इन्हें अंग्रेजी स्कूल में भेज दिया। कभी-कभी विद्यालय के मासिक शुल्क की व्यवस्था न होने पर इनकी माता जी का आभूषण एक साहूकार के घर गिरवी रखकर इनकी फीस दी जाती थी। पुनः कथावृत्ति से किसी प्रकार वह आभूषण छुड़ाया जाता था। सन् 1879 ई0 में 18 वर्ष की अवस्था में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद ये म्योर कॉलेज (इलाहाबाद) में पढ़ने लगे। यद्यपि इनकी पढ़ाई परिवार के लिए भारी पड़ रही थी, परन्तु माँ ने अपना पेट काट कर और गहने गिरवी रखकर इनकी पढ़ाई को आगे बढ़ाया।

इन सभी कठिनाइयों के बावजूद सन् 1884 ई0 में मदन मोहन मालवीय ने बी0ए0 परीक्षा उत्तीर्ण की। ये अपना जीवन धर्म प्रचार तथा सेवाकार्य में लगाना चाहते थे, इसलिए राजकीय कॉलेज में अध्यापक के रूप में नियुक्त होने पर भी वे उसमें रम नहीं पाये। अतः पं0 अयोध्यनाथ, राजा रामपाल सिंह तथा पं0 सुन्दर लाल जी की प्रेरणा से मालवीय जी ने वकालत की परीक्षा देने का निश्चय किया। इसे एक अच्छा पेशा नहीं मानते हुए भी वे मित्रों की बात टाल न सके। राजारामपाल सिंह द्वारा प्रकाशित 'हिन्दुस्थान' पत्र में संपादक का पद छोड़ने के बाद भी राजा साहब द्वारा उन्हें 250/= रू0 दिया जाता रहा ताकि वे एल0एल0बी0 की परीक्षा उत्तीर्ण कर लें और उन्होंने कर भी लिया।

मालवीय जी ने प्रसिद्ध वकील पं0 वेनीराम के साथ प्रैक्टिस आरम्भ की। बाद में उन्होंने स्वतंत्र रूप से स्वतः प्रैक्टिस आरंभ कर दी और थोड़े ही समय में इनकी वकालत की तूती बोलने लगी। वकालत का कार्य इनके पास इतना अधिक आने लगा कि ये उसे अपने मित्रों में बाँटने के लिए बाध्य हो जाते थे।

समाज सेवी मालवीय जी; एक राजनीतिक नेता के रूप में वे कई बार साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति के विरूद्ध अपने विचार व्यक्त कर चुके थे। एक बार 'कामन्स सभा' के प्रधानमंत्री की हैसियत से एक सभा में उन्होंने साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की निन्दा की थी। वे संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के समर्थक समझे जाते थे। इस संबंध में मालवीय जी ने लाहौर में एक जोरदार वक्तव्य दिया था, जिसका भाव इस प्रकार है- ''पृथक् निर्वाचन पद्धति के फौलादी ढाँचे से समन्वित साम्प्रदायिक निर्णय तो हमें विभाजित करने और सदा परतंत्रता में बनाये रखने के लिए तैयार किया गया है और इसलिए हम सब भारतीयों को मिलकर उसकी निन्दा करनी चाहिए। कांग्रेस साहस के साथ घोषित करे कि ऐसा कोई विधान जो संयुक्त निर्वाचन पर आधारित न हो, स्वीकार योग्य नहीं होगा। संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में देशव्यापी प्रचार किया जाना चाहिए।''

24 फरवरी को संपन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन ने सर्वसम्मति से मालवीय जी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए घोषित किया कि साम्प्रदायिक निर्णय निन्दनीय है, क्योंकि वह हिन्दुओं और सिक्खों के लिए विशेष रूप से 'अन्यायपूर्ण' है, उससे ''साम्प्रदायिक कलह' बढ़ेगी, वह ''राष्ट्र विरोधी'' और लोकतन्त्र विरोधी है।''

वे इस बात को जोर देकर कहते थे कि यह केवल हिन्दुओं का देश नहीं, मुसलमानों, ईसाइयों और पारसियों का भी देश है। यह देश तभी समुन्नत और शक्तिशाली हो सकता है, जब भारत वर्ष की विभिन्न जातियाँ और यहाँ के विभिन्न सम्प्रदाय पारस्परिक सद्भावना और एकात्मता के साथ रहें और स्वशासित संयुक्त राष्ट्र का निर्माण करें।

समाजोत्थान में योगदान; मालवीय जी ने न केवल हिन्दी पत्रकारिता पर अमिट छाप अंकित की अपितु तत्कालीन अन्य पत्रकारों को भी प्रभावित किया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पं0 मदन मोहन मालवीय का समाजोत्थान में विशिष्ट योगदान रहा है। भारतीय समाज को उन्होंने ऐसा रचनात्मक योगदान दिया, जिसकी आशंसा में जितना कहा जाय सब कम होगा। उन्होंने नई पीढ़ी को सुसंस्कृत करने के लिए धर्म-दर्शन, कला, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान तकनीक आदि की शिक्षा व्यवस्था के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की वह सर्वथा अविस्मरणीय देन है।

उन्होंने धर्म, देश और समाज की सेवा के क्षेत्र में समर्पित जीवन व्यतीत किया था, इसलिए उन्हें ''महामना'' की उपाधि से अलंकृत किया गया था। पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधि को ग्रहण करने को वे भौतिक विकास का साधन मानते थे। उनके अनुसार देश के धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति आदि में व्यक्ति की अन्तर्रात्मा प्रतिबिम्बित होती है। अतः इससे विमुख होकर परसंस्कृति और सभ्यता का अन्धानुकरण अपने सुसंस्कृत स्वरूप को अस्वीकार करने के समान है।

सन् 1899 ई0 में मेरठ से देश 'हितकारी' और 'राजपूज' पत्र निकले। इसी प्रकार कुंवर हनुमंत सिंह रघुवंशी के सम्पादकत्व में आगरा से 'मथुरा-वैश्य- सुखदायक' बाबू ज्वाला प्रसाद द्वारा 'भूमिहार ब्राह्मण' पत्रिका (साप्ताहिक) कानपूर से प्रकाशित हुई।

सन् 1900 ई0 का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण है। इस वर्ष 'सर्व हितकारी', 'सनातन धर्म पताका', 'भारतोद्धार' और 'सरस्वती' आदि कई पत्र प्रकाशित हुए।

अतः यह कह सकते हैं कि 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता का विकास बड़ी विषम परिस्थितियों में हुआ। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाएँ जन्म लेतीं, परन्तु परिस्थिति उनके मार्ग में दीवार की तरह बाधा बनकर खड़ी हो जाती। इनकी उन्नति में उर्दू एवं अंग्रेजी भाषाएँ तथा सरकारी मशीनरी भी रुकावटें पैदा कर रही थीं। अंग्रेजी सरकार आये दिन नये-नये प्रशासनिक तथा वैधानिक कानून बनाकर इन पत्रों को पंगु बना रही थी। परन्तु हिन्दी प्रेमी, साहित्यकार एवं देश भक्त समय-समय पर हिन्दी पत्रकारिता को सशक्त बनाने के अवसरों का भरपूर उपयोग करने से नहीं चूकते थे। अतः कह सकते है कि भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता को स्थापित होने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु उन सबका निवारण करते हुए पत्रकारिता निरन्तर विकसित होती रही। उसके विकास की कहानी जहाँ अनेक विरोधों और संघर्षों से युक्त है, वहीं पत्रकारों की निष्ठा और श्रम का भी प्रमाण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

हर्वट बूकर- *''फ्रीडम ऑफ इन्फार्मेशन'',* पृष्ठ संख्या 4
डॉ0 कृष्णबिहारी मिश्र- *''हिन्दी-पत्रकारिता''*
श्री राधाकृष्ण दास- *''हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास''*
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- *''हिन्दी साहित्य का इतिहास''*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,96-98
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 फरवरी 2016

बौद्ध दर्शन का "शमन"

मधुकर मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *बौद्ध दर्शन का "शमन"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मधुकर मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही तत्त्वों पर विचार करने तथा मोक्ष प्राप्त करने के प्रयास की परम्परा चली आयी है। इसी क्रम में 'बौद्ध-दर्शन' का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध-दर्शन के संस्थापक महात्मा बुद्ध माने जाते हैं।

निर्वाण बौद्ध दर्शन का लक्ष्य है। भगवान बुद्ध के अन्तिम शब्द थे- ''सब संस्कार अनित्य हैं। अपने निर्वाण के लिए बिना प्रमाद के यत्नशील हो। तुम अपने लिए स्वयं दीपक हो- 'अत्तदीपा विहरथ' दूसरे का सहार न ढूँढ़ो''।

इस वाक्य द्वारा स्वयं भगवान् बुद्ध ने निर्वाण या मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने का उपदेश दिया है। वह मार्ग कौन सा है, जिसके द्वारा निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है? इसका निरूपण 'विसुद्धिमग्गो' नामक ग्रन्थ में किया गया है। बौद्ध ग्रन्थों में इसे 'शमथ-यान' या 'विशुद्धि-मार्ग' कहते हैं। यह बुद्ध के चार आर्य-सत्यों में से चौथा है, जिसे 'दुःख निरोध मार्ग' कहा जाता है।

'शमथ' का अर्थ है- पाँच नीवरणो (निवारण) अर्थात् विघ्नों का उपशम -'पंच नीवरणानं समनट्ठेन समथं'। विघ्नों के शमन से चित्त की एकाग्रता होती है। इसीलिए 'शमथ' का अर्थ 'चित्त की एकाग्रता' भी है- 'समथो हि चित्तेकग्गता' शमथ का मार्ग लौकिक समाधि का मार्ग है।[1]

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश में कहीं विपश्यना द्वारा, कहीं ध्यान और प्रज्ञा द्वारा, कहीं शुभ तर्कों द्वारा कहीं कर्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम आजीविका द्वारा और कहीं विशेष रूप से शील, प्रज्ञा और समाधि द्वारा निर्वाण की प्राप्ति बतलायी है, जैसा कि कहा गया है- 'सब्बे संखारा अनिच्चाति यदा पञ्चाय पस्सति। अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विशुद्धिया।।'[2] अर्थात् जब मनुष्य प्रज्ञा द्वारा देखता है तो सब संस्कार अनित्य प्रतीत होते हैं। तब वह क्लेशों से विरक्त होता है और संसार में उसकी आसक्ति नहीं रहती। यह विशुद्धि का मार्ग है।

संयुत्तनिकाय (1-13) में कहा गया है कि- 'सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्चो चितं पञ्चञ्च भावयं। आतापी निपको भिक्खु सो इमं विजटये जटं।।' अर्थात् जो मनुष्य शील में प्रतिष्ठित है और जो समाधि और विपश्यना की भावना करता है, वह तृष्णा

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

रूपी जटा-समूह का संच्छेद करता है।

इस उपदेश के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ने विशुद्धि के मार्ग का निरूपण किया है। शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा सभी मलों का निरसन होता है तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। बुद्ध की यही तीन शिक्षा है। शील से शासन की आदिकल्याण प्रकाशित होती है, समाधि शासन के मध्य में है और प्रज्ञा पर्यवसान में। शील से अपाय (दुर्गति, विनिपात) का अतिक्रमण, समाधि से कामधातु का और प्रज्ञा से सर्वभव का अतिक्रमण होता है।

जो व्यक्ति निर्वाण के लिए यत्नशील होता है, उसे पहले शील में प्रतिष्ठित होना चाहिए। जैसा कि कहा गया है- 'सव्वदा सीलसंपन्नो पञ्चवा सुसमाहितो। आरब्धविरियो पहित्ततो ओघं तरत्ति दुत्तरन्ति।।'[3] अर्थात् जो सदा शील-सम्पन्न, जो प्रज्ञावान है, जो अच्छी प्रकार से समाहित अर्थात् समाधिस्थ है, जो अशुभ के नाश के लिए और शुभ की प्राप्ति के लिए उद्योग करता है, और जो दृढ़-संकल्प वाला है, वह संसार रूपी दुस्तर ओघ को पार करता है।

जब शील अल्पेच्छता, सन्तुष्टि, प्रविवेक आदि गुणों द्वारा सुविशुद्ध हो जाता है, तब समाधि की भावना का आरम्भ होता हैं

'समाधि' शब्द का अर्थ- 'समाधान' अर्थात् एक आलम्बन में समान तथा सम्यक् रूप से चित्त और चैतसिक धर्मों की प्रतिष्ठा है। इसलिए समाधि उस धर्म को कहते हैं, जिसके प्रभाव से चित्त तथा चैतसिक धर्मों की एक आलम्बन में बिना किसी विक्षेप के सम्यक् स्थिति हो। समाधि में विक्षेप का विध्वंस होता है और चित्त-चैतसिक विप्रकीर्ण न होकर एक आलम्बन में पिण्ड रूप में अवस्थित होता है। यहाँ समाधि से तात्पर्य कुशलचित्त की एकाग्रता से है। अर्थात् चित्त की वह एकाग्रता, जो दोष रहित है और जिसका विपाक सुखमय है। इसी लौकिक-समाधि के मार्ग को 'शमथ-यान' कहते हैं। लौकिक अथवा लोकोत्तर समाधि को ही 'निर्वाण' नहीं समझना चाहिए। बौद्ध दर्शन में 'निर्वाण' साध्य है और समाधि मात्र उसका एक साधन है। और इस 'लौकिक-समाधि' का जो साधन है या मार्ग है, उसे ही 'शमथ-यान' कहते हैं।

काम, रूप और अरूप भूमियों की कुशल-चित्तेकाग्रता को लौकिक- समाधि कहते हैं, और जो चित्तेकाग्रता आर्य-मार्ग से होते हुए लोक को उत्तीर्ण कर स्थित है, वह लोकोत्तर-समाधि कहलाती है।

'शमथ-यान' के प्रसंग में यहाँ हमें सिर्फ लौकिक-समाधि ही अभिप्रेत है। बौद्ध-दर्शन में 'समाधि' का अर्थ- 'कुशल-चित्त की एकाग्रता' है। अर्थात् चित्त की वह एकाग्रता जो दोषरहित है और जिसका विपाक सुखमय है। विघ्नों के अर्थात् अन्तरायों के नाश से ही लौकिक-समाधि में प्रथम ध्यान का लाभ होता है। प्रथम ध्यान में पाँच अंगों का प्रादुर्भाव होता है। दूसरे, तीसरे ध्यान में पाँच अंगों का अतिक्रमण होता है। वह पाँच नीवरण अर्थात् अन्तराय या विघ्न निम्न हैं- कामछन्द, व्यापाद, 'स्त्यान-मिद्ध', औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।

'कामच्छन्द'- विषयों के अनुराग को कहते है। 'व्यापाद'- हिंसा को कहते हैं। 'स्त्यान' का अर्थ - 'चित्त की अकर्मण्यता है और 'मिद्ध' का अर्थ-'आलस्य' होता है 'औद्धत्य' का अर्थ है- 'अव्यवस्थित-चित्तता' और 'कौकृत्य' खेद या पश्चाताप को कहते हैं। 'विचिकित्सा' का अर्थ 'संशय' है।

विषयों में लीन होने के कारण समाधि में चित्त की प्रतिष्ठा नहीं होती है। हिंसाभाव से अभिभूत चित्त की निरन्तर प्रवृत्ति नहीं होती है। स्त्यान-मिद्ध से अभिभूत चित्त अकर्मण्य होता है। चित्त के अनवस्थित होने से और खेद से शान्ति नहीं मिलती और चित्त भ्रान्त रहता है। विचिकित्सा से उपहत चित्त ध्यान का लाभ कराने वाले मार्ग में आरोहण नहीं करता। इसलिए इन विघ्नों का नाश करना चाहिए। 'नीवरणो' के नाश से ध्यान का लाभ और ध्यान के पाँच अंग- वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता का प्रादुर्भाव होता है।

प्रथम ध्यान से उक्त पाँच अंगों का प्रादुर्भाव होता है। धीरे-धीरे अंगों का अतिक्रमण भी होता है और अन्तिम ध्यान में समाधि उपेक्षा सहित होती है। लौकिक-समाधि के द्वारा ऋद्धि-बल की प्राप्ति होती है किन्तु 'निर्वाण' प्राप्ति के लिए 'विपश्यना' के मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक है। लौकिक-समाधि से प्राप्त 'ऋद्धि-बल' ही लोकोत्तर समाधि अर्थात्, विपश्यना में विघ्न है। 'विपश्यना' द्वारा इसी 'ऋद्धि-बल' का ही उच्छेद किया जाता है।

'निर्वाण' के प्रार्थी को 'शमथ' की भावना के उपरान्त 'विपश्यना' की वृद्धि करनी पड़ती है, तभी वह अर्हत्व-पद पर प्रतिष्ठित होता है।

विपश्यना- उस विशिष्ट ज्ञान और दर्शन को कहते हैं, जिनके द्वारा धर्मों की अनित्यता, दुःखता, और अनात्मता प्रकट होती है। जैसा कि कहा गया है-

''सङ्खारे अनिच्चतो दुक्खतो अनत्ततो विपस्सति।''[4]

''अनिच्चादिवसेन विविधाकारेन परसतीति विपस्सना।''[5]

''विपस्सनाति सङ्खारपरिग्गाहकञाणं।''[6]

सन्दर्भ सूची

[1]*अंगुत्तर निकायट्ठकथा,* बालवग्ग, सूत्त 3

[2]*धम्मपद*-2/5

[3]*संयुक्त-निकाय* 1-53

[4]*विसुद्धिमग्गो,* पृ0 705

[5]*अभिधम्मत्थसंग्रह* टीका

[6]*अंगुत्तरनिकाय पट्ठकथा,* बालवग्ग, सुत्त 3

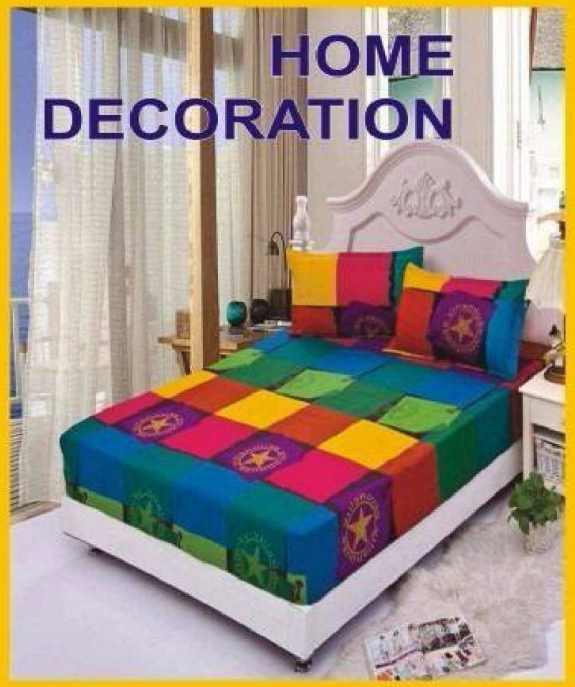

To sell on Selbuy, mail us at **selbuy.sales@gmail.com** or **sales@selbuy.co.in**
For shopping log on to **www.selbuy.co.in**
For more info mail us at **info@selbuy.co.in** or visit us at our office
9/7 D1 LIDDLE ROAD, GEORGE TOWN, ALLAHABAD, U.P., INDIA- 211002, MOB: 8808723417

Why SELBUY is INDIA'S MOST POPULAR SHOPPING WEBSITE ?

EASY ORDER AND CANCELLATION-

Selbuy offers easy processing of orders and their cancellation. You can order your product by just login in to www.selbuy.co.in .

DISCOUNT AND OFFERS-

Selbuy provides you with some amazing offers and great discounts on all your purchases. Eveyday, you will get new and exciting offers on all our products.

PAYMENT OPTIONS-

The payment options are extremely simple & reliable. Selbuy offers payment through COD, debit card, credit card or net banking.

CUSTOMER SUPPORT-

Utmost customer satisfaction is our prime concern therefore our customer support is always there for you 24x7 to answer all your queries. Selbuy ensures prompt action on all your problems and will try to resolve all issues quickly.

FAST DELIVERY-

The final delivery of the product to the end customer is the most important step in online shopping. Therefore selbuy assures fast delivery of the product to your doorstep.

SELBUY

ONLINE SHOPPING WEBSITE

www.selbuy.co.in

Contact us :
By Phone : 8808723417, 8601781059
By Mail : selbuy.sales@gmail.com

For daily updates and exciting offers join us on

NEW DEFINITION OF HOMES

SHINE CITY®

an ISO 9001:2008 certified company

Member of CREDAI U.P.

Kashiyana BANARAS

where lives..... brotherhood

only @ ₹1000/- per sq. ft.

Sector - 1

Payment Schedule for Residential Plots

FULL PAYMENT PLAN

Full Payment Plan Within 1 Month

12% Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 25% DOWN PAYMENT

25% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months

From The Date of Booking

No Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 50% DOWN PAYMENT

50% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months

From The Date of Booking

6% No Discount

NOTE : ALL PAYMENT PLANS OPEN FOR ALL BLOCKS

SHINE CITY®

SHINECITY INFRA PROJECT PVT. LTD.

Head Office : 1/5, Fourth Floor, R-Square Complex, Vipul Khand, Gomtinagar, Lucknow-226 010

www.shinecityinfra.in • info@shinecityinfra.in

TOLL FREE 1800-2000-480

Book Your Dream Plot Safely With Us.
Mo. 918181985358, 7839000797

NEW DEFINITION OF HOMES

SHINE CITY®

an ISO 9001:2008 certified company

Member of CREDAI U.P.

Kashiyana BANARAS

where lives..... brotherhood

only @ ₹ 900/- per sq. ft.

Sector - 2

Payment Schedule for Residential Plots

FULL PAYMENT PLAN

Full Payment Plan Within 1 Month

12% Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 25% DOWN PAYMENT

25% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months
From The Date of Booking
No Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 50% DOWN PAYMENT

50% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months
From The Date of Booking
6% No Discount

NOTE : ALL PAYMENT PLANS OPEN FOR ALL BLOCKS

SHINECITY INFRA PROJECT PVT. LTD.
Head Office : 1/5, Fourth Floor, R-Square Complex, Vipul Khand, Gomtinagar, Lucknow-226 010
www.shinecityinfra.in • info@shinecityinfra.in
TOLL FREE 1800-2000-480

Book Your Dream Plot Safely With Us.
Mo. 918181985358, 7839000797

29-05-2014 CMYK 175# ctp

NEW DEFINITION OF HOMES
SHINE CITY
an ISO 9001:2008 certified company

Kashiyana BANARAS
where lives..... brotherhood

Site Layout Plan
(Sector - 2)

SECTOR -2			
TYPE	PLOT SIZE	PLOT AREA (SQFT.)	SHOW
A	40'X80'	3200	
B	35'X70'	2450	
C	30'X60'	1800	
D	25'X50'	1250	
E	25'X40'	1000	

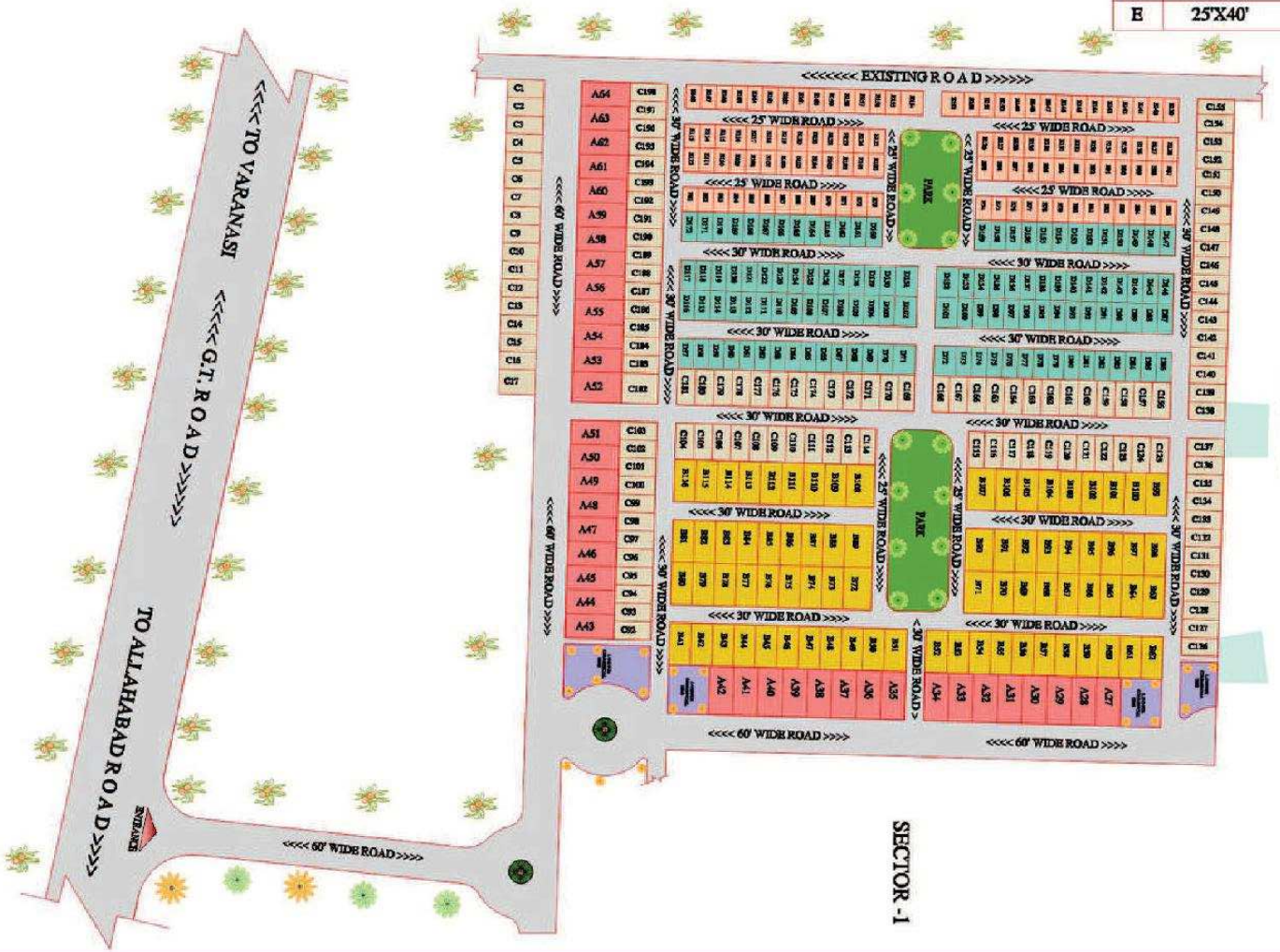

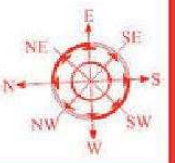

Single Side Job 2100 sheets 15x20 - 90 gsm art paper

Varanasi Property

Varanasi Property

Varanasi Property

Varanasi Property

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

IJRA
www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1300/-